चैतन्यचन्द्रोदय।

प्रथमकाण्ड।

श्रीयुत पंडित सीताराम उपाध्याय प्रणीत।

अर्थात्।

भाषायोगवाशिष्ठ।

पद्य।

वैराग्यमुमुक्षु।

युगलप्रकरण।

ब्रह्मरूपआहिब्रह्मवित ; ताकीवाणीवेद ।
भाषाअथवासंस्कृत ; करतभेदभ्रमछेद ॥

जिसे।

धर्मधुरीण, सर्वकला चातुरीण, और समस्त उचि-
तोचित धर्म्म कर्म मतमतान्तर भेदाभेद प्रवीण,
श्रीयुत पंडित सीताराम उपाध्याय जौनपुर
नगराधीन, पिलकिछा ग्रामवासी ने
देवनागरी भाषा छन्दानुरागी मुमुक्षू
जनों के उपकारार्थ अतीव परि-
श्रम से निर्माणित किया।

प्रथमबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने मे छपी
जनवरी सन् १८९२ ई०

"तब लगि शास्त्र, पुराण; जम्बुक इव गरजत बनहिं ।
नहिं गरजत बलवान; जब लगि हरि वेदान्त तहँ ॥

अनुक्रमणिका।

प्रायः आज कल इस समस्त भारत वर्ष एवं अन्य अन्यप्रान्तों में भी यहबात बहुधा प्रसिद्ध होरहीहै। कि देवनागरी भाषा में परम पूजनीय श्री गोस्वामि तुलसीदासकृत रामायण जैसी उत्तमऔर मनोहारिणी पुस्तकहै। वैसी विलक्षण, सरल, स्वच्छ भाषाछंद निबन्ध शुद्धभाव भूषित, विज्ञान मय, रस भरी अनूठी कविता, अद्यावधि किसीको किसीभाषामें दृष्टिगोचर नहींभई। औरन होनेकी किञ्चिन्मात्र संभावना भीहै। वास्तवमें यहग्रन्थ है भी तो ऐसाही। किन्तु–" व्याहको करन, वन धारिवो चरन, पुनि जानकी हरनऔ सुकण्ठकी मिताईनै। लंकाको जरन, दशशीश को मरन, फिरि कागको तरन, कहे अंतमें अताईनै॥ "सीताराम" जहाँ २ जोड २, कथादेखौ, आँखिनके सामनेधरे हैं जनु आईनै। वेदऔ पुराण, शास्त्र, पिंगल, अलंकृत को सार मथिकाढ़ि लियो तुलसी गुसाईनै,,॥ अन्य–, वेदको विधान लिये पूरण पुरान मत मानत प्रमान सन्त सिद्धि सब ठाईंके। भक्ति रसभीने पद परम नवीने कहि दीनेहैं अशेषकाव्य जहाँ लगि ताँईंके॥ दाया दरशावै बरसावै प्रेम पुण्यजल पवित्रावै हियो जाको पाहन की नाईंके। सॉई के चरित्र भाषा वापुरोबखाने कौनलाँघे यह वाँटेपरी तुलसी गुसाँईके,,॥ अहा! धन्यहै!! उस आश्रित-जनपोषक दीनानाथ की असीम, अलौकिक और अलभ्य अनुकम्पाको, कि जिसके प्रबलप्रतापके अनुकरणसे आजहम जैसे अल्पबुद्धी लोगों की मति ऐसे ग्रन्थोंके रचने में प्रवृत्तिहुई है; कि जो उपरोक्त ग्रन्थकी समता करके उसकी तुलना में कदापि न्यून विद्वज्जन समूहों के मध्य न ठहराया जाय। अतएव अब मैंने अनेक सज्जनजन एवं सुहृद्गणों की

अनुग्रह से आज उस परमप्रमाणिक प्रसिद्ध संस्कृत भाषाकी प्राचीन कविता "योगवाशिष्ठ" जोकि [श्रीयुक्तमहर्षिवर पाद्यपूज्य वाल्मीकिजीकी निर्माणित; अनुपम और अद्वितीय वेदान्त की एक जगद्वन्दनीय पुस्तकहै] के युगलप्रकरणका भाषानुवादछंद प्रबंध उसी रीत्यनुसार और अतीव नम्रतापूर्वक रचनाकरके समाप्तकियाहै। कि यदि संतसमुदाय और पण्डित जन महाशयगण जो सदैव उत्तम२ पुराण, शास्त्र, काव्य, अलंकार प्रभृतिकोपठन पाठन कियाकरते हैं न्यायपूर्वक, हठ और पक्षपातरहित इस ग्रन्थको पढ़कर और विचारकरके अपनी २ अनुमति प्रकाशकरेंगे; तो हमें पूर्णआशा है, कि यह ग्रन्थ अपने गूढ़भाव और दृढ़ आशयोंके अभिमानसे उपरोक्त ग्रंथकी सीमा तथाच मर्य्यादाको अवश्यमेव पहुंचजायगा। किन्तु इसमें अभ्यन्तरिक अनुराग के प्रभावसे उस प्रधान ग्रन्थका प्रतिविम्ब खींचागयाहै। जिसकी रमणीयता, लालित्य, भावोंकी गंभीरता और शब्दार्थोंकी माधुर्य्यताकी महिमा गगनतलस्पर्शवर्त्ती चंद्रमाकी भांति आजदिन समस्त महिमण्डलमें छारहाहै। और विशेष कारण इसके चमत्कार और गम्भीर और क्लिष्टपद्य बद्धकाव्यहोनेका केवल वही सरल और सीधी श्रीवाल्मीकिजीकी सरस्वतीहीका है। जिसके उत्तम उपकरणसे रोचक और मनोरंजन, स्वच्छभावों की तारतम्य के हितार्थ हमारे नवीन और प्राचीन पौराणिक महोदय गण चिरकालपर्य्यन्त अनेकानेक उद्योग और साहस करतेरहे। परन्तु उनके ग्रन्थों के अवलोकन किंवा श्रवणमात्र से इस सर्व शरीरोत्तम मुखारविंद से यथेष्ट यही निन्दनीय वचन अञ्चाचक निकल पड़ते हैं। कि हां! "उस वाल्मीकिय अद्भुत वाणीकी समता इनमें कहां"! ॥

जिसमेंश्री मर्य्यादा पुरुषोत्तम महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी और त्रिकालज्ञ, समदर्शी, महामाननीय श्री वशिष्ठ जी के अनेक उत्तमोत्तम शुभचरित्र और ज्ञान एवं धर्म यथावलम्बी प्र-

श्नोत्तर, उदाहरण सम्पन्न जगत् प्रख्यात निम्नवर्णित रीतितथा च आशय परिपूर्ण श्री वाल्मीकि जी द्वारा निर्मीणित भया है।

प्रथमतः सुतीक्ष्ण का अगस्त्यजी के शिष्यहोकर एक संशय उत्पन्नहोने के उपरान्त उनके आश्रमको जाना; और प्रणाम करके मोक्षका कारण [कर्म्म वा ज्ञान है] इस प्रश्न का अगस्त्यजी को सुनाना। पुनः अगस्त्यजी का "मोक्ष एकसे नहीं" होती, इस अभिप्रायसे एक पुरातन इतिहास का कहना, कि कारण नाम अग्निवेष के पुत्रका गुरु के यहाँ जाय चारों वेद पढ़कर गृहमें आय, कर्मत्याग चुपचाप बैठ रहना। पुत्रको कर्म्म से रहित देखकर अग्निवेषका [कर्म क्यों नहीं पालते?] पुत्र से बोलना; वेदमें एकठौर कहा कर्मको सेवना, दूसरी ठौर, न कर्म से न धनसे न पुत्रादिसे मुक्ति होती है, इससशय को कारण का खोलना। तब अग्निवेषका पुत्रकी संशय निवृत्त निमित्त कहना सुरुचि अप्सरा और इन्द्रके दूतका संवाद; जिसको इन्द्रके अरिष्ट नेमिराजाको(गंधमादन पर्वत पर तपस्या करते देख) स्वर्गमें बुलानेको भजनेका उत्तम आह्लाद। और महीपतिका स्वर्गके गुण दोपनिर्णयकरने परवहाँका जाना अंगीकृत न करना; पुनः उसका लौटकर सम्पूर्ण वृत्तान्त आद्योपान्त पाकशासनसे वर्णन करने पर फिरभी राजाके पासजानेकी वार्ताका ठहरना। अपर दूतका अवनिपके निकट जाकर उनको मोक्षके निमित्त मुनिश्रेष्ठ श्रीवाल्मीकिजीके स्थानपरलाना; वहाँपर नराधिपका मुनिजीसे संसारबन्धनसे मुक्तिकाउपाय पूँछनेपर श्रीवाल्मीकिजीका महारामायणकीवार्ता तत्त्वबोध उपदेशके हितार्थउठाना। बहुरि रामायण वर्णनकाहेतु आदिमें श्रीसच्चिदानन्दविष्णुजीको सनत्कुमार भृगु, देवशर्म्मा इत्यादि ऋषीश्वरों का शाप अनंतर शापवश विष्णुका भूपतिदशरथकेगृहमें अवतार धारणकरनेपर, वाल्मीकिजीका रामायण वर्णनकी समयमें श्रोता भरद्वाजद्वारा श्रीपरमेष्ठी ब्रह्माजीका मिलाप। और चतुरानन देवश्रेष्ठकी आ

अनुग्रह से आज उस परमप्रमाणिक प्रसिद्ध संस्कृत भाषाकी प्राचीन कविता "योगवाशिष्ठ" जोकि [श्रीयुक्तमहर्षिवर पाद्यपूज्य वाल्मीकिजीकी निर्माणित; अनुपम और अद्वितीय वेदान्त की एक जगद्वन्दनीय पुस्तकहै] के युगलप्रकरणका भाषानुवादछंद प्रबंध उसी रीत्यनुसार और अतीव नम्रतापूर्वक रचनाकरके समाप्तकियाहै। कि यदि संतसमुदाय और पण्डितजन महाशयगण जो सदैव उत्तम२ पुराण, शास्त्र, काव्य, अलंकार प्रभृतिकोपठन पाठन कियाकरते हैं न्यायपूर्वक, हठ और पक्षपातरहित इस ग्रन्थको पढ़कर और विचारकरके अपनी २ अनुमति प्रकाशकरेंगे; तो हमें पूर्णआशा है, कि यह ग्रन्थ अपने गूढ़भाव और दृढ़ आशयोंके अभिमानसे उपरोक्त ग्रंथकी सीमा तथाच मर्य्यादाको अवश्यमेव पहुंचजायगा। किन्तु इसमें अभ्यन्तरिक अनुराग के प्रभावसे उस प्रधान ग्रन्थका प्रतिविम्ब खींचागयाहै। जिसकी रमणीयता, लालित्य, भावोंकी गंभीरता और शब्दार्थोंकी माधुर्य्यताकी महिमा गगनतलस्पर्शवर्त्ती चंद्रमाकी भांति आजदिन समस्त महिमण्डलमें छारहाहै। और विशेष कारण इसके चमत्कार और गम्भीर और क्लिष्टपद्य बद्धकाव्यहोनेका केवल यही सरल और सीधी श्रीवाल्मीकिजीकी सरस्वतीहीका है। जिसके उत्तम उपकरणसे रोचक और मनोरंजन, स्वच्छभावों की तारतम्य के हितार्थ हमारे नवीन और प्राचीन पौराणिक महोदय गण चिरकालपर्य्यन्त अनेकानेक उद्योग और साहस करतेरहे। परन्तु उनके ग्रन्थों के अवलोकन किंवा श्रवणमात्र से इस सर्व शरीरोत्तम मुखारविंद से यथेष्ट यही निन्दनीय वचन अत्याचक निकल पड़ते हैं। कि हां! "उस वाल्मीकिय अद्भुत वाणीकी समता इनमें कहां"! ॥

जिसमेंश्री मर्य्यादा पुरुषोत्तम महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी और त्रिकालज्ञ, समदर्शी, महामाननीय श्री वशिष्ठ जी के अनेक उत्तमोत्तम शुभचरित्र और ज्ञान एवं धर्म यथावलम्बी प्र-

इनोत्तर, उदाहरण सम्पन्न जगत् प्रख्यात निम्नवर्णित रीतितथा च आशय परिपूर्ण श्री वाल्मीकि जी द्वारा निर्माणित भया है।

प्रथमतः सुतीक्ष्ण का अगस्त्यजी के शिष्यहोकर एक संशय उत्पन्नहोने के उपरान्त उनके आश्रमको जाना; और प्रणाम करके मोक्षका कारण [कर्म्म वा ज्ञान है] इस प्रश्न का अगस्त्यजी को सुनाना। पुनः अगस्त्यजी का " मोक्ष एकसे नहीं" होती, इस अभिप्रायसे एक पुरातन इतिहास का कहना; कि कारण नाम अग्निवेष के पुत्रका गुरु के यहाँ जाय चारों वेद पढ़कर गृहमें आय, कर्मत्याग चुपचाप बैठ रहना। पुत्रको कर्म्म से रहित देखकर अग्निवेषका [कर्म क्यों नहीं पालते?] पुत्र से बोलना; बेदमें एकठौर कहा कर्मको सेवना, दूसरी ठौर, न कर्म से न धनसे न पुत्रादिसे मुक्ति होती है, इससंशय को कारण का खोलना। तब अग्निवेषका पुत्र की संशय निवृत्त निमित्त कहना सुरुचि अप्सरा और इन्द्रके दूतका सवाद; जिसको इन्द्रके अरिष्ट नेमिराजाको(गंधमादन पर्वत पर तपस्या करते देख) स्वर्गमें बुलानेको भजनेका उत्तम आह्लाद। और महीपतिका स्वर्गके गुण दोषनिर्णयकरने परवहाँका जाना अंगीकृत न करना; पुन उसका लौटकर सम्पूर्ण वृत्तान्त आद्योपान्त पाकशासनसे वर्णन करने पर फिरभी राजाके पासजानेकी वार्ताका ठहरना। अपर दूतका अवनिपके निकट जाकर उनको मोक्षके निमित्त मुनिश्रेष्ठ श्रीवाल्मीकिजीके स्थानपरलाना, वहाँपर नराधिपका मुनिजीसे संसारबन्धनसे मुक्तिकाउपाय पूँछनेपर श्रीवाल्मीकिजीका महारामायणकीवार्ता तत्त्वबोध उपदेशके हितार्थउठाना। बहुरि रामायण वर्णनकाहेतु आदिमें श्रीसच्चिदानन्दविष्णुजीको सनत्कुमार भृगु, देवशर्म्मा इत्यादि ऋषीश्वरों का शाप अनंतर शापवश विष्णुका भूपतिदशरथकेगृहमें अवतार धारणकरनेपर, वाल्मीकिजीका रामायण वर्णनकी समयमें श्रोता भरद्वाजद्वारा श्रीपरमेष्ठी ब्रह्माजीका मिलाप। और चतुरानन देवश्रेष्ठकी आ

सुझानुसार उस अद्भुत ग्रन्थका समाप्त तत्पश्चात् राम, लषण, दशरथ, कौशल्या, वशिष्ठ, वामदेव, बिभीषण, इन्द्रजित्, हनुमान् इत्यादि अष्टाविंशति जीवका जीवन्मुक्तिप्राप्त। तदनन्तर जीवन्मुक्तिकी निर्णय का प्रश्न भरद्वाज का सुनकर; चिदाकाश आत्मा और ब्रह्मविद्या रामायणकी महिमाका प्रकाश; और बालावस्था में रामचन्द्रजी का विद्याध्ययन करके भवनमें आय, विचारसहित तीर्थ ठाकुरद्वाराकी संकल्पकरकेजाना अयोध्याधिपति महाराज दशरथके पास, और नृपतिके आयसुसे भाई,बन्धु ब्राह्मण, मंत्री,सेना, धन संगलेकर करना तीर्थयात्राका प्रस्थान; पुनः शालिग्राम, बद्रि केदार इत्यादिकमें जायकरना– विधिसहित गंगा, यमुना, सरस्वती स्नान; और देना विप्र निर्धनों को दान। फिरि तीर्थाटनसे निजधाम में आनेपर चिरकालोपरान्त राजकुमारका अपनीचेष्टा और रससंयुक्त इंद्रियों की विषयों को त्यागकर अन्तःपुरकावास; यह व्यवस्था निरीक्षणकर राजा, मंत्री, स्त्रियोंका अत्यंत संशययुक्त शोक चिन्तारोपणकरके होजाना विशेष निराश; और नृप वशिष्ठका चिन्तासंयुक्त वार्त्तालाप का प्रकाश।

इसी विचार में बहुतकाल व्यतीतहोने के उपरान्त; श्रीयुत महर्षिवरेषु विश्वामित्रजीका श्रीरामचन्द्रद्वारा अपनी यज्ञरक्षार्थ राजा दशरथ के राजमन्दिर में आवना; और राजाका समाचार पावतेही वशिष्ठ, वामदेव इत्यादि सभासदों के साथ साथ मुनि को प्रणाम और स्तुतिकरते २ भीतर लावना॥

तदन्तर्गत राजाका मुनीन्द्र को सिंहासनपर बैठाय, विधिसंयुत पूजा स्तुति करके अपने देनेके निमित्त अनेक बार्तायों का रटना; और विश्वामित्रका राजाकी बड़ाई कर, निज यज्ञ का वृत्तान्त कह, उसकी रक्षाके निमित्त रामचन्द्रको मांगनेपर, ऐसे धर्मध्वज राजा का रोना और पीटना। ऐसी अवस्थामें राजेन्द्रकी यहदशा देखकर, विश्वामित्र का अत्यन्त क्रोधितहो

नृपति को धर्मका स्मरण दिलाना, और इसपर मुनि वशिष्ठजी का धर्मकी दुहाई दे विश्वामित्रके पराक्रमको वर्णनकर पूर्व्वका समस्त वृत्तान्त कह, अवनीश को भयभीत करके अनेकानेक भाँतिसे समुझाना। फिर भूपाल का श्रीरामचन्द्र वीरेश को बुलाना; और रामचन्द्रजी का सभामें जाना। पुनः यथायोग्य प्रणाम करना, और विश्वामित्रकी बड़ाईकी वाणी उच्चरना। एवं श्री मन्महाराज रामचन्द्र जीकी मनोभिलाषा पूछने पर तात्कालिक उसकी प्राप्तिहेतु धरकादेना, और रामचन्द्र का वर निश्चयमान, सभा मण्डली के मध्य अपना जीवन वृत्तान्तकह, निजसंशयनिमित्त विरक्तताकी आशयलेना।

अतिरिक्त प्रथम प्रकरणमें तो केवल रामचन्द्रजीका सर्व पदार्थ, जैसे लक्ष्मी, स्त्री, संसार सुखइत्यादि [जिसका सविस्तर वृत्तान्त इसके सूची पत्रही से ज्ञातहो सक्ताहै] को भ्रम मात्र जानकर उनको निषेधकरके घटाना; और द्वितीय प्रकरणमें धर्माधिप वशिष्ठजीका,जैसे शुकनिर्वाण, विश्वामित्रोपदेश, असंख्य सृष्टि प्रति पादनआदि वर्णनकरके केवल पुरुषार्थहीको अधिकतरबढ़ाना।

आदि आदि कथायें ऐसी उत्तमतासे वर्णित हैं कि जिसकी अनुभवको कदाचित् वही पुरुषोत्तम लोग जान सकेंगे; कि जिनको एकवार भी यह नवलभाष्य पद्यबद्ध ग्रन्थदृष्टि गोचर दैवात् भया; अथवा होजायगा। और विशेष वैचित्रता यह किऐसे वृहद् ग्रंथमें भी जो अन्योन्य छन्द दोहा, चौपाई और सोरठाके अतिरिक्त रचना कियेगये हैं; वह पुन.इससमस्त पुस्तकमेंकहीं भी नहीं परने पायेहैं। क्योंकि इसग्रन्थके रचना करनेके समय में हमारा मुख्य उद्देश्यभी तो यहीथा; कि वर्णितछंदकहीं नहीं, परने पावेंगे। अतएवअबमें अधिक प्रशंसा इसकी न करके केवल आप लोगोंसे यही प्रार्थनाकरूंगा, किहे महामान्यवर! पाठक लोगो एकवार ध्यानदे और विचार करइसेभी पूर्णतः पढ़ ली-

जिये; तबकहिये कि यहग्रन्थ कैसाहै ? और अन्यथा दोषदेना तो पाण्डित्यकी बात नहीं । किन्तु

दो० । "उलटि पलटि इतउत अधम; देहिं दोष निरधारि।
गुणअवगुण सब संतजन; लेहिं समग्र विचारि ॥

ब्रह्मरूप अहिब्रह्मवित; ताकीवानी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत; करत भेद भ्रम छेद ॥

पं० सीतारामजी उपाध्याय
जौनपुर पिलकिछा ।

भाषायोगवाशिष्ठपद्य का सूचीपत्र।

इति ॥

छन्दोंकी अनुक्रमणिका ॥

सो० । रचुयहि "सीताराम" नाना छन्द प्रबन्धयुत ।
सूची तासु ललाम पृथक पृथक वर्णन करी ॥

सादर नृपहिं चढ़ाइ विमाना । पंथ देत ताकहँ सुख नाना ॥
शीघ्र यहाँ नृप कहँलै आवहु । धावहु अबन विलम्ब लगावहु ॥
दो० । इन्द्र वचन सुनि सुन्दरी गयो नृपति के पास ।
करि बखान वह स्वर्ग को वोल्यो परम हुलास ॥
छंदसूर । वैठो विमानै भूप । ह्वै देवता को रूप ।
भोगो सुखै ह्वाँजाय । जो देवताहू पाय ।
वोले तवै भूपाल । क्याहै वहाँ का हाल ।
जो दोष होतामाहिं । है लाभहू या नाहिं ।
वृत्तांत मोसों ठीक । क्याहै वहाँकी लीक ।
या भाँति सीताराम । पूंछा सवै सो वाम ।
दो० । प्रथमैं सुनि गुण दोष मैं पुनि करि हृदय विचार ।
पुनि जस मो मति भासिहै कहिहौं तिहि अनुसार ॥
चौ० । तवमैंकहासुनहुमहिपाला । परमदिव्यतहँ भोगविशाला ॥
जो नर पुण्य करहिं वहु भाँती । पावहिं स्वर्ग सुखन की काँती ॥
जासु होइजस पुण्य बिशाला । सोतस सुखपावहिं महिपाला ॥
उत्तम मध्यम अरु लघु भोगा । भोगहिं जस व्रत धर्म्म सँयोगा ॥
सकल स्वर्ग गुण कहा बखानी । दोष सुनहु नर पति विज्ञानी ॥
निज सुख ते उत्तम जो करहीं । देखि तिनहि छाती अति जरहीं ॥
सम सुख देखि क्रोध उरहोई । मो सम सुख भोगत है सोई ॥
निजते लघुहिं देखि अभिमाना । उपजतहै सुनु नृपति सुजाना ॥
दो० । एक दोष अति कठिन है सुनहु भूप मन लाय ।
पुण्य क्षीण के होतही तुरितहिं देहिं गिराय ॥
चौ०एकहु क्षण तहँरहन न देहीं । मृत्यु लोक महँ भेजहिंतेहीं ॥
कहा नृपति मैं सब गुणदोषा । राखतहौं अब कछु नहिं धोषा ॥
सुनि मम वचन कहा नरनाहू । चहतनमैं अस स्वर्ग सुखाहू ॥
मोर भाग्य न स्वर्ग पद योगा । अरुन सुहात मोहिं अस भोगा ॥
तप अति उग्र करव मैं जाई । तजव देह पुनि अवसर पाई ॥
जिमि भुवग त्वच तजहिं पुराना । मैं शरीर त्यों करवनिदाना ॥

तुमसों अब मैं करत प्रणामा। ह्वैविमानगवनहुं निजधामा॥
तब मैं सुनि अस भूपति बानी। सहित सुमाजहिफिरेसयानी॥
दो०। समाचार सब शक्रसों कहे यथोचित जाय।
ह्वै प्रसन्न पुनि कहे तिन अमीबैन बरसाय॥
चौ०। पुनःदूतगवनहुनृपपाहीं। जानाजोअभिरुचितिहिकाहीं॥
जानि असत्य सकल ससारा। आत्मपदहिंअब चहतभुवारा॥
तिहिते नृपहि लेइनिजसाथा। जाहु जहां ज्ञानी मुनिनाथा॥
बाल्मीकि जिहिकह सबकोई। आत्मतत्त्वजानत मुनिसोई॥
तासों कहि सबमम सन्देशा। जिहिते तत्त्व बोध उपदेशा॥
नृपहिं करहिमुनिवर विज्ञानी। सबविधिबड अधिकारीजानी॥
यहनचहै स्वर्गहुं सुख भोगा। अपरसुखहिजाततजिमिरोगा॥
जिहिविधिते भवविपतिनशाई। नृपहित मुनि सोकरहुउपाई॥
दो०। सुनहुसुमुखितबतुरितमें गयोंनृपतिके पास।
बाल्मीकिपहँचलनकहि ताहिमुक्तिकीआस॥
तुरितनृपहिं मैं संग लिवाई। पहुंचेजाइ जहां मुनि राई॥
पुनि मैं नृपहिं तहां बैठावा। मुनिहि इन्द्र सन्देशसुनावा॥
कियों प्रणाम धरणि धरिशीशा। पूछेनृपसन कुशल मुनीशा॥
तब नृप बोले अति हरपाई। तवपद देखिकुशल मुनिराई॥
देहु कृपाकरि सो उपदेशा। जिहिछूटै भव बन्धन क्लेशा॥
तासु वचन सुनि मुनिवरज्ञानी। कहेनृपहि अधिकारीजानी॥
रामायण सारांश विचारी। लेहु नृपति निजउरमहँ धारी॥
जीवन्मुक्ति विचरिहौ याते। छूटिहि भवबन्धनतब जाते॥
दो०। मुनि वशिष्ठ श्रीराम के मुक्ति केर सम्बाद।
सुनिय ध्यान धरि नृपति अब जाते मिटै विषाद॥
चौ०। कहे वशिष्ठ मुक्तिकरहेतू। सुनेराम करिमतिहिं सचेतू॥
हिय बिच निज स्वभाव ठहराई। जीवन्मुक्त भये रघुराई॥
सुनु इतिहास भूप धरि ध्याना। जिहि सुनि छूटै तोर अज्ञाना॥
तब बोले महीप कर जोरी। सुनहु कृपानिधि विनती मोरी॥

राम कौनकस तासु स्वभाऊ। किमि बिचरे सो मोहिं सुनाऊ॥
बोले तब मुनि गिरा सुहाई। हेनृप सुनहु हाल मन लाई॥
शाप हेतु धरि मनुज शरीरा। हरि अवतरे हरण महि भीरा॥
अति अद्वैत ज्ञान हरि पूरे। ह्वै अज्ञान चरित कृत रूरे॥
दो०। चिदानन्द अद्वैत हरि तिनहिं दीन्ह को शाप।
किहि कारण सो हाल सब कहौ कृपा करि आप॥
छंदलीला। मुनिकहे सुनहु नृपाल। निष्कामसुनि इककाल॥
जिहिनाम सनत्कुमार। थिति ब्रह्मपुर सुखसार॥
वैकुण्ठ ते हरि आय। त्रयलोक पति सुखदाय॥
उठि सभासद विधि साथ। पूजे चरण धरि माथ॥
मुनि नाहिं पूजन कीन्ह। हरि शाप ताकहँदीन्ह॥
दो०। सुनु मुनिहै अभिमान तुहिं निष्कामीकरजोय।
कामातुर ह्वै ताहिते धरहु स्वरूपहिं सोय॥
चौ०। स्वामीकार्तिकनामतुम्हारा। होइहिंप्रकटसकलसंसारा॥
सुनि मुनीशकरि कोप विशाला। दीन्हाशाप हरिहिं तत्काला॥
सर्वज्ञता केर अभिमाना। है है नाश सुनहु भगवाना॥
सुनिय भूप दूजो इतिहासा। शाप हेतुमैं करत प्रकासा॥
भईकाल वश भृगुऋषि नारी। तासुविरहअतिऋषयदुखारी॥
दोखिविष्णु कीन्हा परिहासा। दीन्ह शापऋषि होइ उदास॥
हँसत हमहिंजिहि कारणलागी। ह्वैहौ अवशि मोह दुख भागी॥
तीजी शाप हेतु सुनु राजा। जिहिते मनुज भये सुरराजा॥
दो०। कहत देवशर्म्मा सुभग जिहि ब्राह्मण को नाम।
दीन्ह शाप नरसिंहकहँ सुनु नृप हेतुललाम॥
चौ०। एकदिवसनृसिंहभगवाना। कीन्हदेवसरि तीरपयाना॥
रही तहां द्विज वरकी नारी। ताहि देखिहँसिकै असुरारी॥
तुरित भयानक रूप बनाई। डरित होइ तिय प्राण गँवाई॥
तिहिते शाप दीन्ह द्विजराई। लीन्ह शाप हरि शीश चढ़ाई॥
जिहिते विष्णु लीन्ह अवतारा। हेतु सकल मैं कहा भुवार॥

दशरथ गृह प्रकटे रघुराई। सहे जगतदुख नर की न्याई॥
चरित कीन्ह जो कछु रघुबीरा। सकलसुनहु भूपति मतिधीरा॥
दिव्य लोक भूलोक पताला। तासु प्रकाशक दीन दयाला॥
दो०। अनुभव आत्मक आत्ममम सर्वात्मकहिं प्रणाम।
वाल्मीकि मुनि ध्यान करु परमात्मा सोराम॥
चौ०।विषयप्रयोजनशास्त्रअरम्भा। श्रोतायुत सम्बन्धअदम्भा॥
सकल सुनहु भूपति मनलाई। कहौंसकल इतिहासबुझाई॥
ब्रह्म सच्चिदा नन्द स्वरूपा। अखिललोक व्यापकसुरभूपा॥
तिहिविधि भिन्न जनावत सोई। विषय कहत ताकहँ सबकोई॥
परमानन्द प्राप्ति जिहि माहीं। अरुअनात्मअभिमानदुखाहीं॥
करतनिवृत्ति प्रयोजन सोही। अब सम्बन्ध सुनहुजसहोही॥
विद्या ब्रह्म सुमोक्ष उपाया। आत्मपदहिं दायक ठहराया॥
सो सम्बन्ध कहावत भाई। अपरसुनहु नरपतिचितलाई॥
दो०। लखि अद्वैत ब्रह्म निजहिं वैरे अनात्म उपाधि।
रहित होन हित ढूंढहीं यत्न अमित चुपसाधि॥
चौ०।नहिंअतिज्ञानमूर्खनहिंजोई। वैकृतआत्माकहियतसोई॥
अधिकारी सो यहि - फल केरा। यहि महँ मोक्ष उपायबसेरा॥
परमानन्द प्राप्ति कर हेतू। शास्त्रन में लिपि कीन्हसचेतू॥
जो नर याको करे बिचारा। अवशि होइ सो ज्ञानअगारा॥
पुनि संसृत दुख पाव न सोई। आवागमन रहित सो होई॥
अति पावन रामायण येहू। अघ नाशक भंजन सन्देहू॥
जिहि महँ रामकथा मैं गाई। भरद्वाज कहँ प्रथम सुनाई॥
एक समय सो शिष्य सुजाना। मम समीपकरि तुरित पयाना॥
दो०। करि चित सुस्थिर आयऊ दियो ताहि उपदेश।
श्रवण द्वारते सारलै निज उर कीन्ह प्रवेश॥
चौ०। वचनसिन्धुरामायणसोई। परमानन्द रत्न तहँ होई॥
जिहि पावत भवविपति नशाई। पायो भरद्वाज तिहि भाई॥
कर्ण द्वार भरि उर भण्डारा। गयो सुमेरुगिरिहिं यक बारा॥

तहाँ पितामह विधि आसीना । भरद्वाज तिहि वन्दन कीना ॥
कथा समस्तकहे विधि पाहीं । सुनतमुदितविधिभेमनमाहीं ॥
कहे पुत्र माँगहु वरदाना । करि मोकहँ प्रसन्नअनुमाना ॥
सुनि ब्रह्मा वानी नर नाहा । भरद्वाज उर अधिक उछाहा ॥
त्रिकालज्ञ विधि सन वरदाना । मांगे सोसुनु नृपति सुजाना ॥
दो० । भव संसृत दुख रहितहै जीव मुक्त जिहि होय ।
पावहिं उत्तम परमपद देहु मोहिं वर सोय ॥
छं०विर्गीश । सुनु पुत्र वात याही । कह ब्रह्म ताहि पाहीं ॥
गुरु वाल्मीकि पासा । करि जाहु सोइ भासा ॥
शुभ आत्मवोध तामैं । जिहि राम ऐन नामै ॥
तिहि जीव जानु जोई । शुभ मुक्त पाव सोई ॥
यहि शास्त्रचित्त लावै । भव सिन्धु थाह पावै ॥
सो० । यह रामायण ग्रन्थ भवसागर को सेतु है ।
अति पावन यह पन्थ भव कानन भयनाशहित ॥
चौ०।पुनि विधिभरद्वाजकेसाथा । मम आश्रम आये नरनाथा ॥
सादरमैं करि विधि पद पूजा । जीव हितार्थ न जासम दूजा ॥
मो कहँपुनि आयसुविधि दयऊ। तजिहौजनिमुनिजोमनठयऊ ॥
राम स्वभाव केर इतिहासा । विनु समाप्ति जनि करव निरासा ॥
यह इतिहास मोक्षफल दायक। भववारिधि हित पोतसहायक ॥
यहि ते सकल जीव सुख पैहैं । गाइ गाइ भ्रम भेद गमैहैं ॥
असकहि विधि अंतरहितभयऊ। उठिनिधिवीचमनहुँछपिगयऊ॥
तव मैं भरद्वाज सन वूझा । कहे काह विधि मोहिं न सूझा ॥
दो० । यथा योग्य मुनि वाक्य सव मोसन कीन प्रकाश ।
विधि आयसु निज शीशधरि कियों ग्रंथ विश्वाश ॥
चौ०।रचिसमग्रमैंमुनिहिसुनाई । रामायण सन्तन सुखदाई ॥
जिमि गुरु सन सुनिश्रीरघुराई । जीवनमुक्ति होइ सुखपाई ॥
तिमिसुतजानि निरसभवभोगा । विचरहुजगमहँ हियधरि योगा॥
तवमोसन पुनिसो असभाषा । श्रवणहेतुकरिमनअभिलाषा ॥

किहिविधि रामहिं भयो विरागा। क्रमतेकहिय सहितअनुरागा॥
मैं तिहि सोपुनि कहा बुझाई। आदिहिते रघुपति प्रभुताई॥
दशरथ राम भरत रिपुहन्ता। कौशल्या सीता सु अनन्ता॥
सहित सुमित्रा वसु गनि लीजै। मुक्त भये सो श्रवण करीजै॥
दो०। वसुमंत्री वसुगुण सहित अरु वशिष्ठ संयुक्त।
वामदेव युत नखत शशि भये सु जीवन्मुक्त॥
छं० चौ०। प्रथमकृतार्थभयेवसुनाम। समदरशीगुणवंतअकाम॥
कुन्तभासि शत्त वर्द्धन दोउ। सुख धामा सु विभीषन सोउ॥
सहित इन्द्रजित अरु हनुमान। वामदेव सु वशिष्ठ सुजान॥
अष्ट मंत्रि ये है निःशंक। सदा अद्वैत निष्ट जग भंक॥
जानहिं सदा अनित्य शरीर। मोर तोर जिहिदीन्ह न पीर॥
केवल परमानन्दहि पेखि। लीन भये सब महँ इक देखि॥

तीर्थयात्रा बर्णन॥

दो०। देव दूत अप्सरा सन कहु सोई सम्वाद।
तिहि पुनि कारण सन कहे अग्निवेषअह्लाद॥
चौ०। सोसम्वादअगस्त्यमुनीशा। शिष्यसुतीक्ष्णहिंदीनअशीशा॥
प्रथम सर्ग सम्वादहि केरा। दूजे अटन तीर्थ बहुतेरा॥
सोइ श्रोता सन वक्ता सोई। क्रमते कहौं कहे तिन जोई॥
जिहि विधि भरद्वाज मुनिज्ञानी। वाल्मीकि सोयुत मृदुवानी॥
कियो प्रश्न सो सुनु मन लाई। किहिविधि जीवन्मुक्तिसुठाई॥
जीवन्मुक्ति राम किहि भाँती। भये सुकहिय रुपाकी काँती॥
वाल्मीकि कह सुनु सुत सोई। शून्य जगत कछु वस्तुनहोई॥
स्वप्न सरिस सबही संसारा। जानि परतजबकरिय विचारा॥
दो०। तबलौं भासित सत्य जग जबलौं है अविचार।
जिमि नभ शून्य सुनीलता देखिपरत व्योहार॥

चौ०। जबलगिंहोइसृष्टिअभावा। तबलगि कौनपरमपदपावा॥
दृश्य ब्रस्तु कर भाव नशाई। सव्यात्मा तबही उर छाई॥
महा प्रलय में याको नाशा। कौ २ असप्रकटतइतिहासा॥
याको तीनिहुं काल अभावा। होत कहहुंसो सुनुसंतभावा॥
जो समग्र यह शास्त्र श्रवणकरु। अरुसारांशविचारिहृदयधरु॥
तासु सकल भ्रम तुरित नशाई। सो शुभ अव्याकृत पदपाई॥
सुनुसुतभ्रममय यह संसारा। लखि भ्रममात्रजु याहिविसारा॥
ताको मुक्त कहत है वेदा। बन्धन हेतु वासना भेदा॥

दो०। जब लगि दूर न वासना भटकि मरतु है जीव।
तासु नाशके होतही प्राप्ति परमपदसीव॥

छन्द तरलनयन॥

मनहिकहत पुतल रचित। सरिस जलहिवरफखचित॥
बनत शरद लगततुरित। जल सुकठिन कठिनचरित॥
दिवस मणिजुतपतजबहिं। पुनि सुजलहिंबनततबहिं॥
अतम सुजल सरिसलखहु। सतजगतहि शरद रखहु॥
मन वरफ सरिस जुबनत। जगत असत सुतजुगनत॥

सो०। ज्ञानसु भानु प्रकाश जगत सत्यता शीतता।
तुरतहि पावत नाश शुद्धात्मा जल बनत पुनि॥

चौ०। तुरतहिसब वासनादुराई। जगत सत्यता असतलखाई॥
वरफ सरिस मन जबहिंनशाई। अतिकल्याण लखहु तबभाई॥
कहत बासना के युग भेदा। शुद्ध अशुद्ध सुजानत बेदा॥
सत्य जानि जो निज अज्ञाना। राखत देहादिक अभिमाना॥
तन अनात्मकहँ आत्मा जाना। तिहिते उपजु बासना नाना॥
घटी यंत्र इव निशिदिनभ्रमहीं। अहमितिबीजहृदयमहँजमहीं॥
पंच भूत ते रचित शरीरा। देखिपरतजहँ लगिमतिधीरा॥
सो बासिना रूप है भाई। तिहिते रचित रूप दिखराई॥

दो०। पोहित जबलगि तागमहँ मणिहै तबल्योंहार।
टूटिपरे पुनि बिल... त्यों शरीर व्यौहार॥

जब लगि रहहि वासना लागा। पंच भूत मणि युत यहभागा॥
हार शरीर तबहिं लगि भाई। टूटत तार नाश ह्वै जाई॥
सब अनर्थ कर हेतु वासना। जानिय करिविचारउपासना॥
शुद्ध वासना कर अब भेदा। सुनहु मिटैजिहिसम्भवखेदा॥
यहि महँ जग अभाव ठहराया। असतलखैजिमिनटकृतमाया॥
सुनहु शिष्य निश्चय अज्ञाना। ते पुनि पुनि संसृतभवनाना॥
ज्ञान वासना संसृत नाशै। दग्धबीज जिमिपुनिनप्रकाशै॥
रसयुत बीज सरिस अज्ञाना। उपजत पुनिसो सुनोसुजाना॥

दो०। रसयुत बीजहि दग्धकरु सोइ वासनाज्ञान। ॥
तिहिते पुनि उपजै नहींमानहु वचनप्रमान॥

चौ०। ज्ञानी की चेष्टा जो अहई। स्वाभाविक गुण करकेरहई॥
वह काहू के साथ मिलापा। करि चेष्टा नहि देखत आपा॥
खावै पिवै लेइ अरु देई। बोलतहू है सब सुन तेई।
चलै अपर व्यौहारहु करई। नित अद्वैतनिश्चयचितधरई।
द्वैत भाव कदापि नहिं होई। निज स्वभाव मे इस्थितसोई।
ताते निर्गुण अवर अरूपा। ताहू की चेष्टा जो भूपा।
अहै जन्म को कारण नाहीं। जिमि कुँभार को चक्रसदाहीं।
जब लगि वाको फेर चढ़ावै। तबलगि सोफिरतहिरहिजावै।

दो०। अरु जब फेर चढ़ावना छोंड़ि देत है सोय।
स्थीयमान गतिसोसुथिरउतरतउतरतहोय॥

चौ०। तैसेजबलगिअहंकारयुत। रहतवासना लहत जन्मसुत।
अहंकार ते रहित होत जब। बहुरि जन्म पावतनाहींतब।
यह अज्ञान रूप जु वासना। ताको जौतुम चहहु नाशना।
साधु! तासु यह एक उपाई। श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या है भाई।
नृपति! ब्रह्म विद्या है जोई। मोक्ष उपाय शास्त्र ही सोई।
गिरिहै जब याते बिलगाई। और शास्त्र गरतहि में जाई।
पैहै न तब कल्प पर्य्यन्ता। अकृत्रिम पदको गुणवन्ता।
आश ब्रह्म विद्या परलावै। सुख सो आत्मपदहिसोपावै।

दो०। भरद्वाज यह ग्रन्थजो सुन्दरमोक्ष उपाय।
अतिहि ललितसम्वादसोंश्रीविशिष्ठरघुराय॥
चौ०।सोविचारने योग्यसधारण। अरु है परमबोधको कारण।
सोइ आदि ते अन्त प्रमाना। मोक्ष उपाय सुनहु दै काना।
जिमि ह्वै जिवन्मुक्ति रघुराई। विचरे सो सुनिये मनलाई।
एक दिवस श्री राम सुभाये। विद्या पढ़ि निज गृहमेंआये।
दिन सम्पूर्ण विचार समेतू। करहिं व्यतीतनीतिश्रुतिसेतू।
पुनि तीर्थाटन की संकल्पा। करिआये पितुढिगअतिअल्पा।
पितु के साथ जो प्रजा सारी। राखत हैं दिन राति सुखारी।
अरु सब प्रजा मुनीश सदाई। ताके ढिग रहिकै सुखपाई।
दो०। तिहि दशरथ के चरण को ग्रहण कीन्ह सुरत्रात।
हंस ग्रहण जिमि करतहै लखिसुन्दरजलजात॥
चौ०।जैसे कमलसुमनकेनीचे। होति तरय्यां कोमल बीचे॥
तोक सहित कमलन पर आई। हंस कमल को पकड़तधाई॥
तिमिदशरथकीअँगुरिन चीन्हा। ताको ग्रहण रामजीकीन्हा॥
अरु बोले यहवचन पितासे। मेरो मन ठाकुर द्वारासे॥
अरु सब तीर्थाटन को लागा। है ताके दरशन को पागा॥
ताते तव आज्ञा जो पाऊं। तीर्थाटन दरशन करि आऊं॥
अहो नाथ मैं पुत्र तुमारा। करन पालना योग हमारा॥
आगे कहा नहीं कछु कबहीं। यह प्रार्थना करी है अबहीं॥
दो०। ताते आज्ञा देहु तुम जो मैं जाउँ प्रभात।
वचननफेरबमोरियह कहौंजोरि करतात॥
चौ०। काहेते जो त्रिभुवनमाहीं। ऐसी कोउ वस्तु है नाहीं॥
जो काउ को मनोरथराई। बिना सिद्धि यहिघरतेजाई॥
सिद्धि मनोरथ भा सब केहू। ताते मोकहँ आज्ञा देहू॥
वाल्मीकि कह सुनहु सुजाना। भरद्वाज ज्ञानी धरिध्याना॥
यहि प्रकार जब राम प्रकासा। तब वशिष्ठ जो बैठे पासा॥
तिननेहू दशरथ सो भाषा। हे अवनीश!रामअभिलाषा॥

पूर्ण करहु जो ताको भावै। आज्ञा देहु तीर्थ करिआवै॥
इनको चित्त उठा है जोई। राजकुमार भूप यह होई॥
दो०। सेना धन मंत्री सहित ब्राह्मण दीजै साथ।
जो करि आवैंदश्शयहभली भाँतिनरनाथ॥
चौ०।जब ऐसोविचारनृपकीना। शुभमुहूर्त्तलखिआयसुदीना॥
चलनलगे तब युत अनुरागा। मातु पिताके चरणनलागा॥
अरु पुनिसबको कण्ठ लगाई। रुदन करन लागे रघुराई॥
आगे चले तिनहिं मिलि साई। कसलक्ष्मणआदिकजोभाई॥
अरु मंत्री तिनको लै साथा। वशिष्ठादि जो ब्राह्मण गाथा॥
तिनमें जो विधि जाननवाले। चले बहुतधन अरु सेना ले॥
बहुविधि करत पुण्यअरु दाना। गृह बाहर निकसे भगवाना॥
रहे वहां जो लोग लुगाई। सबमिलि कलीमालबरपाई॥
दो०। सो वरषा कसि होतहै जैसे परत तुहीन।
अपर राम की मूर्त्ति जो सो हियमें धरि लीन॥
चौ०।तहँसोचलेरामयहिभांती। जो ब्राह्मण अरु निर्धनजाती॥
देत देत तिनको बहु दाना। गंग यमुन सरस्वती नहाना॥
जब असनानाविधि सहित भयऊ। चारों कोण भूमि तबदयऊ॥
स्नान चारि सागर को कयऊ। अरु सुमेरु हिमगिरिपर गयऊ॥
सम्पूरण गंगा महँ जाई। विधि संयुक्त कुमार नहाई॥
शालिग्राम बद्रि केदारा। आदिक माहँ नहान कुमारा॥
अस सब तीरथ दरश सुजाना। किय असनानदान तपध्याना॥
यात्रा विधि संयुत सब कीना। जहँजसविधितँहतसकरिदीना॥
दो०। करिकै एकहि वर्ष महँ सब यात्रा निज धाम।
सहित समाज अनन्द युत आये सीता राम॥

बिश्वामित्रागम बर्णन ॥

दो० । भरद्वाज सादर सुनहु वाल्मीकि कह बैन ।
आये यात्राकरि जबहिं राम अवध निज ऐन ॥
बरषा सुमन कलीन की नगर नारि नरकीन ।
मुख ते उच्चारन लगे जय जय शब्द प्रवीन ॥
सो० । अपर बड़े उत्साह को सब कोऊ प्राप्त भे ।
सुत जयन्तसुरनाह जिमिआवतनिज स्वर्गमहँ ॥
तैसे राजा राम आये अपने धाम महँ ।
नृप दशरथहिंप्रणाम करिपुनि कीन बशिष्ठकहँ ॥
चौ० ।उठिउठिमिलेसभाकेलोगू । राम कीन्ह रहजोजिहिंयोगू ॥
अन्तःपुर आये सुर त्राता । तहँ जो कौशल्यादिक माता ॥
यथा योग्यप्रणाम तिहि कीन्हा । सबमिलिउत्तम आशिषदीन्हा॥
जो भाई बांधव परिवारा । मिले सबहि उठिराम उदारा ॥
भारद्वाज तहां यहि भांती । रहा सात बासर अरु राती ॥
रामचन्द्र के आवन केरा । छाय रहा उत्साह घनेरा ॥
मिलन कोउतिहि अवसर आवै । अरु कोऊ कछु लैने जावै ॥
दान पुण्य तिहि करतअथाहा । बाजे बजत होत उत्साहा ॥
स्तुति करने भाटादिक लागे । सुनिये शिष्यसकलछलत्यागे ॥
तदनन्तर जो भा आचरना । रामचन्द्रको कलिमल हरना ॥
प्रातःकाल करहिं निज धर्म्मा । मज्जनसंध्यादिक सत्कर्म्मा ॥
तब सो भोजन करहि बहोरी । पुनि लै भाइबन्धु निजजोरी ॥
मिलिकै एक संग सब रहहीं । कथा तीर्थ यात्रा की कहहीं ॥
देव द्वार के दरशन केरी । करहिं वारता प्रभु बहुतेरी ॥
करि उत्साह राम यहि भांती । करत व्यतीत दिवसअरुराती ॥
एकदिवस भोरहि उठि रामा । देखे दशरथ को गुण धामा ॥
दो० । जैसे चन्द्र प्रताप तिमि तेजवान तिहि देखि ।

अरु वशिष्ठ आदिक सभा वैठी तहां विशेषि ॥
तहाँ जाय रघुवंशमणि वशिष्ठजी के संग।
कथा वारता नेम सों करहिं नित्य वहु रंग ॥
सो० । तहँ यक दिवस नरेश कहत भयो हे रामजी ! ।
तुम वनाय सब भेश हित शिकार जैया करहु ॥
तिहि अवसर मम जान रामचन्द्र की अवस्था ।
षोडश वर्ष प्रमान महँ कमती थोरहि रही ॥
चौ० । रहे लपन रिपुहन सब साथा । कतहूँ भरत नहान गया था ॥
तिनहुँ संग चर्चा इतिहासा । करहिंसुनहिंसबसहितहुलासा ॥
सन्ध्या स्नानादिक तिहि संगा । नित्य कर्म करिकै वहु रंगा ॥
पुनिउठिसबमिलिभोजनखाहीं । तब अहेर खेलन को जाहीं ॥
तहँ देखहिं जो पशु दुखदाई । ताको सबमिलि मारहिंयाई ॥
अवर लोग कहँ करत अनन्दा । चले जात खेलत रघुनन्दा ॥
रात्रि समय वाजनेहिवजावत । सहितनिशानधामनिजआवत ॥
अस करतहि केतिक दिनवीते । तवहिं राम वाहिरते रीते ॥
निज अंत पुर में सो गयऊ । शोकसहित इस्थिततहँभयऊ ॥
राजकुँवर की चेष्टा जेती । रही त्यागि दीन्ही तिन तेती ॥
अरु एकान्त माहँ पुनि जाई । चिन्ता युत वैठे शिरनाई ॥
जेते कछु रस सहित अनेका । इन्द्री केर विषय अविवेका ॥
त्यागि दियो तन ते यहिभांती । दुर्वल भये घटी मुख कांती ॥
पीत वर्ण है गयहु शरीरा । जैसे होत कमल विनु नीरा ॥
होति शूक के पीत अधीरा । तैसे होइ गई मुख पीरा ॥
तापर मधुकर वैठत आई । तिमिसूखे मुख नयन लखाई ॥
दो० । होनलगी छविसोभई इच्छा निवृत कराल ।
जैसे निर्मल होतहै शरदकाल महँ ताल ॥
तैसे इच्छा रूप यह मल ते रहित उदोत ।
चित्त रूप सब भांतिते तालहु निर्मलहोत ॥
सो० । अरुह्वैजात शररि दिनदिनपै निर्मल अधिक ।

अरु शोकहू अल्प कारन कर। होत नहीं नरनाह धुरंधर॥
क्षिति जल तेज मरुत नभ जैसे। जो है महा भूत नभ कैसे॥
देखहु अल्प कार्य्य महँ सोई। कबहुं विकारवान नहिं होई॥
होय प्रलय-उत्पाति जग जबहीं। होत विकारवान यह तबहीं॥
जैसेही ये अल्पहि काजा। होत विकारवान नहिं राजा॥
ताते हे राजन! करु भोगू। तुमनहिं शोक करन के योगू॥
भे जो शोकवान रघुराऊ। सोऊ निमित अर्थ के काऊ॥
पीछे सुख मिलिहै तेहि काहीं। तुमजनिशोककेकरहुमनमाहीं॥
वालमीकि बोले हरपाई। सुनिये भरद्वाज मन लाई॥
अस नृप अपर वशिष्ठ उदारा। बैठे मनमहँ करत विचारा॥
गाधिसुवन तेहि अवसर आये। निजै यज्ञके अर्थ सिधाये॥
राजा दशरथ के गृह आई। कहे ज्येष्ठी कहँ समुझाई॥
जाय कहौ नृप सों मम कामा। विश्वामित्र गाधिसुत नामा॥
ठाढ़े हैं बाहर मुनि सोई। कहा जाय तब औरहु कोई॥
खड़ा द्वार पर है हे स्वामी!। एक बड़ा तपसी अरु नामी॥

दो०। तिनहम को ऐसा कह्यो जो नृप दशरथ पास।
आये विश्वामित्र मुनि जाय करहु परकास॥
यह सुनि औरन ने कहा दशरथ के ढिग जाय।
विश्वामित्र जु गाधि सुत बाहिर ठाढ़े आय॥

सो०। पूजित दशरथ राव सकल मण्डलेश्वरन कर।
सवन सहित तिहि ठाव बैठे सिंहासन उपर॥
बड़े तेज सम्पन्न ऋषि मुनि साधु प्रधानअरु।
मित्रादिकन प्रसन्न करि वष्टित राजत नृपति॥

चौ०। भरद्वाज!तिहिराजहिआई। वार्त्ता ज्येष्ठी कहा बुझाई॥
तबजो नृप मण्डलेश्वरन कर। आच्छादित ह्वै बैठे तहँ पर॥
अरु अति तेजवान गातन ते। सुनि सुवर्ण के सिंहासन ते॥
उठिकै खड़ा भया नरनाहा। चलापयादहि सहितउछाहा॥
एक ओर वशिष्ठजी आये। दूजी वामदेव उठि धाये॥

जहँ बैठैं तहँ वीर रहि जावैं चिन्ता सहित ॥
यहि विधिते रघुनाथ उठैं नहीं बैठैं जहाँ ।
तहाँ चिवुकपर हाथ धरिकै बैठिरहत अगम ॥

चौ० । जबसेवकमंत्रीबहुकहहीं । कै हे प्रभु अब वेला अहहीं ॥
यह नहान सन्ध्या को नाथा । सो अबउठहु कहहिंधरिहाथा ॥
तब उठि अस्नानादिक करहीं । अरु हियमें विचार नहिंधरहीं ॥
जेती कछु खाने पीने की । पहिरन चलन क्रिया जीनेकी ॥
सो सब बिरस ताहि ह्वै गयऊ । ऐसे रामचन्द्रजी भयऊ ॥
तब लक्षमण शत्रुहन दोऊ । रामहिं संशय युत लखिसोऊ ॥
अरु दोऊ प्रकार सन ताही । बैठि रहे यकान्त मह जाही ॥
यह बार्त्ता दशरथ सुनि पाई । राम पास बैठे तब आई ॥
महा कृशित तिन ताको देखी । यासों आतुर भयहु बिशेखी ॥
हाय! हाय!! जो ऐसी याकी । भई अवस्था क्यों यह ताकी॥
शोक निमित्त सहित अनुरागा । अंक माहँ भरि पूंछन लागी ॥
बोलै सुन्दर कोमल बानी । पुत्र! भई क्यों तोहि गलानी ॥
शोकवान भे हौ तुम जासों । तब बोलत भे राम पितासों ॥
हम कहँ तौ दुख कोऊ नाहीं । ऐसे कहि कहि चुप ह्वैजाहीं ॥
गै केतिक दिन याहि प्रकारा । शोकवान तब भयो भुवारा ॥
शोकवान पुनि भईं सब नारी । राजा मंत्री मिलि सबझारी ॥

दो० । लागे करन विचार सब तब बोले नर नाह ।
जो अब कीजै पुत्रको कोऊ ठौर विवाह ॥
यह भी कीन्ह विचार कै याहि भयो है काह ।
शोकवान ह्वै रहत जिहि तजि कै पुत्र उछाह ॥

सो० । पूँछत भे जगदीश तब यह बात वशिष्ठ सन ।
मेरो पुत्र मुनीश शोकवान काहे रहत ॥
तब वशिष्ठ कह शोध महापुरुष को हे नृपति ।
होय जातजो क्रोध काहु अल्प कारणसुनहि ॥

चौ० । अपरमोहहूतिहिमनमाहीं । होत अल्प कारनकरि नाहीं ॥

अरु शोकहू अल्प कारन कर। होत नहीं नरनाह धुरंधर॥
क्षिति जल तेज मरुत नभ जैसे। जो है महा भूत नभ कैसे॥
देखहु अल्प कार्य्य महँ सोई। कबहुं बिकारवान नहिं होई॥
होय प्रलय उत्पाति जग जबहीं। होत विकारवान यह तबहीं॥
जैसेही ये अल्पहि काजा। होत बिकारवान नहिं राजा॥
ताते हे राजन! करु भोगू। तुमनहि शोक करन के योगू॥
भे जो शोकवान रघुराऊ। सोऊ निमित अर्थ के काऊ॥
पीछे सुख मिलिहै तेहि काहीं। तुमजनिशोककरहुमनमाहीं॥
वालमीकि बोले हरषाई। सुनिये भरद्वाज मन लाई॥
अस नृप अपर वशिष्ठ उचारा। बैठे मनमहँ करत बिचारा॥
गाधिसुवन तेहि अवसर आये। निजै यज्ञके अर्थ सिधाये॥
राजा दशरथ के गृह आई। कहे ज्येष्ठी कहँ समुझाई॥
जाय कहौ नृप सों मम कामा। विश्वामित्र गाधिसुत नामा॥
ठाढ़े हैं वाहर मुनि सोई। कहा जाय तब औरहु कोई॥
खड़ा द्वार पर है हे स्वामी!। एक बड़ा तपसी अरु नामी॥

दो०। तिनहम को ऐसा कह्यो जो नृप दशरथ पास।
आये विश्वामित्र मुनि जाय करहु परकास॥
यह सुनि औरन ने कहा दशरथ के ढिग जाय।
विश्वामित्र जु गाधि सुत वाहिर ठाढ़े आय॥

सो०। पूजित दशरथ राव सकल मण्डलेश्वरन कर।
सवन सहित तिहि ठाव बैठे सिंहासन उपर॥
बड़े तेज सम्पन्न ऋषि मुनि साधु प्रधानअरु।
मित्रादिकन प्रसन्न करि वर्धित राजत नृपति॥

चौ०। भरद्वाज! तिहि राजहि आई। वार्त्ता ज्येष्ठी कहा बुझाई॥
तबजो नृप मण्डलेश्वरन कर। आच्छादित है बैठे तहँ पर॥
अरु अति तेजवान गातन ते। सुनि सुवर्ण के सिंहासन ते॥
उठिकै खड़ा भया नरनाहा। चलापयादहि सहितउछाहा॥
एक ओर वशिष्ठजी आये। दूजी वामदेव उठि धाये॥

सबमिलि चले सुभटकी नाई । कहत मण्डलेश्वर यह जाई ॥
जहँ ते विश्वामित्र लखाये । हितप्रणाम नृपशीश नमाये ॥
परत धरनिपर जहँ शिर सोई । तहँ सुन्दरि मोतिनकी होई ॥
यहि विधानते नावत शीशा । चले ऋषय आगे जगदीशा ॥
सो विश्वामित्रहु कसअहहीं । शिरते जटा कन्धं लगि रहहीं ॥
अपर प्रकाशित अग्नि समाना । तनसुवर्ण प्रकाश करिजाना ॥
शांतिहृदयअति सरलस्वभावा । तेजवान अस अधिकजनावा ॥
सुन्दरिकांती शांति स्वरूपा । तन्द्रि बाँसकी हाथ अनूपा ॥
महा धैर्य्यवानहू अकामा । ऐसे गाधि सुवनहिं प्रणामा ॥
करत गिरे चरणन पर जाई । जैसे रवि शिव पद पर आई ॥
तिमि मस्तक नमाय नृपबोला । धीर धुरन्धर बचन अमोला ॥

दो० । हैहमारि अतिभाग्य जो दरशन भयहु तुम्हार ।
अधिक अनुग्रह कीन तुम मोपर होय उदार ॥
मोहिं अतिहि आनन्दभा जुहै अनादि अनन्त ।
आदिमध्य अन्तहुरहित अविनाशी भगवन्त ॥

सो० । अकृत्रिम आनन्द ऐसा है जो जगत महँ ।
तवदरशन सुखकन्दसो अबप्रासलखातमोहिं ॥
हे भगवन्! अबआज प्रबल भाग्य मेरीभई ।
धर्मात्मा के काज महँ गिनने में आइहौं ॥

चौ० । काहेते जो मंगल सेतू । आयो मम कुशलहिं के हेतू ॥
हे भगवन् ! आगमन तुमारा । रहा नाहिं अस लक्ष हमारा ॥
अरुतुम अमित अनुग्रह कीना । जो मोकहँ निजदर्शनदीना ॥
जिमि रवि कोउ कामजब पावै । तब पृथ्वी के ऊपर आवै ॥
तैसे तुमहुं दृष्टि में आओ । अरु सबते उत्कृष्ट लखाओ ॥
दुइ गुण तुम में अहै उदारा । यक तो क्षत्रिसुभाव तुमारा ॥
अरु दूजे ब्राह्मणहु स्वभावा । हैं तुम महँमुनीश सतभावा ॥
सब गुण ते सम्पूरण रहहू । तुम क्षत्री से ब्राह्मण अहहू ॥
अस काहुहि समर्थ नहिं देखा । जो तुमार प्रकाश हमपेखा ॥

अरु जिन मार्ग होत तुम आये। चहुँओर निज दृष्टिलगाये ॥
तहँ करि आयहु अमृत वृष्टी। ऐसो आवत है मम दृष्टी ॥
हे मुनीश! जो भा तुव आवन। ताते मोर भयो गृह पावन ॥
लाभ दरशते भा अति मोहीं। अस्तुतिकरौंकौनबिधि तोहीं ॥
भरद्वाज सुनु सहित उछाहू। जब यहिभाँति कहा नरनाहू ॥
अरु वशिष्ठ ताके ढिगआये। विश्वामित्रहि कण्ठलगाये ॥
पुनिजु मण्डलेश्वर तिहिठामा। ते सब कीन्ह अनेक प्रणामा ॥

दो० यहि प्रकार सब जन मिले विश्वामित्रहिं आय।
तब तिनको दशरथ नृपति तुरतहि घरमहँलाय ॥
सादर बैठारत भये सिंहासन ढिग जाय।
वामदेव अरु गुरुहि पुनि बैठारे नर राय ॥

सो० वहुविधि पूजन कीन्ह राजा विश्वामित्र कर।
पुनि प्रदक्षिणा दीन्ह अर्घ्य सु पदार्घ बहुकरि ॥
बहुरि वशिष्ठ हु आय ताको पूजन कीन तब।
विश्वामित्रहु धाय पूजन कीन्ह वशिष्ठ कर ॥

चौ०। अन्यअन्य पूजनभाऐसे। विविधरीति पूज्यौ सबतैसे ॥
अपने अपने आसन आई। यथा योग्य बैठे शिर नाई ॥
तब भूपति दशरथ इमि बोला। हेभगवन्! ममभाग अमोला ॥
जो तुमार दरशन भा आजू। भयों कृतार्थ समेत समाजू ॥
जैसे अधिक तृप्त रह कोई। ताहि प्राप्त अमृत जब होई ॥
अरु जन्मान्ध आँखि जब पाई। सो आनन्द कतहु न समाई ॥
जिमि निर्धन चिन्तामणिपावा। भा अनन्द गा दुःख दुरावा ॥
अरु जैसे काहू को भाई। बांधव मुवा होय नर राई ॥
सो विमान आरूढ़ि लखावै। सब को गृह अकाशते आवै ॥
जस आनन्द होत तब ताही। सोमोसोंकिहिविधिकहिजाही ॥
तव दरशन ते मोहि अनन्दा। तैसे भा मुनीश सुख कन्दा ॥
हे मुनीश आगमन तुमारा। भयो निमित्त जासु सोसारा ॥
अर्थ कृपा करि मोसन कहहू। भयो विचारिमौन्यजनिरहहू ॥

अर्थ तुमारे होइ है जोई । पूर्ण भया जानव, तुमसोई ॥
काहेते जो यहि जग माहीं । कोऊ अस पदार्थ है नाहीं ॥
जाहि कठिन ता वशनहिं देऊं । अयश कराल जगतमें लेऊं ॥
दो० विद्यमान मोरे अहै सब कछु करहु विचार ।
सो अशंकह्वै कहहु तुम होइहि अर्थ तुमार ॥
सो निश्चय करि जानियो होयरहाहै योग ।
जो कछु तुम आज्ञा करहुसुमैं देहुँबिनुसोग ॥
सो० यहि त्रिवियुक्तिबनायजबबोले दशरथनृपति ।
तबमुनीशहरपाय; धन्य! धन्य!! कहनेलगे ॥
यह प्रकरण धरि ध्यान सुनिहैंसीतारामजे ।
सो आरूढ़ बिमान स्वर्ग लोकको जाइहैं ॥
विश्वामित्रेच्छा ॥
दो० भरद्वाज यहि भाँति जब दशरथ नृप कहवात ।
शारदूल मुनिमाहँ तबगाधिसुवनकरगात ॥
ह्वै प्रसन्न पुलकित भयो रोम रोम भै ठाढ़ ।
राका शशि लखि क्षीरनिधि जिमिप्रसन्नह्वैबाढ़ ॥
सो० तैसे है; हे राज ! शारदूल तुम धन्यहौ ।
असनहोहुकिहिकाजतुममहँह्वैगुण श्रेष्ठजो ॥
हौ रघुवंशी एक दूजे गुरुवशिष्ठ, तब ।
राखत ताकी टेकअरु तिहि आज्ञाले चलत ॥
चौ० ताते, हे राजन् ! जो मेरे । कछुक प्रयोजन सन्मुख तेरे ॥
प्रकट करत सुनिये तजि दम्भा । किय दशरात्र यज्ञ आरम्भा ॥
करन लगत जब ताकहँ जाई । तब खरदूषण निशिचर भाई ॥
तिहिविध्वंस करन खललागा । जहँजहँ जाय करतजबयागा ॥
तहँ तहँ विध्वंसहि सो करहीं । अति अपवित्रवस्तुसनभरहीं ॥
डारहिं अस्थि रुधिर अरुमासू । रहनयोग न रहत तिहि पासू ॥
बहुरि और ठौरहु जब जाऊं । करि अपवित्र जायँ सोठाऊं ॥
तिनके नाश करन के काजा । मैं आयों तव ढिग अवराजा ॥

कहहु कदाचित जौ यह बाता। तुमहूं तौ समर्थ्यतिहि ताता॥
मैं जो यज्ञ अरम्भ्यों राई। ताकी अंग क्षमा है भाई॥
जो मैं शाप देइहों ताही। तो जारि तौ तुरन्त वहजाही॥
पर नहिं शाप क्रोध विनु होई। क्रोध किये ते निष्फलसोई॥
दो० जो मै चुपहूवै रहहुं तो डारिजात अपवित्र।
ताते आयों शरण तव अस कह विश्वामित्र॥
हे राजन! तव पुत्रजो कमलनयन है राम।
काकपक्ष संयुक्त अरु सकलगुणनकोधाम॥
सो० जो बालक नरनाथ रहत दूसरी शिपायुत।
ताकहँ मोरे साथ दीजै जो मारै तिनहि॥
सफ़ल यज्ञ तवहोय मेरी ऐसे खलन सों।
ममसुतबालकसोयअसिचिन्ताजनिकरहुनृप॥
चौ० यह तो अहै बड़ो रनधीरा। इन्द्र समान शूर अरु बीरा॥
आवत ताके सन्मुख माहीं। ठहरन योगम्लेच्छ सो नाहीं॥
जिमि केहरिसन्मुखमृगबालक। ठहरिनसकतनृपति वचपालक॥
तैसे तव पुत्रहु के नेरे। ठहरि न सकि हैं दैत्यघनेरे॥
ताते इनहि मोहिं तुम देहू। रहै धर्म्म जग महँ यश लेहू॥
अपर होइ हमार बड़ काजा। यामें संशय करहु न राजा॥
हे राजन! त्रिभुवन महँ कोई। कतहुँ पदार्थ न ऐस न होई॥
जाकहँ राम करि सकत नाहीं। याते तव पुत्रहि लै जाहीं॥
ममकरसों आच्छादित रहिहै। मोरे करत विघ्न नहिंलहिहै॥
अरु जो बस्तु पुत्र यह तोरा। सो सब विधि जानाहै मोरा॥
बात वशिष्ठहु की सब जानी। जो त्रिकालदरशी अरुज्ञानी॥
सोऊ जानत है हैं ताही। दूजे की समरथ असनाही॥
दो० जानिसकै जो यासुको ताते अब यहि साथ।
देहुहोयजिहि सिद्धि मम कार्यसकलनरनाथ॥
हेराजन! जो समय करि कार्य होत है कोय।
सोऊ होतहै बहुत नृप सिद्धि थोरहू होय॥

सो० जैसे वचन प्रमान चन्द्र द्वितीयाको निरखि।
एक तन्तुका दान किये होत पीछे बहुत॥
सो वित्ति बिनु याम दान वस्त्र हू के किये।
होत न तैसन काम सिद्ध होतजोसमय पर॥
चौ०। थोरहुकामसमयकरतैसे। अमित सिद्धिको दायककैसे॥
अपर समय बिनु करत प्रवीना। बहुतहु कारजको फलहीना॥
ताते आन विचारन कीजै। मोरे संग राम को दीजै॥
खर दूषण राक्षस अति भारी। खण्डन करत सुयज्ञ हमारी॥
ज्यों यह रामचन्द्र आवेंगे। तब वह भाग सबहि जावेंगे॥
अरु उन रामचन्द्र के आगे। होइ न सकि हैं ठाढ़ अभागे॥
इनके रोष तेज के आगे। ह्वै जाइ हैं अल्प छल पागे॥
जैसे सूर्य्य तेज कठिनाई। तारागण प्रकाश छपि जाई॥
तैसे राम दर्श जब लहिहैं। तब सो खल सुस्थिरनहिरहिहैं॥
जिमि देखहु बिहगवर पाहीं। काऊ पन्नग नहि ठहराहीं॥
तैसहि इनके सन्मुख आई। नहिं ठहरि हैं राक्षहु भाई।
भगि हैं देखि सहित संदेहू। ताते मोहि राम कहँ देहू॥
सो० होय हमारो कार्य अरु धर्महु रहइ तुमार।
तिहिनिमित्तजानिकरहुतुम कछुसंदेहविचार॥
नहिं समर्थता तासुकी राम निकटजोजाय।
मैंहूं रक्षा रामकी करिहौं मनवचकाय॥
सो० भरद्वाज! सुजान; वाल्मीकि, बोलतभये।
जबअस वचन प्रमान विश्वामित्रकहाअगम॥
तब दशरथ बलवंत सुनिकै तूष्णी ह्वैरह्यो।
यक मुहूर्त्त पर्यन्त पड़ा रहा तबभूमिपर॥

दशरथोक्त वर्णन॥

दो० वाल्मीकि; बोले कि हे भारद्वाज प्रवीन।
यक मुहूर्त्त पीछे उठे नृपति होयअतिदीन॥
महामोह को प्राप्तपुनि होय गये तेहि ठौर।

धैर्य ते रहित होइके बोले नृपकरि गौर ॥
सो० । कहा ऋषय तुम काहु अबतौ रामकुमार हैं।
शस्त्र अस्त्र विद्याहु अवहीं तो सीख्यो नहीं ॥
करनहार है शैन अबहिं पुष्पकी सेज पर
रणभूमिहु जानैं न क्या जानैं तवयुद्ध विधि ॥
चौ०।अन्तःपुरमहँ राजकुमारा । तियन संग को बैठन हारा ॥
राज कुमार साथ ले बालक । खेलनहार शत्रु उरशालक ॥
देख्यो नहिं कदापि रन ठाईं । युद्धि कियो नहिंभृकुटिचढ़ाई ॥
कमल समान जासु युग हाथा । कोमल सवशरीर मुनिनाथा ॥
राक्षस सग लड़ै किमि सोई॥कमल पषान युद्धकेहुं होई ॥
कंज समान राम वपु साईं । महाक्रूर पाहनकी न्याईं ॥
तासु साथ ह्वै है किमि मारी। निशिचर निकरभयानकभारी ॥
सवत नौ सहस्र को भयऊ । लाग्यो दशम वृद्ध ह्वै गयऊ ॥
यह वृद्धावस्था महँ मेरे । पुत्र भये हैं यतन घनेरे ॥
चारिहु मध्य पंकरुह नयना । रामचन्द्र जो सवगुण अयना ॥
षोड़श वर्ष लाग अबओही । प्रियतम अहै अधिक यहमोही ॥
अरु सो मेरो प्राण समाना । ताके विनु मैं छणहु प्रमाना ॥
काहू भाँति रहि सकतनाहीं । जो तुम लेइ जाइहो याही ॥
निकसि जाइहै मेरो प्राना । मैं ह्वै जैहों मृतक समाना ॥
केवल मोरहि नहिं अस नेहा । परिजनपुरिजन अरुममगेहा ॥
लषन भरत रिपुहन जो भाई । सहित कुटुम्ब अपरसवमाईं ॥
दो० । तिन सबै जनके प्राण हैं रामचन्द्र सुखदैन ।
जो ताको ले जाइहौ मैं मरिहौं युत ऐन ॥
अरुजो मोहिं वियोग करि मारन आयहु आप ।
तो कोटिहु नहिं वर्जिहौं ले जाओ दै ताप ॥
सो० । हे मुनीश ! अब दूर रह्यो रामही चित्तमहँ ।
ताको कैसे दूरकरहुँ तुमारे साथ दै ॥
देखत देखत याहि होत प्रसन्न हमार मन ।

जिमि पयोधि मन माहि होतमुदित, राकेशलखि ॥
चौ०। जैसे पूर्ण अमल कंजारी । होत प्रसन्न चकोर निहारी ॥
अरु पुनि मेघ बुंद कहँ देखी । होत पपैआ मुदित विशेखी ॥
तैसे हम रामहिं अवलोकी । होत विशेष प्रसन्न अशोकी ॥
तब पुनि राम वियोग विहीना । किहि विधि ह्वैहै मेरो जीना ॥
तिय प्रिय नाहिं राम प्रियजैसो । धनअरु राज्य है न प्रियतैसो ॥
अवर पदार्थ राम सम कोई । मो कहँनहिंकदापिप्रियसोई ॥
हे मुनीश ! सुनिकै तव बानी । भयो शोकअति अनइस जानी ॥
ताते हौं मैं परम अभागी । भै तुमार आवन यहि लागी ॥
यह सब सुनि सुनिबैन तुमारा । जिमिकमलनपरपरततुसारा ॥
ऐसी व्यथा भई अबमोरी । अरु हिमि वर्षा होत बहोरी ॥
होत नष्ट जैसे जलजाता । तिमि नष्टता मोरि तवन्नाता ॥
जिमि घन आवत मारुत बहई । तब घनरुर अभाव ह्वै रहई ॥
तैसे प्रभु यह वचन तुमारी । प्रसन्नता जो बड़ी हमारी ॥
ताको सो अभाव करि दीना । ताते मैं अतिभयउँ मलीना ॥
जिमि मंजरि बसन्तकी साई । शुष्क ज्येष्ठ अषाढ़ में जाई ॥
तैसे जब तव बचन सुनाती । प्रसन्नता उरकी जरि जाती ॥

दो० । राम चन्द्रके देनको नहिं समर्थ ता मोरि ।
कहौ एक अक्षौहिणी जोराख्यों दलजोरि ॥
बड़े शूर अरु वीरकी सब सेना है सोय ।
अस्त्र शस्त्र अरु मंत्र विद्या जानतसब कोय ॥

सो० । सबहि चतुररन बाचि, चलिहौं तिनकेसगमैं ।
जायमारिहौं नीच, अधम दुष्टराक्षसनकों ॥
रथ प्यादे गजबाज अस चतुरंगिनि सैनलै ।
जायविनाशहु आज अपनेयज्ञ बिनाशकन ॥

चौ० । एकनिशाच संगरन माहीं । युद्धकरि सकहुँगो मैं नाहीं ॥
जो तुमरो जपतपमख घालक । बन्धु कुबेर विश्रवस बालक ॥
रावण होय तिनहुं के साथा । मैंन समर्थ युद्धमुनिनाथा ॥

आगे रहा पराक्रम भारी। जैसाकोउ नत्रिलोक्यमभारी॥
जो मोरे मारन हित आवै। वाको मैं मारहुँ दै दावै॥
अब मेरो वृद्धापन आयो। तन जर्जरी भूत कहँ पायो॥
यहिकारन दशमुखसँग माहीं। युद्धकरन समर्थ मैं नाहीं॥
मोर अभाग, आइ अब गयऊ। यहि निमित्तवआवनभयऊ॥
अब मेरो भ पराक्रम वैसा। दशग्रीवहिं मैं कांपत वैसा॥
केवल मैं नहिं काँपहुँ ताही। इन्द्रादिक सुर काँपहिं वाही॥
यातुधान वर्तत वश ताके। काऊकी समरथ; नहिं, वाके॥
संगकरै रर्न रंग गँभीरा। वह तो वडो शूर अरु वीरा॥
जब मोरिहु समर्थ नहिं जोवै। तब कैसे समर्थ सुत होवै॥
अरुजिन कहँ लेने तुम आयो। तिनरोगी है भीतरछायो॥
अरु दुर्वल भा चिन्ता लागी। अन्तः पुर वैठत सब त्यागी॥
खान पान जु कुमार सुभाऊ। वाकहँ विरसलगतसबकाऊ॥

दो०। मैनहिं जानत कौनदुख प्राप्तभयो प्रभुवासु।
सूखि पीतह्वैजातजिमिजलज;भईगतितासु॥
सो वह युद्ध समर्थनहिं जो घरसोवहिराय।
रणभूमिहु देख्योनहीं सोलडि है किमिजाय॥
सो समर्थ नहिं युद्ध के अरु है मेरोप्रान।
जो वियोग तिहिहोइ है जीवन मेरो; हा!न॥

सो०। जैसे जल विनुमीन काहू विधिजीवत नहीं।
तैसे राम विहीन जीवहिंगे हमलोग किमि॥
अरुजिहितमचरहेत तुम मुनशिरामहिंकहत।
चतुरंगिणी समेत कहहु तुमारे संग हम॥
चलौं त्यागि सब काम; राम युद्धके योगनहि।
यह कहि "सीताराम, विह्वलह्वैनृपमौनभे॥

राम समाज वर्णन॥

दो०। वाल्मीकि, वोले बहुरि सुनिये भारद्वाज।
यहिप्रकारसन वचन जब वोले कौशलराज॥

॥ मोह सहित अतिदीन, तबऐसोबचनअधीर।
॥ ह्वै क्रोधित बोलत भये विश्वामित्र गँभीर ॥
सो०। हे राजन्! निजधर्म,को अपनेसुमिरनकरहु।
लागति तोहिनशर्म,अवहिप्रतिज्ञाकीनक्या?॥
ह्वैहै जो तव तूर्ण, करिहौं सो सम्पूर्ण मैं।
भयाजानियो पूर्ण, ऐसोई तुमने कह्यो ॥
चौ०।अबनिजधर्म्मकरततुमत्यागा। जातसिंहह्वै; मृगइवभागा॥
ज्ञात भागि नृप; तो पुनिभागै। भयो न अस रघुकुलमैंआगै॥
जिमि शशि महँ शीतलता रहई।कबहुँनअग्निनिकसिकैबहई॥
तैसे भूपति तव कुलमाहीं। ऐसो भयो कदाचितनाहीं॥
अपर करत जो तुम अस काजू। तो करु उठि जैहौं मैं आजू॥
काहे, जो सूने गृह माही। आवत सो सूने हीं जाही॥
पर यह रहा न तुम कहँ योगू। अरु वशिकरहु राज्यअरु भोगू॥
औरहु कछुक होइ है जोई। सब हम समुझि लेइहैं सोई॥
अरु जो निजधर्महिं; विनुकाजा। त्यागत; तोपुनि त्यागहुराजा॥
वाल्मीकि बोले मृदु बानी। सुनिये भरद्वाज मुनि ज्ञानी॥
जब सम्पूरणात्तन यहि भाँती। ह्वै क्रोधायमान मुनि शांती॥
बोले विश्वामित्र अद्रापी। कोटि पचास भूमि तव काँपी॥
दो०। अरु इन्द्रादिक देवता अतिशय भयको पाय।
सब सब सों पूछन लगे भयो काह दुखदाय॥
बोले तबहि बशिष्ठ मुनि; हे अवधेश नरेश!।
भयो सबहिं इक्ष्वाकु कुल महँ परमार्थी वेश॥
सो०। अरु तुम दशरथहोय विद्यमान मोरे कहा।
करिप्रण अतिदृढ़ जोय क्योंत्यागत निजधर्मको॥
ह्वैहै जो तव अर्थकरि, देहौं मै पूर्णसव।
अब क्यों अछत समर्थ भागत नृपति शृगालसम॥
चौ०। इनकेसंगदेहु तिहिंजाहीं। इनकी रक्षा करिहै याही॥
जैसे रक्षा करत अमीकी। पन्नगते विहंग पतिनीकी॥

तव सुतको यह करिहैं तैसे। अरु पुनि सुनहुपुरुपयहकैसे ॥
नहि इनसम कोऊबलवाना। साक्षातहिं वल मूर्तिनिधाना ॥
धर्मातमा धर्म्मकी मूरति। तपकी खानि तपहिकीसूरति ॥
कोऊ तपसी अरु बुधिमाना। शूरवीर नहिं इनहि समाना ॥
अस्त्र शस्त्र विद्यामहँ कोई। इनहि समान न दूसर होई ॥
दक्ष प्रजापति तनया जोई। रहीजया अरु शुभगा दोई ॥
ताको यही ऋपय कहँ दीनी। प्रकट दैत्य मारनको कीनी ॥
पांच पांच शत पुत्र दोउ को। भयनाशनके निमित्त सोउको ॥
याके विद्यमान द्वौ नारी। सो स्थिति भई मूर्त्तिको धारी ॥
ताते याको जीतन हारा। कोउ समर्थ न यहि संसारा ॥

दो०। जाको साथी यहभयो विश्वामित्र गँभीर।
सो त्रिलोक महँ काहुसों डरत नहीं वलवीर ॥
ताते याके सग तुम निज सुतको करि देहु।
अरु संशय सब त्यागि कै सुयश जगतमें लेहु ॥

सो०। अस समरथ कोउ हैन जो याके होते हुए।
वोलि सकै कछु वैन भयवश तुमरे पुत्रकहँ ॥
दुख करि होत अभाव यासु दृष्टि गोचरसमै।
सूर्योदय ते पाव अंधकार सब नाश जिमि ॥

चौ०। हेराजन्! यहिमुनिके साथा। कहाखेद होवै रघुनाथा ॥
तुम इक्ष्वाकु वंश कर भूपण। दशरथ नाम पाप अघदूषण ॥
जब न धर्म महँथिर तुम ऐसे। अपरजीवपालिहि तेहिकैसे ॥
सुजन जु चेष्टा करत अगारा। और जीव तिहिके अनुसारा ॥
तुमसम पालहि नहिं निजवैना। अपर काहुसन वहुरि वनैना ॥
तुमरे कुलमहँ असनहि भयऊ। जोअपने वचसों फिरि गयऊ ॥
योग धर्म त्यागन निज नाहीं। देहु पुत्र इन के सँग माहीं ॥
जो तुम उनके भय दुख पाओ। तौभी "नहिं" असवचनसुनाओ ॥
कालहु मूरति धरि नर राई। याके विद्यमान सो आई ॥
तेरे सुत को कछु नहिं होवै। चिन्ता करि भूपति मति रोवै ॥

देहु पुत्र; अरु देहु न जोई। धन तव नष्ट भाँति है होई॥
कूप बावरी ताल कराये। ताकी पुण्य नष्ट ह्वै जाये॥

दो०। तपव्रत यज्ञरु दान पुनि स्नानादिक फल जोय।
अरुपुनि सकल क्रियानफल सुलभक्षणहिं मेंहोय॥
गृह निरर्थ ह्वै जाइ है मोह शोक सब त्याग।
निजधर्महिं सुमिरन करहु भूप भागजनु जाग॥

सो०। देहु राम कहँ साथ होइकार्यतव सफल सब।
हे राजन्! नरनाथ,करन रहा यहि भाँतिजब॥
क्यों नहिं कह्यो बिचारि बिनु बिचार परनामदुख।
ताते अबहुँ सँभारि दीजै सुत निज साथतिहि॥

चौ०। बाल्मीकि बोले मुनिराई। भारद्वाज सुनहु चित लाई॥
जब वशिष्ठ बोले यहि भाँती। धैर्य्यवान भे तव नृप काँती॥
श्रेष्ठ भृत्य कहँ तुरतहि बोली। बोल्यो तासों बचन अमोली॥
महाबाहु कुमार पहँ जाओ। बोलि यहाँ तुरन्त लै आओ॥
ताके संग भृत्य ततकाला। अंतर आने जाने वाला॥
जु छलरहित नृपआज्ञा लयऊ। राम निकट तुरंत सो गयऊ॥
लवटि एक मुहूर्त महँ आयो। आवत ऐसो बचन सुनायो॥
हे देवता! राम, रणधीरा। बैठे चिन्ता मगन शरीरा॥
कहा राम सन बारहिं बारा। चलहु बेगि अब राज कुमारा॥
"चलतअहहिं,,तबअसउनकहहीं॥ इहिविधि कहि२ चुपह्वै रहहीं॥
यहि प्रकार; हे भारद्वाजा! कहा! श्रवन कीना जब राजा॥
तिहि मंत्री सेवकन बुलाये। सबहि बुलाय निकट बैठाये॥

दो०। तब राजा आदरसहित कोमल सुन्दर बैन।
युक्ति पूर्ण बोलत भये भरे नीर युग नैन॥
रामचन्द्र के परमप्रिय कहा दशा है तासु।
बासुदशा इमि किमिभई क्रमसों करहु प्रकासु॥

सो०। सचिव कहे, हे देव! कहैं काह अब बात हम।
जेते हमें सिगरेव भावति सबकी दृष्टि महँ॥

सो सब के आकार प्राण देखने मात्र हैं।
लखिकै दुखित कुमार है सब मृतक समानहम ॥
चौ०। जौहमारस्वामी रघुराया। असकराल चिन्ताकहँपाया ॥
हे राजन्! जिन दिनमनभाये। रामचन्द्र तीरथ करि आये ॥
प्राप्त भई तिहि दिन ते चीता। जो भोजन लै जात पुनीता ॥
पान पदार्थ वस्त्र सब कोई। देखन को पदार्थ हम जोई ॥
कछुक पास तिनके लै जाई। रसयुतसो पदार्थ सुखदाई ॥
देखत सो नहि काहु प्रकारा। होत प्रसन्न लखा बहु वारा ॥
रहु सो अस चिन्तामें लीना। जो देखत नहि वस्तु प्रवीना ॥
अरुजो कबहुँ बिलोकत ताही। उपजत अधिक क्रोधतबवाही ॥
अरु सुखदायि पदार्थ विलोकी। करत निरादर होत सशोकी ॥
अन्तःपुर में तिनकी माई। हीरकमणि भूपण समुदाई ॥
आनि देत, तब ताहि निहारी। देत भूमिऊपर तिहि डारी ॥
नहीं काहु निर्धनको देई। है प्रसन्न नहिं काहुहि लेई ॥
दो०। खड़ीहोतिजब सुभग तिय, विद्यमानतिहिजाय।
नानाविधि भूपन सजित महा मोह समुदाय ॥
करन हांरियां निकटह्वै लीला करति बनाय।
सहित कटाक्ष प्रसन्न हितचाहति लैनलुभाय॥
सो०। विपवत जानतताहि, चितवत तिनकीओरनहिं।
लखतओर जल नाहि कबहुँपपीहातृपितजिमि ॥
जब अन्तःपुरमाहि निकसत राजकुमार सुठि।
क्रोधवान ह्वै जाहिं तबहीं उनको देखतहि ॥
चौ०। हेराजन्! औरहुकछुताही। भलोलगत काहू बिधिनाही ॥
मग्न रहत काउ चिन्ता माहीं। भोजन तृप्तहोय नहिं खाहीं ॥
क्षुधावंत सो रहत निरन्तर। इच्छाकरत न काहुवस्तुकर ॥
खान पान पहिरनको साजहु। चाहत नाहिंकदापिसोराजहु ॥
इन्द्रिनहूको सुख नहिं चहई। है उन्मत्त वैठि सो रहई ॥
जब कबहूं कोऊ सुखदाई। फूलादिक पदार्थ लै जाई ॥

ताते मृतकन सो ह्वैजावै। यह चिन्ता मोरे मन आवै ॥
जाइ कहै जो सहित समाजा । अहहु चक्रवर्ती तुम राजा ॥
बड़ो आयु बल होवै तेरो । पाओ सुख अरु भोग घनेरो ॥
सुनिकै वाक्य अमी रस बोरा । ताको बोलत वचन कठोरा ॥
हे राजन्! केवल तिहि काहीं । अस कठोर चिन्ता कछुनाहीं ॥
लछिमन अपर शत्रुबल हारी । कहँलागी चिन्ता अति भारी ॥
चलि सब देखहु तिनकी धारा । कोउजु चिन्ता मेटन हारा ॥
होवै; तुरित बुलावहु ताही । दूबिरहिहिं सबतामहँ नाहीं ॥
इच्छा नहिं पदार्थ की काहू । बुडौ चहत सो अति अवगाहू ॥
हेराजन्! क्या कहहुँ? कुमारा । होयरहा "अतीत,, न प्रचारा ॥

दो० । एक वस्त्र कर उपरना ओढ़ि बैठि रह सोय ।
ताते करहु उपाय जो चिन्ता निवृत होय ॥
विश्वामित्रहु कहा, हे साधु! जु है अस राम ।
तौ मम ढिग लैआवहू सिद्धि होय सब काम ॥

सो० । निवृतकरै दुख भार; हेदशरथ! तुम धन्य!! हौ ।
पायो पुत्र तुमार जो विवेक वैराग्य अस ॥
हे राजन्! हम लोग, बैठे हैं यहि ठौर जो ।
सो सब याके योग, दैहौं तिनको परमपद ॥

चौ० । अबहीं मिटिजैहैदुखसोई । बशिष्ठादि हम बैठे जोई ॥
करिहौं एक युक्ति उपदेशा । जासोंछूटिहि सकलकलेशा ॥
प्राप्ति आत्म पद ह्वैहै ताको । तब सो पैहै वासु दशा को ॥
जो नर संतत लोह पखाना । अरुसुबर्ण समान करिजाना ॥
अरु करिहै जो कछु सब वरणा । क्षत्रिय प्रकृति केर आचरणा ॥
हृदय प्रेम ते होय उदासी । ताते, हे राजन्! गुण रासी ॥
तासों होवै भूप तुमारा । यह कृतकृत्य सकल परिवारा॥
ताते भेजिय दूत तुरन्ता । बुलवावहु आवहि भगवन्ता ॥
वाल्मीकि-बोले गुण सागर । भारद्वाज सुनहु नयनागर ॥
सुनिअस मुनिकोवचनअमोला । नृप मंत्री भृत्यन सन बोला ॥

लषण शत्रुहने अरु रघुनाथा। को; तुरन्त लैआवहु साथा॥
लैआवत मृगिनिहि मृग जैसे। तिनको तुम लैआवहु तैसे॥
दो०। जब अस नृप दशरथ कहे मंत्री भृत्य समेत।
चले सकल जय जीव कहि पहुंचे राम निकेत॥
कहा राम पहँ जाय सो सर्व कथा समुझाय।
आये राम तुरन्त तब जहँ दशरथ नरराय॥
सो०। देखौ सकल मुनीश विश्वामित्र वशिष्ठ युत।
होत जासु के शीश ऊपर चमर अनेक विधि॥
मण्डलेश तिहि ठौर बैठ रहैं जो आय बहु।
लख्यो रामकी ओर भै अति कृशित शरीरतन॥
चौ०।जैसे महादेव चितलावत। स्वामिकार्त्तिकहिदेखनआवत॥
तैसे प्रीति समेत विशेखी। आवत दशरथ रामहि देखी॥
आवत नृपति चरन धरि माथा। नमस्कार कीन्हा रघुनाथा॥
तिमिवशिष्ठ कौशिक मुनिकाऊ। राम प्रणाम कीन्ह सत भाऊ॥
महिसुरजो बैठे तिहि ठॉई। कीन्हा नमस्कार रघुराई॥
मण्डलेश जे रहे प्रवीना। ते प्रणाम रघुवीरहि कीना॥
पुनि राजा दशरथ उठिरामहिं। माथ कपोल चूमिकहुतामहिं॥
केवल विरक्तता करि काऊ। किञ्चित् नाहिं परमपदपाऊ॥
अरु वशिष्ठजी हैं गुरु मोरा। तिहि उपदेश युक्तिकरितोरा॥
चिन्ता दुःख शलभ सबहोही। प्राप्त आत्मपद ह्वैहै तोहीं॥
कह वशिष्ठ-हे राम! सुजाना। तुम समान न शूरमाआना॥
जो सब विषय रूप रिपु आही। जीत्यो तुमसबविधिसोताही॥
दो०। तिहि दुष्टहि तुमजीतहू अजित नजीत्यो अन्य।
ताते, हे रघुवंशमणि, धन्य! धन्य!! तुमधन्य!!!॥
बोले विश्वामित्र मुनि कमलनयन, हे राम!॥
अपने अंतर को सकल कहौ चपलता वाम॥
सो०। करि मन ताको त्याग आशयजोकछु होयतव।
करहु प्रकट यहिलागपूरनकरिहैं सकलहम॥

यह जो तुम कहँ मोह प्राप्तिभई, हेरामजी!।
करिकै ताकी जोह कहहु भई कैसे तुमहिं ॥
चौ०।सोतुमकहँकिहिकारनभयऊ। अपरकहौसो केतिकहयऊ ॥
अरु अबजो कछु वांछित होई। तुमसतभाव कहौसब सोई ॥
हम तुमको ताही पदमाहीं। प्राप्ति करवयामें शक नाहीं ॥
जामें दुख कदापि नहिं होवै। आत्मानन्द माहँ सुखसोवै ॥
काटि सकत नभ मूषक नाहीं। तिमिपीड़ा न होयकछुताहीं ॥
हे रामजी! कुमार तुमारा। करिहैं नाश दुःख हमसारा ॥
करहु नहीं कछु संशय यामें। हमलोगनको बश है जामें ॥
जिहि वृत्तान्त वश्य दुखसहहू। सो सारा अब मोसनकहहू ॥
बोले बाल्मीकि-मुनि नायक। भारद्वाजसुनहु सुखदायक ॥
कथा अनूपम जगत पावनी।कौशिकवचअसभ्रमनशावनी ॥
सुनिकै राम मुदित अति होई। त्यागिदियोसबशोकहिसोई ॥
जैसे देखि घटा घन घोरा। होत प्रसन्न; तजतदुखमोरा ॥
दो०। तैसे विश्वामित्र को बचन सुनत सुख कंद।
अति प्रसन्नभे शिथिलतन रविकुल कैरवचंद ॥
सो०। अरु निज मनमहँकीन्ह निश्चय सीतारामयह।
मुनि जब दृढ़वरदीन्ह ह्वैहै सो पदप्राप्ति अब ॥

रामेश वैराग्य वर्णन ॥

दो०। बाल्मीकि-मुनि बोल्यऊ भरद्वाज गुण धाम।
अस मुनीशकोबचनसुनि कहामुदितमनराम ॥
हे भगवन! वृत्तांत जो सो अब सकल सुधारि।
विद्यमान तुम्हरे कहत क्रमसों आजपुकारि ॥
सो०। नृप दशरथ गृहमाँहि पायजन्मक्रमकरिबहुरि;।
बड़ो भयों बस जाहि होंपायों उपवीत यह ॥
अरु पढ़ि चारिहु वेद पाय ब्रह्मचर्यादि व्रत।
तदनन्तर यहभेद आयो मन महँ एक दिन ॥

चौ० । तबहिंवातमनमहँयहआई । तीर्थाटनकरिहौं अवजाई ॥
अपर देव द्वारन में जाऊँ । देवनके दर्शन करि आऊँ ॥
तब मैं पितु की आज्ञालयऊँ । पुनि तुरंत तीर्थन को गयऊँ ॥
गंगादिक सम्पूर्ण नदी महँ । किय अस्नानजाय तीर्थनकहँ ॥
केदारादिक शालिग्रामा । विधियुत जाय ठाकुरनधामा ॥
दर्शन करि भै यात्रा राहा । यहँ आयों तब भा उत्साहा ॥
तब मन में आयो सुविचारा । जो सदैव उठि कै भिनुसारा ॥
करौं स्नान सन्ध्यादिक कर्मा । पुनि भोजनकरि पालहुँधर्मा ॥
ऐसे याहि प्रकार सप्रीता । कर्म करत केतिकदिन बीता ॥
तब विचार पुनि उपजतभयऊ । सो ममहृदय खैंचिलै गयऊ ॥
जिमितृणवल्लिहोत सरिकूला । खींचतसरिप्रवाह तिहि मूला ॥
तिमि ममहियमें जोकछुहल्ली । आस्था रूप रजत की वल्ली ॥

दो० । ताहि लै गयो आइकै विचार रूप प्रवाह ।
तबमैंजानतभयों यह राज्यभोगसोंकाह ॥
अपरजगतहू काहहै यह सबतोभ्रममात्र ।
यासु वासना राखहीं जो मूरख अघपात्र ॥

सो० । स्थावर जंगमरूप जेतेकछुयहजगत सब ।
देखत लगतअनूप लेकिनमिथ्यारूपअब ॥
हे मुनीश ! जगमाहि जेतेकछुकपदार्थयह ।
सोमनसोंकरिआहि मनहूतोभ्रममात्रअह ॥

चौ० । अनहोतामनभादुखदाई । जो पदार्थ तिहि सत्यजनाई ॥
धावत अरु सुखदायक जाना । मृगतृष्णा जलवतहि समाना ॥
जैसे मृगतृष्णा कहँ देखी । 'अरुहैनहिं" धावत जल लेखी ॥
धाय धाय थकि जाय अधीरा । तबहुँ नाहि पावत सो नीरा ॥
तिमि मूरख पदार्थ सुखदाई । लखि भोगनकी करत उपाई ॥
अपर शान्ति को सो पावै ना । तैसे, हे मुनीश ! गुण ऐना ॥
हैं सर्पवत इन्द्रि कर भोगा । मारा भया जासु, कर लोगा ॥
जन्म मरन को पावत जावै । जन्मते जन्मान्तर को पावै ॥

सब भ्रममात्र भोग; संसारा । तामें आस्था करत गँवारा ॥
ऐसो मैं विचार करि जाना । यहसब आग्मापायि समाना ॥
"अर्थ" जुआवतहू हैं जोई । ताते; जाको नाश न होई ॥
सो पदार्थ सब पावन योगू । यहि कारन तजि प्रियहौंभोगू ॥

दो० । जेते जो कछु सम्पदा रूप पदार्थ लखाहिं ।
सुसब "आपदा" माहिहैंरंचकहूसुखनाहिं ॥
ताको होत वियोग जब तब कंटककी नाईं ।
"मनमहँ चुभु" जब इन्द्रियहिं भोग प्राप्तह्वै जाइँ ॥

सो० । रागदोपकरिसोय; जरतरहत निशिदिवसनर ।
अरु जब प्राप्त न होयतब तृष्णासों जरत नित ॥
ताते है जगमाहिं दुःखरूप यह भोग सब ।
छिद्रहोत जिमि नाहिं शिला माहँ पाषानकी ॥

चौ०।भोगरूप तिमिदुखकीसोई। छिद्रतनिक सुखरूप नहोई ॥
दुःख विपय तृष्णा मैं सहऊँ । वहुतकाल सों जरतहिंअहऊँ ॥
हरे वृक्ष छिद्रनमहँ जोई। रंचक अग्नि धरी जिमि होई॥
तबहिं धूमह्वै थोरहिं थोरा । जरत रहत सो नित्य कठोरा ॥
भोगरूप प्रवलानल माहीं । जरत रहत तिमि मनहुँसदाहीं॥
विषयमहँनकछु सुखलवलेशा; । अहुतामहँ वहु दुःखकलेशा॥
है मूर्खता ताहि जो चहई । जैसे खाई ऊपर रहई ॥
तृण अरु पात चहूँदिशि छाई । तासों आच्छादित ह्वैजाई॥
गिरतजाय मृगताकहँ देखी । तामहँ पावत दुःख विशेखी ॥
तिमि भोगहिं मूरख सुखजानी । करत चाह सोगनकीमानी ॥
भोगत जबहिं तब जनम ताई । जन्मान्तर रूपी जो खाँई ॥
तामहँ सो तुरंत परि जावै । अरु नानाप्रकार दुखपावै ॥

दो० । हे मुनीश! यहहैं सकल भोगरूप जो चोर ।
सु अज्ञान रूपी निशहिं लूटन लगतंभकोर ॥
आत्मारूपी धनहिंसो तब उठाय लै जात ।
तिहि वियोगते रहत है महादीन दिनरात ॥

सो० । करत अनेक उपाय जासु भोगके निमितयह ।
सो दुखरूप लखाय प्राप्ति शांति को हेत नहि॥
जासु मानकरि "अग" कोप्रयत्न नितकरतयह ।
सो शरीर क्षणभंग होत वहोरि असार वह ॥
चौ०।जाहि भोगकी इच्छारहई ।नित; सो मूरख अरु जडअहई॥
यासु वोलवो चलवो ऐसो । सूखे वांस छिद्रमें जैसो ॥
तामें पवन जात है जोई । शब्द वेग मारुत करि होई॥
अहुवासना तिहि नरहि तैसे। थको पुरुप मारग को जैसे॥
मारवाडके मारग काहीं ।कबहुँ करत इच्छाहू नाहीं ॥
तैसे दुख भोगहिहों जानी । इच्छा करत न रिपुइवमानी ॥
अपर जो अहै लक्ष्मी नारी । सोउहै परम अनरथ कारी ॥
जब लेगि प्राप्ति होतसोनाहीं । करत उपाय पाइवे काहीं ॥
बहुरि प्राप्ति अनरथकरि होई । अरु पुनि प्राप्तभई जबसोई ॥
तबसब गुनहिं नाशकरि देई । शीतलता संतोपहि जेई ॥
धर्म्म उदारतासु व्योहारा ।कोमलता वैराग्य विचारा ॥
करति दयादि गुणन करनाशा । जबअसगुणकरभयोविनाशा ॥
दो० । तब सुख कहँ ते होयअति प्राप्त आपदा होय।
अति दुख कारन जानिकै त्यागि दियेहौंसोय ॥
गुणतवलगिहै जबहिंलगि लक्ष्मिप्राप्तिभै नाहि।
जबलक्ष्मीकी प्राप्तिभै तब सबगुणनाशिजाहि ॥
सो० । जिमि मजरी वसंत; की हरियारितबलगिरहति ।
जब लगि ऋतुपति अन्तआवत ज्येष्ठ अपाढनहि ॥
ज्येष्ठपाढ जब आय तब मंजरि जरि जाति सब ।
तिमि जब लक्ष्मीपाय तब शुभ गुण नशिजात इमि ॥
चौ०।मृदुवचतबलगिवोलतजाहीं,।जबलगि प्राप्तिहोतयहनाहीं॥
जब यह प्राप्ति लक्ष्मी भई । तबहीं कोमलता सब गई ॥
तब सो अति कठोरता गहई । जिमि पातरतबलग रहई ॥
जबलग योग न शीतलताका । अरु संयोगभयो जबवाका ॥

सब भ्रममात्र भोग ; संसारा । तामें आस्था करत गँवारा ॥
ऐसो मैं विचार करि जाना । यहसब आग्मापायि समाना ॥
" अर्थ " जुआवतहू हैं जोई । ताते ; जाको नाश न होई ॥
सो पदार्थ सब पावन योगू । यहि कारन तजि द्रियहौं भोगू ॥

दो०। जेते जो कछु सम्पदा रूप पदार्थ लखाहिं ।
सुसब "आपदा" माहिंहैंरंचकहूसुखनाहिं ॥
ताको होत वियोग जब तब कंटककी नाईं ।
" मनमहँ चुभु ,, जब इन्द्रियहिं भोग प्राप्तह्वै जाईं ॥

सो०। रागदोषकरिसोय ; जरतरहत निशिदिवसनर ।
अरु जब प्राप्त न होयतब तृष्णासों जरत नित॥
ताते है जगमाहिं दुःखरूप यह भोग सब ।
छिद्रहोत जिमि नाहिं शिला माहँ पाषानकी ॥

चौ०।भोगरूप तिमिदुखकीसोई। छिद्रतनिक सुखरूप नहोई ॥
दुःख विषय तृष्णा में सहऊँ । बहुतकाल सों जरतहिंअहऊँ ॥
हरे वृक्ष छिद्रनमहँ जोई। रंचक अग्नि धरी जिमि होई॥
तबहिं धूमह्वै थोरहिं थोरा । जरत रहत सो नित्य कठोरा ॥
भोगरूप प्रबलानल माहीं । जरत रहत तिमि मनहुँसदाहीं॥
विषयमहँनकछु सुखलवलेशा;। अहुतामहँ बहु दुःखकलेशा॥
है मूरखता ताहि जो चहई । जैसे खाई ऊपर रहई ॥
तृण अरु पात चहूंदिशि छाई। तासों आच्छादित ह्वैजाई॥
गिरतजाय मृगताकहँ देखी । तामहँ पावत दुःख बिशेखी ॥
तिमि भोगहिं मूरख सुखजानी ।करत चाह सोगनकीमानी ॥
भोगत जबहिं तब जनम ताई । जन्मान्तर रूपी जो खाँई ॥
तामहँ सो तुरंत परि जावै । अरु नानाप्रकार दुखपावै ॥

दो० । हे मुनीश! यहहैं सकल भोगरूप जो चोर ।
सु अज्ञान रूपी निशहिं लूटन लगतभ्रकोर ॥
आत्मारूपी धनहिंसो तब उठाय लै जात ।
तिहि बियोगते रहत है महादीन दिनरात ॥

सो०। करत अनेक उपाय जासु भोगके निमितयह।
सो दुखरूप लखाय प्राप्ति शांति को हेत नहिं॥
जासु मानकरि "अंग" कोप्रयत्न नितकरतयह।
सो शरीर क्षणभंग होत बहोरि असार वह॥
चौ०।जाहि भोगकी इच्छाग्रहई।नित, सो मूरख अरु जडअहई॥
यासु बोलबो चलबो ऐसो।। सूखे बांस छिद्रमें जैसो॥
तामें पवन जात है जोई। शब्द बेग मारुत करि होई॥
बहुवासना तिहि नरहि तैसे। थको पुरुष मारग को जैसे॥
मारवाडके मारग काहीं। कबहुं करत इच्छाहू नाहीं॥
तैसे दुख भोगहिहौं जानी। इच्छा करत न रिपुइवमानी॥
अपर जो अहै लक्ष्मी नारी। सोउहै परम अनरथ कारी॥
जब लगि प्राप्ति होतसोनाहीं। करत उपाय पाइबे काहीं॥
बहुरि प्राप्तिअनरथकरि होई। अरु पुनि प्राप्तभई जबसोई॥
तबसब गुनहि नाशकरि देई। शीतलता संतोषहि जेई॥
धर्म्म, उदारतासु ब्योहारा। कोमलता बैराग्य बिचारा॥
करति दयादि गुनन करनाशा। जबअसगुणकरभयोविनाशा॥
दो०। तब सुख कहँ ते होयअति, प्राप्त आपदा होय।
अति दुख-कारन जानिके त्यागि दियेहौंसोय॥
गुणतबलगिहै जबहिलगि लक्ष्मिप्राप्तिभै नाहिं।
जबलक्ष्मीकी प्राप्तिभै तब सबगुणनाशिजाहि॥
सो०। जिमि मंजरी बसंत; की हरियरितबलगिरहति।
जब लगि ऋतुपति अन्तआवत ज्येष्ठ अषाढ़नहिं॥
ज्येष्ठषाढ़ जब आय तब मंजरि जरि जाति सब।
तिमि जब लक्ष्मीपाय तब शुभ गुण नशिजात इमि॥
चौ०।मृदुवचतबलगिबोलतजाहीं।जबलगि प्राप्तिहोतयहनाहीं॥
जब यह प्राप्ति लक्ष्मी भई। तबहीं कोमलता सब गई॥
तब सो अति कठोरता गहई। जिमि पातरतबलग रहई॥
जबलग योग न शीतलताका। अरु संयोगभयो जबवाका॥

तब हिमि है अतिहोत कठोरा । होय जात दुखदायक घोरा ॥
तिमि यह जीवलक्ष्मिहिं पाई । तावस सो अति जड़ ह्वैजाई ॥
हे मुनीश ! जु सम्पदा अहई । सो" आपदामूल,, सबकहई ॥
जो जब प्राप्ति लक्ष्मी होई । श्रेष्ठ सुखहिं तबभोगत सोई ॥
अरु जब ताको होत अभावा । तबहिं जरत तृष्णा के दावा ॥
जन्महिं ते जन्मान्तर लागी । पावत दुःख अनेक अभागी ॥
है जो इच्छा लक्ष्मी केरी । सोई मूरखता की ढेरी ॥
यह लक्ष्मी तो अह क्षणभंगा । याते उपज भोग बहु रंगा ॥

दो० । अपर नागहू होत यह जैसे नीर तरंग ।
उपजतअरुमिटिजातनितक्षणक्षणमारुतसंग ॥
दामिनिथिरनहिंहोतितिमि रहुभोगहुथिरनाहिं ।
जबलगि तृष्णास्पर्शनहि तबलगिगुन नरमाहिं ॥

सो० । जब तृष्णा भै आय गुनको होत अभाव तब ।
अरु मधुरता लखाय जैसे तब लग दूध महँ ॥
जबलग परशन कीन, सर्पपरश पुनि कीनजब ।
"सीताराम,, प्रवनि; दूधहोत विषरूप तब ॥

लक्ष्मी नैराश्य बर्णन ॥

दो० । लक्ष्मी को देखत लगत सुन्दर रूप प्रकाश ।
प्राप्ति होतहीं करत सो सदगुणकर नाश ॥

सो० । जैसे विष को पात्र देखत अति सुन्दर लगत ।
पर तिहि परशत मात्र मारत जीवहि दुखदै ॥

चौ० । तिमिलक्ष्मीपासजबआई । मृतक आत्मपदते ह्वैजाई ॥
अरु ह्वै जात जीव अति दीना । जिमि नर चिंतामणितेहीना ॥
जैसे घरहिं दर्बी सो होई । जबलगि खोदि न काढ़ै कोई ॥
तब लगि महादीन रहता है । अतिदरिद्र दुख को सहता है ॥

अज्ञानसों ज्ञान बिनु तैसे । महादीन नित प्रति रहु जैसे ॥
आत्मानन्द न पावहि सोई । ताके पालनकी मगु जोई ॥
ताको नाश की करनहारी । यह लक्ष्मी कंटक अति भारी ॥
सो लक्ष्मी जाके ढिग आवति । प्रेरितासुमति अंध बनावति ॥
दो० । दीपप्रज्वलितहोत तब, अधिक लखात प्रकाश ; ।
बुझतदीपके होत पुनि; तिहि प्रकाशको नाश ॥
छंदतोमर । रहिजात काजरकेरि । वहश्यामता ब्रहुँफेरि ॥
जो वार वारहि वाम । वासनाउपजातिश्याम ॥
तिमिलक्ष्मी जब होय । बहुभोग भोगै सोय ॥
तृष्णा बढ़ति तिहिसंग । तिहि काजरहिके रंग ॥
सो० । लक्ष्मी केर अभाव होत जबहि तब श्यामता ।
करत तुरन्त दुराव सो तृष्णा श्यामता कहँ ॥
चौ० । सोइवासना तृष्णाकारन । करत अनेक जन्मकहँ धारन ॥
सब विधि जनतमरतदुखसहई । परकदापि न शांतिको लहई ॥
जब जो नर लक्ष्मी को पावत । तबजो गुण शांतिहिं उपजावत ॥
ताकर तुरत करत सो नाशा । ऐसी लक्ष्मी केरि दुराशा ॥
जबलगि पवनचलत जिमिनाहीं; । तबलगि मेघरहत नभमाहीं ॥
पर जब चलत पवन हहराई । मेघन कर अभाव है जाई ॥
तैसे प्राप्ति भई जब सोई । तब गुणकर अभाव अतिहोई ॥
अपर होति उत्पत्ति गर्व्व की । करत नाश जो पुण्य सर्व्व की ॥
दो० । करि पौरुष संग्राम में करत बड़ाई नाहि ।
निजमुख जो नर आपनी सो दुर्लभ जगमाहि ॥
छंदचौपैया । समरथ जो होई; करत न कोई; केरि अवज्ञा ज्ञानी ।
सम बुद्धी राखै; सब मैं भाखै, सब सों अमृत वानी ॥
जिमि वल वुधिपाये; सुकृत सुहाये; गर्व करत नरनाहीं ।
तिमि लक्ष्मी बाना, शुभ गुन साना; त्योंदुर्लभ जगमाहीं ॥
सो० । करहु विचार सुजान तृष्णा रूपी सर्प यह ।
तासु वृद्धिको थान लक्ष्मी रूपी विमल पय ॥

चौ०।सोपीवत अरु करतअहारा। भोग प्रभंजन रूपक सारा॥
बारम्बार राति दिन माहीं। पिवत खात अघात नितनाहीं॥
महा मोह रूपी गज राजा। निशि दिन तासुफिरनकेकाजा॥
घन पर्वत की अटवी भारी। दुर्गम थान लक्ष्मी नारी॥
अरु गुन रूप सूर्य्य सुखि घाती। तिहिंदुखदायिनिलक्ष्मी राती॥
भोग रूप शशि मुखी समाना। सो लक्षमिहिंचन्द्र करिजाना॥
अरु वैराग्य रूप जो कोई। तिहि नाशक लक्ष्मीहिम होई॥
ज्ञानरूप जो चन्द्र प्रवाहू। तिहि ढापन को लक्ष्मी राहू॥
दो०। अरु जो मोह उलूक सम ताको लक्ष्मी राति।
दुखरूपी दामिनिहि सो है अकाश की भांति॥
छंदमधुकर। तृष्णारूपीहरियरिबल्ली। ताकेबाढ़ै हितअतिपल्ली॥
लक्ष्मीहैबादरसमवाही। वर्षैजो पोषण हितुताही॥
तृष्णारूपीवहुरितरंगा। ताकोलक्ष्मी समुद्रअभंगा॥
तृष्णारूपीअशुभपिशाचा।ताकीलक्ष्मीमनक्रमवाचा॥
सो०। अहुमति प्यारी रान अरु तृष्णारूपी भँवर।
को कमलिनी समान है लक्ष्मी नारीप्रबल॥
चौ०। जन्म केर दुखरूप नीरको। यहलक्ष्मी खड्ग अधीरको॥
देखाति सुन्दरि लागति सोई। पर यह दुखको कारनहोई॥
देखत मात्र खड्ग की धारा। जैसे सुन्दरि लगति अपारा॥
ताके परशत जीव नशाई। तैसी हीं यह लक्ष्मी भाई॥
सो विचार रूपी घनघोरा। के नाशनहित वायु झकोरा॥
यह हौं बहु विचार करि देखा। यामें सुख कछुहू नहि पेखा॥
अरु सन्तोष रूप घनमाला। के नाशनको यहहिमकाला॥
तबलगिनरमहँगुणलखिआवत;। जबलगिसोलक्ष्मीनहिंपावत॥
दो०। जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भै तब सब शुभगुण भाग;।
असि दुखदाई जानिहौं तिहि इच्छा दिय त्याग॥
छंदतोटक। यह भोग असत्यहि रूप सही।
जिमि बिज्जुलखाय दुरायतहीं॥

तिमि लक्ष्मिहुँ सो मनमोर मुरै।
क्षणमें प्रकटै क्षण माहिं दुरै॥
जिमि लोग सबै जलजाहि कहै।
जु विचार करै तब सो हिमहै॥
तिमिलक्ष्मिहुकी असजातिअहै।
जड़आश्रयसों तिहिज्योतिकहै॥
सो०। ताको दीन्ह्यों त्याग छलरूपहिं जानि अस।
तैंन त्याग किहिलाग सीताराम अभागवश॥

संसारसुख निषेध॥

दो०। याकहँ देखि प्रसन्न जो होत मूर्ख नर सोय।
काहेते; जिमि पत्रपर रहत बुन्द नहिकोय॥
सो०। तिमिलक्ष्मीक्षणभंग नीरबुन्दजिमिपत्रकर।
जैसे नीर तरंग नाश होय तिमि लक्ष्मिहुं॥
चौ०। रोकबमरुत कठिनअतिहोई। सोऊरोकिसकैयदिकोई॥
चूर्ण करब नभ अधिक अपारै। यद्यपि स्वौ कोऊकरि डारै॥
दामिनि रोकब अति कठिनाई। सो यदि रोकै कौ नरधाई॥
पर लक्ष्मी पाय नर कोई। काऊ भांति न सो थिरहोई॥
जिमि शशशृंग सोन कौ मरई। मोती दर्पण पै न ठहरई॥
जलतरंग जिमिगाँठि न गहई। तिमिलक्ष्मिहुँथिरकबहुँनरहई॥
सो चपला के चमक समाना। होतबहुरिमिटिजातनिदाना॥
होनअमर तिहि पावत चहई। महा मूर्ख सो नरमहँ अहई॥
दो०। अरु लक्ष्मी कहँ पाइकै पावत जो नर भोग।
महा आपदा पात्रसो रहत ग्रसित भव रोग॥
छंदपवंगम। तिहि जीवनते श्रेष्ठमरनहै तासुको;।
सोईनरहै मूर्ख आशतिहि जासुको॥
सो निजनाश निमित्तकरैजिमिकामिनी;।

गर्भरहै की चाह नाशहित भामिनी ॥
ज्ञानमान नरसोय परमपद माहिं जो ।
भलीभांति थितिराहिकै तृप्तसदाहिजो ॥
तिहि जीवनसुख निमितपुरुषउत्तमवही ; ।
तातेहोवै कार्य सिद्ध औरहु नही ॥

सो० । ताको जीवनहोय चिन्तामणिसम जगतमहँ ।
भोगहि चाहत जोय सुआत्मपदते विमुख है॥

चौ०।असनरकोजीवनजगमाहीं। कोऊ सुखनिमित्त अहनाहीं ॥
नर नहिं सो गर्दभ अरु जैसे। खग मृग तरुवर जीवन तैसे ॥
शास्त्र पठन कीन्हयोजो लोगू। नहिं पायो पद पावन योगू ॥
तब सो ताको भार समाना। और भारसम पढ़बहु जाना ॥
अरु पढ़ि चर्चा करत विचारा। ग्रहण करतनहिं ताकरसारा॥
तो ऐसो विचार चरचाहू। भार समान कहै सब काहू ॥
अरु यह चंचल मन अतिजोई। सदा अकाशरूप अहु सोई ॥
सो मनमहँ जो शांति नआई। मनहु भारसम देत लखाई ॥

दो० । जो मनुष्य तन पाइकै त्यागो नहिं अभिमान ।
तब यह श्रेष्ठ शरीरहू ताको भार समान ॥

छंदमनभावती ।

याशरीरको तबहिं श्रेष्ठ जीवन जो आत्मपदहि सोपावै।
नहिंअन्यथाव्यर्थजीवन; अरुतासुप्राप्तिअभ्यासबतावै; ॥
जैसे जल पृथ्वी खोदेते निकसत त्यों अभ्यास कियेते ।
होति आत्मपदप्राप्ति औरजोरहतहै विमुख नित्यहियेते ॥
बँधारहै आशाकी फांसी भटकतरहै सदा जगमाहीं ॥
जगत तरंग अनेक कालसों है उत्पन्न नष्ट है जाहीं ॥
तैसे यह क्षणभंग लक्षिमिहु होइजाहि जोई नर पाये ।
करै अधिक अभिमान मूर्खसोई मतिमंद अजानकहाये ॥

सो० । जैसे रहति बिलारि परी मूषके धरनकहँ ।
तैसे लक्ष्मी नारि गृहमें नित्य परी रहै ॥

चौ०। नरकहँ नरकद्वारिवे काहीं। लक्ष्मिहुँ परीरहैं गृह माहीं॥
जिमि जल रहतन अंजलिमाहीं। तैसेई लक्ष्मी चलि जाहीं॥
अस क्षणभंग लक्ष्मी नारी। पाय शरीर विकार निहारी॥
जोइ भोगकी तृष्णा करई। सो मूरख भवसागर परई॥
सो नर परो मृत्यु मुख माहीं। जीवनआस रहत इमिनाहीं॥
उरगानन महँ मेंडुक जैसे। खानेचहत मछ "मूरख,, तैसे॥
पुरुष मृत्युके मुखमहँ घेरा। चहत भोग सो मूर्ख घनेरा॥
युवा अवस्था जलकी नाई। चली जाति प्रवाहसम धाई॥
दो०। प्राप्तहोत वृद्धा वहुरि तामहँ अति दुखहोय;।
तनजर्जर ह्वैजातअति वहुरिमरत नरसोय॥
छंदचं०। मृत्यु क्षणहु विसारती नहिं सदा देखतई रहै।
पाइ सुंदरि नारि जैसे देखतै कामी चहै॥
त्यागकरत न रहत देखत चन्द्रमुख ताकोसहीं।
मृत्यु तैसे सकल जीवहि रहत बिनु देखेनहीं॥
मूर्ख नरको जीवना अतिदुःखहित जगमाहिहै॥
वृद्धनरको जीवना जिमि जगतमें दुखकाहि है॥
दुःख को कारन अहै अज्ञान नरको जीवना।
श्रेष्ठ मरनातासुको है कछुक सुखको सीवना॥
सो०। मनुज शरीर सुरत्नपायआत्मपद के निमित।
कीन्ह न एकहु यत्न सब विधि सोईमूढ़नर॥
चौ०। कियसोआपननाशकरारा। सोई मूढ़ आतम हत्यारा॥
यह माया अति नीक लखाई। अन्त परतु नाश ह्वै जाई॥
जिमि तरु अन्तरमें घुनखाहीं। सुन्दर बाहर अधिक लखाहीं॥
बाहर ते नर सुन्दर तैसे। अन्तर तृष्णा खाइय कैसे॥
जिहि सुखरूप सत्य चितधरई। सुखनिमित्ततिहिआश्रयकरई॥
सो पदार्थ असत्य तिहि काहीं। सुखीहोत काहू विधि नाहीं॥
जिमि धरि सर्प नदी के पारा। उतरन चहै सुमूढ़ गँवारा॥
सो काहू विधि जात न वारा। मूर्ख वूडिहै तिहि मझधारा॥

दो०। तिमिपदार्थ सुखरूपलखि चाहै सुख पावैन।
सो संसार समुद्र महँ बूड़त कोटि वचैन॥
छंदद्दढ़पटु। "यहि" संसार समुद्रअह इन्द्रधनुष न्याईं।
जैसे तामहँ रंग बहु देवै दिखलाई॥
अपर तासु ते सिद्धि कछु अर्थ होत नाहीं।
तैसे यह संसार भ्रम मात्र सदा आहीं॥
सुखकी इच्छा जासु महँ व्यर्थजोइ राखै॥
यहि प्रकार संसार कहँ सब कोई भाखै॥
अस रूप तिहि जानिकै हौंहूं तजिदीनी।
है वे की निर्वासना अब इच्छा कीनी॥
सो०। वृथयह सकलजहान जामेंदुखतजि सुखनहीं।
सीताराम अजान ते न तजत तिहिकाहिंलखि॥

अहंकारदुराशा वर्णन॥

दो०। अहंकार अज्ञान ते उदित सु दुष्ट अपार।
परमशत्रुहै,मोहिंजो प्रासिकीनअतिभार॥
सो०। मिथ्या दुखददुराव तासुखानि जबलगि रहत।
तबलगिहोति अभाव प्रीरोत्पतिको कबहुँनहिं॥
चौ०। भजनजुअहंकारसोकीन्हा। पुण्यअपर लीन्हाअरुदीन्हा॥
जो कछुकीन्ह व्यर्थ सबगयऊ। सिद्धिकछुकपरमार्थ नभयऊ॥
जैसे व्यर्थ राख महँ डारी। जानतआहुति तिमियहसारी॥
अरु जेते कछु दुःख घनेरा। वीर्य अहंकारहिं सबकेरा॥
जबहि होइ है याकर नासा। तब सबको कल्याण सुपासा॥
ताते अब सो कहहु उपाई। अहंकार निवृत है जाई॥
अरु पुनि सत्य वस्तु है जोई। ताके त्याग किये दुख होई॥
नाशवान् जो भ्रम सो अमन्दा। देखपरत तिहि तजे अनन्दा॥
दो०। शान्ति रूप जो चन्द्रमा तासोंसबको लाहु।

तिहि आच्छादन करनको अहंकारहैराहु ॥

छंदपद्धरी।

जबराहु ग्रहण करिलेतचंद; तबशीतलताहु अकाशमंद।
जबअहंकार उत्पन्नहोय। तबतिमिसमताढपिजातचंद ॥
जब अहंकारघनघोरआय। गरजै बरषै बहु तडफडाय।
तब तृष्णा कंटकमंजरीहु। अतिबढै घटैनकदापितीहु ॥
सो०। अहकारको नास होवै तब तृष्णाहुकर।
जैसेजलदनिवासजबलौंतबलौंदामिनी ॥
चौ०।जबविवेककोमारुतचलई। अहंकार बारिद तब गलई ॥
दामिनि नाश होय तिहिकाला। जब नभ में न रहै घनमाला ॥
जिमि जब रहै तैल अरु बाती। दीप प्रकाश रहै तिहि राती ॥
बाती तैल न जब रहि जावै। दीप प्रकाश नाश तब पावै ॥
तिमि जब अहंकारकरनाशा। तब तृष्णा करलुटहि प्रकाशा ॥
अहंकार भाति दुखको कारन। काहू भांति न होतनिवारन ॥
अहंकारहि नाश जब होई। तबहि नाश होवै दुख सोई ॥
अरु जो यह मैं होऊं रामा। सोन, अरुन, कछुइच्छावामा ॥
दो०। जोमैं नहीं, तो इच्छा; काको होय जु होय।
अहंकारसोंरहितपद प्राप्तिहोय शुचिजोय ॥
सो०। जिमिनभै अहंकारको उत्थान जनीन्द्रकहैं।
इच्छा करत अपार ऐसी तैसे होउं मैं ॥
छन्दहीर। बरफ कमल नाशकरै जैसें तिमि ज्ञानको।
अहंकार नाशकरै मानुप अज्ञान को ॥
जैसे खग बन्धनमें डारि देत जाल सों।
पारधी कठोर ताहि दीन करै काल सों ॥
तृष्णा की जाल माहिं अहंकार पारधी।
जीव को फँसाय कष्ट देत दुःख सारधी ॥
महादीन होय जात जैसे खग जानिकै।
चुनन हेत जात अन्न कणको सुख मानिकै ॥

सो०। चुनत फिरत फँसिजात सोनभचर, तिहि जालमें।
पुनिशिर धुनि पछितात तिहि बंधनमें दीन है॥
दो०। तैसे यह सब पुरुष गन विषय भोग की चाह।
करि; तृष्णा की जालमें बंधे न पावत थाह॥
चौ०। होत सोइ वन्धनमहँ दीना। ताते, हे मुनीश! सुप्रवीना॥
मोकहँ सोइ उपाय वतावहु। अहंकार को नाश करावहु॥
जवहि होइ है ताकर नासा। तब हौंसुख सों करिहौंबासा॥
जिमिविन्ध्यागिरि अश्यसमाजा। गरजतहैं उन्मत गजराजा॥
तैसे अहंकार विन्ध्याचल। के आश्रय उन्मत्त पील दल॥
मनरूपी गज विविध प्रकारा। करु संकल्प विकल्प पुकारा॥
सोइ उपाय बतावहु ताते। अहंकार नाशै सब जाते॥
सोहै अकल्यान कर मूला। अहंकार दायक वहु शूला॥
दो०। जिमि वारिदके नाशको शरद ऋतु करनहार।
तिमि विनाश वैराग्यको करतहै अहंकार॥
सो०। जो मोहादि विकार सर्प तिहि अहंकार विल।
कामीसम अहंकार जिमि सो भोगत कामकहँ॥
चौ०। तुमन मालकोगरमहँडारी। होतप्रसन्न अधिकव्यभिचारी॥
तैसे तृष्णा रूपी तागा। अरुनर रूप पुष्प मन लागा॥
तृष्णा रूप ताग महँ जोई। रहत परोवा वहु विधि सोई॥
अहंकार कामी गलमाही। डारि प्रसन्नहोत लखि ताही॥
आत्मारूप सूर्य्य विस्तारा। ताको आवरण करन हारा॥
अहकार घन रूप कहावै। ज्ञान रूप हिम ऋतु जबआवै॥
तबहीं अहंकार घन केरा। होय नाश जो कीन्ह बसेरा॥
तृष्णा रूप तुषारहु जाई। तब सुख प्राप्ति होइहै आई॥
दो०। निश्चयकरि देख्यों यही अहकार जहँ होय।
तहां आय सब आपदा प्राप्ति होतहै सोय॥
सो०। अहंकार महँ वास जैसे सरिता जलधिमहँ।
ताते ताकर नास होय यत्न सोई करहु॥

चित्त दौरात्म्य वर्णन ॥

दो०। काम क्रोध अरु लोभ मोहहु तृष्णादि दुराव।
सो यह मेरो चित्तजो भयो जर्जरी भाव ॥
सो०। महापुरुष जनकेर गुण वैराग्य विचार अरु।
धैर्य्य तोष बहुतेर तिनकी ओर न जात वरु ॥
चौ०। नितप्रतिउडतविषयकीओरा; उडतन; ठहरत; जिमिपरमोर॥
तैसे यह चित भटकत रहई। कबहुँ न कछुकलाभ सो लहई॥
जैसे श्वान द्वारही द्वारा। फिरत, न लहतजातबरुमारा॥
तैसे नित पदार्थ हित धावै। यहकछु कबहुँ कतहुँ नहिंपावै॥
तृप्त न होय कबहुँ कछु पाई। अंतर की तृष्णा रहिजाई ॥
जिमिजलभरियपिटारनमाहीं। तासों पूर्ण होत सो नाहीं ॥
छिद्रहिं निकसिजातजलधारा। रहत शून्यको शून्य पिटारा ॥
तिमि चित भोग पदार्थहिंपाई। होय न तुष्ट रहे तृष्णाई ॥
दो०। यह चितरूपी है महा मोह समुद्र अभंग।
उठत रहत नित तासु में तृष्णारूप तरंग ॥
सो०। थिरतकदाचित् नाहि तीक्ष्ण वेग सुतरग जिमि।
लागत वृक्षन माहिं जलमहँ जात वहे चले ॥
चौ०। तिमिचितरूपीसिंधुमँझारा। वहीजातिनितविषयअपारा॥
वासनाहि तरग कर घेरा। अचल स्वभाव जाहिसों मोरा ॥
सोउ चलायमान ह्वै गयऊ। हौं अतिदीन चित्तसों भयऊ ॥
जिमिपरिजालीमध्यमलीना; होय जात विहग अति दीना ॥
धीवर जाल वासना ; तैसे। परिचित दीन होत हौं कैसे ॥
जैसे मृग समूह ते भूली। मृगिनि अकेली दुखितअतूली ॥
विलग आत्मपदते तिमिमोहूँ। खेदवान् चित में अति होहूँ ॥
यहचित क्षोभवान् नितरहई। सोकदापि थिरता नहि गहई ॥
दो०। जिमि मन्दर गिरिसों भयो पयसागर दुखवान्;।
तिमि संकल्प विकल्पसे दुखितचित्त अप्रमान ॥

सो० । जिमिपिञ्जरमहँआय शिन्ह फिरत घबरायअति ।
वासनाहिं लपटाय तिमि चितइस्थिर होतनहिं ॥
चौ० । चितदूरते दूरमुहिंडारी । जैसे पवन चलत जब भारी ॥
तब सो तृण कहँ देत सुखाई । बहुरि दूर ते दूरि बहाई ॥
तैसे मोहिं चित पवन भूरी । कियो आत्मानन्द ते दूरी ॥
जिमि सूखेतृण अग्नि जरावत; । तैसे मोकहँ चित दहिनावत ॥
निकसत धूमतरणि ते जैसे । चित्तरूप पावक सन तैसे ॥
निकरत तृष्णा रूप घनेरा । तासों दुख पावत बहुतेरा ॥
यहचित कबहुँ हंस नाहिं बनई । विविध प्रकारविकारहि ठनई ॥
जैसे हंस क्षीर अरु नीरा । बिलग बिलग करिदेत गँभीरा ॥
दो० । तिमि अनात्मा साथमैं गयों एकसों होय ।
सोकेवल अज्ञान करि भिन्न न करिसक कोय ॥
सो० । सुआत्मपद निरवानके पावन की यतनजब ।
करत तबहिं अज्ञान प्राप्त होन देतो नहीं ॥
चौ० । जिमिसरिसागरमेंजबजाहीं । सूची जानदेत गिरिनाहीं ॥
जान न देत तासु ढिग द्रोही । तैसे चित आत्मासों मोहीं ॥
ताते सोइ उपाय मुनीशा । कहो होय जाते चित खीशा ॥
तृष्णा मेरो भोजन करहीं । जैसे श्वान मृतक पर परहीं ॥
तैसे आत्म ज्ञान ते हीना । मृतकसमान शरीर मलीना ॥
ताहि मृतक समानहौं होऊं । खावैं श्वान श्वानिनी दोऊं ॥
जैसे परछाहीं को मानी । शिशु "वैताल,, डरत अज्ञानी ॥
करि विचार समर्थ जबहोई । तब सो भय पावत नाहिंसोई ॥
दो० । कीन्ह्यो मेरो स्पर्श तिमि चित रूपी वैताल ।
तासों भय पावत अधिक जैसे देखत काल ॥
सो० । ताते तुम तत्काल सोय यत्न मोसों कहहु ।
चितरूपी वैताल जासों होवै नष्ट खल ॥
चौ० । अज्ञानसो झूठ वैताला । चितमें दृढ़ है रहत कराला ॥
ताके नाश करन के हेतू । मैं समर्थ नाहिं होहुं अचेतू ॥

अगम अग्नि महँ वैठब होई। चढ़बअगम गिरिवरकर जोई॥
वज्रहु चूर्ण कदाचित् करई। यह सब अगम कार्यबरुसरई॥
मनको जीतब अति कठिनाई। अस हौं जानत हौं मुनिराई॥
चित अति चलायमान सदाई। अस सुभाव वाला दिखराई॥
वँधा स्तंभ महँ मरकट जैसे। थिर ह्वै वैठत नाहिंन कैसे॥
तिमि वासनाविवश चितजोई। स्थिरनहिंरहतकदाचितुसोई॥
दो०। वड़े जलधिके नीरको सुगम पानकरि जान।
अपर अग्नि कोभक्षणहु करवसुगमअतिमान॥
सो०। उल्लंघन करि जान वरुसुमेरुको सहजअति।
पर यह कठिन महान चितचंचलकोजीतवो॥
चौ०। जिमिसागरनिजद्रवसुभावहीं, त्यागकदाचितुकरतसोनहीं॥
रहु महाद्रवीभूत अभंगा। तासों होत अनेक तरंगा॥
तैसे चित निज चंचलताई। त्याग करतनहिं कोटि उपाई॥
अवर वासना नाना भांती। उपजाति रहतिसदादिनराती॥
अहु चंचल वालक की नाईं। धाव विषय की ओर सदाईं॥
प्राप्ति कहूं पदार्थ की होई। अन्तरते चंचल रहु सोई॥
होत दिवस सूर्य्योदय माहीं। अस्तभये जिमिसोउ नशाहीं॥
तैसे उदय होत चित जवहीं। होत जगत की उत्पाति तवहीं॥
दो०। अपर लीन चितहोतहीं होयजात सबलीन।
चित्त मोदते मुदित अरु चित्तदीन ते दीन॥
सो०। उदधिमध्य गभीरजलजो तामेंसर्पवहु।
सोजव केऊ वीर जाय प्रवेशकरत तहां॥
चौ०। तव वहपन्नगकाटहिताही। तिनकोविषतवहीं चढ़िजाही॥
तासों वड़ो दुःख सो पावै। सुनिये सो दृष्टान्त सुनावै॥
है चितरूपी सिन्धु मँझारा। नीर वासना रूप अपारा॥
अरु थल रूप सर्प तहँ आई। जीव निकट ताके जब जाई॥
भोगरूप अहि तिहि नियराई। काटत अतिप्रिय ह्वै ताहिंआई॥
अरु विष तृष्णा रूप पसरई। तब ताके वश ह्वै सो मरई॥

जिहि भोगहिं सुख रूपजिानी। र्वंत धावत सोदुखकी खानी॥
जिमितृणसों श्राच्छादितखाई; । लगिमृग मूढ़ जात तहँधाई॥
दो०। तब तिहि खाई में गिरत पावत अतिदुख सोग।
तिमि चितरूपी मृग लगत;भोगतसुखलखिभोग॥
सो०। अरु पुनि तृष्णारूप खाई महँ गिरि परत जब।
अविरल भ्रमलअनूप दुख भुगतत जन्मान्तलगि॥
चौ०।यहचितकबहूँअतिगंभीरा। ह्वै बैठत; अरु कबहुँ अधीरा॥
पुनि जब ताको भोग लखाई। तापर लगत चील्हकी नाईं॥
जैसे सो अकाश महँ फिरई। लखि आमिष पृथ्वीपरगिरई॥
अरु सो ताको लेत करारा। तिमि यहतबलगिचित्तउदारा॥
पुनि तबलौं सो रहत अरोगा। जबै देखतै नाहिंन भोगा॥
अरु जब ताको बिषय दिखाई। ह्वै अशक्त तामहँ गिरिजाई॥
पुनि यहचित सोवत न अघाहीं। सेज वासना रूपिय माहीं॥
अरु सो आत्मपदहि की ओरा। जागत नाहि कदापि कठोरा॥
छंदछप्पय। पकरायाहौं मैंहुं चित्तकी अशुभ जालमहँ।
सो है कैसी जाल वासना रूप सूत जहँ॥
ग्रन्थि सत्यता रूप जगत की तामें भैऊं।
भोग रूप तहँ चून देखिकै मैं फँसि गैऊं॥
यहकबहँजातपातालमें कबहुंजातआकाशजिव।
सो रज्जुवासना रूपसों बँधारहघटी यंत्र इव॥
सो०। ताते; हे मुनिनाथ! अबउपाय सोई कहहु।
रिपु चितरूपीसाथसो जीतौंहौंजासुबल॥
चौ०।अब न भोगकीइच्छामोहीं। लक्ष्मीलगतिबिरसअरुद्रोही॥
जैसे शशिघन चाहत नाही। तासों आच्छादित ह्वैजाही॥
मैंहुंन करत भोगकी इच्छा। आवतसन्मुखतबहुंमलिच्छा॥
ताते जगत लक्ष्मी काहीं। काहू भांति चहतहौं नाहीं॥
अरु यह परमशत्रु चितमेरो। नाशत रहत काल को घेरो॥
सन्तत महा पुरुष समुदाईं। जीतन की जो करत उपाई॥

जीते सोउ चित्तको जबहीं। पावै सुखद परमपद तबहीं ॥
ताते सोई कहहु उपाई। मनको जीतिलेहुं मुनिराई ॥
दो०। याके आश्रयते रहत हैं सब दुखगणआय।
जिमि पर्वतके कंदरन आश्रय वनसमुदाय ॥
सो०। भजत क्यों न प्रतियाम, सकल जगत जंजाल तजि,।
मूरख "सीताराम,, धीरज दै ऐसे चितहिं ॥

तृष्णा गारुड़ी वर्णन ॥

दो०। चेतन रूप अकाश में तृष्णा रूपी राति।
तामेंलोभादिकघुवड़ विचरतरहतकुजाति ॥
सो०। ज्ञानरूप जबसूर; उदयहोत तब रात्रियह।
तृष्णा रूपी क्रूर, को अभाव ह्वै जात है ॥
चौ०।जब सो रात्रि नष्टह्वैजाई। तब मोहादि उलूक नशाई ॥
जब बहोरि सूर्योदय होई। बरफ उष्ण ह्वै पिघलत सोई ॥
तिमि सन्तोष रूप रस अहई। तृष्णा रूप उष्णता दहई ॥
अरु पुनि यहतृष्णा अहकैसी। बन शून्यकीपिशाचिनि जैसी ॥
घूमति रहति सहित परिवारा। ह्वै प्रसन्न मन बारहि बारा ॥
सो है कस कान्तार पिशाचा। सुनहु सकलवरणतमें साँचा ॥
शून्य आत्मपद ते चित जोई। शून्य अरण्य भयानकसोई ॥
तृष्णा रूप पिशाचिनि तामें। भ्रमु मोहादि कुटुम लैजामें ॥
चितरूपी गिरि आश्रय चाहा; । तृष्णा रूपी सरित प्रवाहा ॥
अपर पसारतबिविधभांतिरहु; । नित तरंग संकल्परूप बहु ॥
होतमुदित जिमिलखिघनमोरा; । तृष्णा रूपी मोर कठोरा ॥
मोह रूप जलधर तिमि देखी। मूरख होत प्रसन्न विशेषी ॥
दो०। जब में आशय करतहौं कछु गुण संतोषादि।
तब यह तृष्णा गारुडी नाश करतितिहिवादि ॥

सो० । जैसे चूहा तोरि डारति सुंदरि सारंगिहिं ।
तिमितृष्णाबरज़ोरिनाशति संतोपादिगुण ॥
चौ० । पदउत्कृष्ट माहँ मुनिराई । विराजने की करत उपाई ।
चाहतलखि बहु भाँति सनेही; । तृष्णा विराज ने नहिं देही ॥
जिमि जालीमहँ फँसा विहंगा । उड़नचहै नभमहँ मतिभंगा ॥
उडि न सकत सो काहू भाँती; । फँसारहत तामहँ दिनराती ॥
तिमि अनात्म पदते बहिराई; । सकतन मैंहुँ आत्मपदपाई ॥
तियसुतकुटुम सुजालबिछाई । तामहँ फँसानिकसिनहिंजाई ॥
आशा रूपी फाँसी माहूं । बंध्या कबहुँ ऊर्ध्व को जाऊँ ॥
अधः पातहू होहुँ बहोरी । घटी यंत्र की गति भै मोरी ॥
जैसे इन्द्र धनुष्य नवीना । होत रहत जबमेघ मलीना ॥
बडो बहुत रंगन युत दूना । रहत परंतु मध्यते सूना ॥
तिमि तृष्णा मलीन तनुदहई । अंतःकरण मध्य सों रहई ॥
सो अति बडी करन को दीना । गुणरूपी धागे ते हीना ॥
दो० । ऊपरसों देखति लगति सुन्दरि तृष्णामात्र ।
कार्यसिद्धि कछुहोतनहिं वरुसोदुखकीपात्र ॥
सो० । वारिद तृष्णा रूप ताते निसरत वुन्ददुख ।
सुन्दरि लगति अनूप तृष्णारूपी नागिनी ॥
चौ० । कोमलतासुपरसअतिभूरी । अहै परन्तु सो विषसों पूरी ॥
डसत होत तिहिमृतकमलिंदा । पुनि तृष्णारूपी घन वृन्दा ॥
आत्मरूप रवि आगे परई । ताको तुरत आवरण करई ॥
ज्ञानरूप जब पवन निसरई । तृष्णारूप कदम्बिनि टरई ॥
होय आत्मपद केर प्रचारा । साक्षातकारहु विकरारा ॥
ज्ञान जलज संकोचनहारी । तृष्णा रूपरजनि अँधियारी ॥
तृष्णारूप भयानक भारी । दुखदायिनिहै यामिनिकारी ॥
जासों धैर्यवान् गंभीरा । वहुभय भीति होतमतिधीरा ॥
अपर नैन वाले कर दोऊ । नैन अंध करि डारत सोऊ ॥
तव विराग अभ्यास रूप दुइ । नेत्रअंध करिदेत आइछुइ ॥

तिहिं यह अर्थ किसांचअसांचा; । देत विचार करननहिंकाँचा ॥
ताते कहहु उपाय मुनीशा। जासों छूटै सो जगदीशा ॥
दो०। मारत संतोपादि सुत डांकिनि तृष्णा रूप ।
अरु पर्वत को कन्दरा तृष्णा रूप अनूप ॥
सो०। गरजत रहत गयन्द मोहरूप उन्मत्त तहँ ।
तृष्णा रूप समुन्द महँ प्रविशति आपदा सरि ॥
चौ०। ताते कहहु उपाय विचारी। जासों छूटै यह दुख भारी ॥
पावक सों न दुःख अस होई । खड्ग प्रहारहु सों नहि सोई ॥
इन्द्र वज्रहू सों नहि ऐसा। दुःख होत तृष्णा ते जैसा ॥
तृष्णा के प्रहार सों घायल । पावतदुख अनेक भा पायल ॥
तृष्णा रूप दीप महँ परई । सन्तोपादि कीट तब जरई ॥
जिमि लखि मीनकेकरी रेती। मास जानि मुखमें धरिलेती ॥
ताते अर्थ सिद्धि कछु नाहीं। तिमिजबकछुकपदार्थ लखाहीं॥
उडतिजाति तब ताके पासा। तृप्त न होत काहुकरि आसा ॥
तृष्णा रूपी एक पक्षिनी। कबहुंकहूं उडिजाति यक्षिनी ॥
अरु सो थिरहोती कबहूना। तिमि तृष्णा पदार्थ रससूना ॥
कबहुँ काहु अरु कबहूं काहू। ग्रहणकरत्तन लहतथिरलाहू ॥
अरु यह तृष्णा रुपी बानर। सो कबहूं काहू तरुवर पर ॥
दो०। अरु पुनि कबहूं काहुपर जात रहत थिर नाहिं ।
प्राप्तिहोत जु पदार्थ नाहिं यत्न करत तिहि काहि ॥
सो०। तैसोई तृष्णाहु विविध प्रकार पदार्थ गहि ।
तृप्त कदाचित् काहुभांति भोग सोंहोत नाहिं ॥
चौ०। जिमिघृतकीआहुतिकरिआगी।तृप्तिनहोतिरहतिअनुरागी॥
तैसे जो पदार्थ अरु भोगू। नाहिन तासु प्राप्ति के योगू॥
तासु ओर हू तृष्णा धावै। कबहूं नाहिं शांति को पावै ॥
तृष्णा रूप नदी मद माती। कहँ सों कहँ बहायलै जाती ॥
कबहूँ गिरि की बाजू माहीं । कबहूँ दिशा माहिं लै जाहीं॥
इनको फिराति संग लै जैसे। तृष्णा रूप नदी यह तैसे॥

मोकहँ लिये फिरति नित सोई। अरु तृष्णा रूपी नद जोई॥
तामें उठत अनेक तरंगा। मिटत न कबहुं वासना रंगा॥
तृष्णा रूपी नटिनी आई। जगत रूप आखाड लगाई॥
तिहिको शिर ऊंचो कै देखै; । मूरुख होत प्रसन्न विशेषै॥
जिमि सूर्य्योदय होत प्रभाता; । सूर्यमुखी खिलि ऊंचेआता॥
तिमि मूरख तृष्णा अवलोकी; । होत प्रसन्न विशेष अशोकी॥
॥ दो०। तृष्णा रूप जरठ तियहिं देत पुरुष जब त्यागि।
कबहु न त्याग करति,फिरति, ताके पीछे लागि॥
सो०। तृष्णा रूपी डोरि सों बाँधा जिव रूप पशु।
फिरत बहोरि बहोरि तिहि भ्रम ते अज्ञान नर॥
तृष्णा रूप दुष्टिनी नारी। शुभगुण देखत डारत मारी॥
हौं संयोग जब ताको कीन्हा। तब सों होय गयों अतिदीना॥
जलदपटल जिमि देखि पपीहा। होतमुदित मानतसुखजीहा॥
बुन्द ग्रहण करने जब लागै। अरुयदि पवनलेइ घनभागै॥
तब पपिहा ह्वै जात निराशा। तिमितृष्णाशुभकोकरुनाशा॥
करतन वचन देत कछु काऊं। तब मैं अधिक दीनह्वै जाऊं॥
मोकों यह तृष्णा दुख कारी। देत दूरि ते दूरिहिं डारी॥
जैसे सूखे तृणहि समीरा। करत दूरि ते दूरि अधीरा॥
तृष्णा रूप वायु तिमि मोही। कीन्ह दूरि ते दूरिहि द्रोही॥
ताते भई मोरि मति भूरी। परा आत्मपद ते हौं दूरी॥
जिमि अरविन्द पर भ्रमर जाई। कबहूँ बैठत नीचे आई॥
कबहूँ भ्रमत रहत तिहि पाहीं। कबहूँ थिरु ह्वै बैठत नाहीं॥
दो०। तैसे तृष्णा रूप अलि जगत रूप जलजात।
के नीचे ऊपर फिरत नहीं नेकु ठहरात॥
सो०। जिमि मोती के बास ते निकसत मुक्ता अमित।
तिमि निकरत अन्यास तृष्णा रूपी वास ते॥
चौ०। सोलै जगतरूपबहुमोती। लोभी आश पूर्णनहि होती॥
तृष्णा रूप डिबी महँ छेका। रह दुख रूपी रत्न अनेका॥

कहहु यत्न अब ताते सोई। जासों तृष्णा निवृत होई॥
यह विराग सों निवृत अहई। काहु भांतिनहिं निवृत रहई॥
जैसे अन्धकार कर नाशा। होतकबहुंनहिं बिनहि प्रकाशा॥
तैसो ही तृष्णाहु नशाहीं। कोउ और उपाय सों नाहीं॥
अब तृष्णा रूपी हर नीको। खोदै गुण रूपी धरती को॥
तृष्णा रूपी बल्ली अहई। गुण रूपी रस पीवत रहई॥
तृष्णा रूपी धूरी आही। अतःकरण रूप जल माहीं॥
तामें जबहिं उछरि के परई। तबतुरन्त मलीनकरि धरई॥
सरिता बढ़ वर्षा ऋतु माहीं। पुनिपश्चात् सोउघटिजाहीं॥
इष्ट भोग रूपी तिमि नीरा। प्राप्त होत बढ़ि जब गंभीरा॥
बढ़त हर्ष करि तब बहुतेरा। भोग रूप जल घटत घनेरा॥
तब ह्वै जात सूखि के छीना। तृष्णाकियो मोहिअतिदीना॥
जैसे जब सूखा तृण पावै। तब ताको लै पवन उड़ावै॥
तैसेई यह तृष्णा द्रोही। छनछन लेइ उड़ावतमोही॥
दो०। ताते सोइउपाय तुम कहौ मोहि शुभ जोय।
जाते तृष्णा नाश ह्वै प्राप्ति आत्मपद होय॥
सो०। होय दुःख सब नष्ट जासों होय अनन्द पुनि।
काहे सहत तुम कष्ट तिहि बस सीतारामशठ॥

देह वैराग्य वर्णन॥

दो०। जो जगमहं उत्पत्ति भै देह अमंगल रूप।
नितप्रति विकारवानसो सज्जासिपंको कूप॥
चौ०। हैअभाग्य रूपी अतिसोई। अतिअपवित्ररहत नितजोई॥
सिद्धिअर्थ कछु लखत न यासों। कछु इच्छा नहिंराखत तासों॥
अज्ञ न तज्ञ लखात शरीरा। न चैतन्य नहि जड़हिगँभीरा॥
जिमि संयोग अनल को करई। लोहा होय अग्निवत् जरई॥

पर ताते न जरत है सोई । तिमितन न चैतन्य जड़होई ॥
जड़ यहि कारण ते सो नाहीं । कारजहू अनेक है जाहीं ॥
अरु चैतन्य नाहिं यहि कारण । ज्ञान आपुते करत न धारण ॥
ताते; मध्यम भावहि गन्या । व्यापक है आत्मा चैतन्या ॥
दो० । आपहु ते अपवित्र रूपानल लोह समान ।
अस्थि मांस रुधिरादि सों पूरण विकारवान ॥
छंद कलहंस ।
असदेह जो दुखनको गृहसोहै । अरु इष्टपाय खुश है मन मोहै ॥
पुनिशोकवान् जुकनिष्ठ लखाहीं; । तिहितेशरीरहमचाहतनाहीं ॥
उपजै अजानकर सो नियराई । अस जो अमंगलिक रूपसदाई ॥
फुरता शरीरमहँ जो बहुतेरा । सुअहंपना दुखद होय घनेरा ॥
सो० । यहजगमें स्थितहोय शब्द करतहै बिबिधबिधि ।
जैसे बिल्लाकोय, बैठि कोठरी महँ करत ॥
चौ० । अहंकार रूपी मंजारी । तैसे बैसि शरीर मँझारी ॥
अहं अहं बोलत तिहि माहीं । चुप सो होत कदाचित्नाहीं ॥
शब्द निमित्त काहु के होवै । सो सुन्दर न अन्यथा खोवै ॥
जय निमित्त ढोलक की जैसी । सुन्दरि शब्दहोति अतिकैसी ॥
तैसे अहंकार ते हीना । जो पद है सो परम प्रवीना ॥
शोभ नीक पवित्र अति सोई । अरु अन्यथा व्यर्थ सबहोई ॥
अरु तन रूप नाव मग त्यागी । भोग रूप रेती म्हँ लागी ॥
याको पार होव अति गाढ़ा । जब वैराग्य रूप जल बाढ़ा ॥
अरु प्रवाह होवै अति भारी । पुनि अभ्यास रूप पतवारी ॥
को; जब सबबिधि सों बलपावै । जग के पार रूप तट आवै ॥
दो० । तनरूपी बेड़ा जलधि जगरूपी अवगाह ।
तृष्णाके जलमहँपरा जासु अपार प्रवाह ॥
छंद बाला ।
भोग रूपी तहाँ मगर जेही । सोई ना पार को लगनदेही; ॥
संग वैराग्य मारुत न त्यागै । जोर अभ्यास कर्णहुक लागै; ॥

पार बेड़ा तबहि, पहुंचि जाई। जो करी है बड़ी यह उपाई॥
पार या सिन्धु सो गयहु जोई। जन्मजन्मान्तको सुखिहुहोई॥

सो०। अरु नहिं कीन्ह्यों जोय परम आपदा पाय सो।
बेड़ा उलटो होय, डूबैईगो सिन्धु महँ॥

चौ०। बेड़ा मध्य छिद्र ह्वै जावै। अरुजिमिजल वामेंभरिआवै॥
तबहीं बूडि जात है सोई। अरुतिहिमाहँ मत्स्यरहुजोई॥
खायजायँ जीवहि करि घेरा। यहां शरीर रूप यह बेरा॥
तृष्णा रूप छिद्र ह्वै जाहीं। बूडिजात जगजलनिधिमाहीं॥
भोग रूप, सब मगरत्तहांहीं। ताको धाइ धाइ धरि खाहीं॥
अपर एक अति अचरज आही। सो बेरा नहिं निकट लखाही॥
अवर मनुप तिहि मूरखतासे। मानत आपुहि को बेरासे॥
तृष्णारूप छिद्र के कारन। होत शरीरहि दुःख हजारन॥

दो०। है शरीर रूपी विटप भुजा शाख करिजान।
अँगुरी ताकर पत्र सब जंघा स्तम्भ समान॥

छन्दइन्दुवदना।

भोगसबअंतकरआमिपाहिरूपा। वासनहिजासुमहँमूरिसुअनूपा॥
दुःखसुखपुष्पपुनिजासुकरतृष्णा;खातसुशरीरिवटरूपकरिकृष्णा॥
लागजबयासुमहँश्वेतयकफूला। नाशतबहोतसुसमेतजडमूला॥
"कारण„जुहोततबमृत्युढिगगामी। मोहिंनाहिंनरकछुयासुसनस्वामी॥

सो०। कैसो तरुतनरूप भुजारूपजेहि टास पुनि।
कर अरुपाद अनूप पत्रअपर गुच्छेगिटै॥

चौ०। दन्तसुमनअरुजघास्तम्भा। बढ़तकर्म्म जलकरतअरम्भा॥
तरुसन जल निसरत नित जैसे। सोचिकटा शरीर सों तैसे॥
तृष्णा रूप सर्पिणी पूरी। रहतजो सकलबिपकी मूरी॥
अरु जो कछुक कामना सेई। यासु वृक्षको आश्रय लेई॥
तृष्णारूप सर्पिणी धाई। त्योंही लेति ताहि डसिखाई॥
तिहि विपसों मरिजातसोइनर। अस जु अमंगलअदनतरोवर॥
ताकी इच्छा मोकहँ नाहीं। परम दुःख को कारण आहीं॥

जबल्यों बँधा रहतपरिवारा । तबलगि मुक्ति न पाव गँवारा ॥
दो०। जबहिं त्याग परिवारको करै मुक्तितबहोय ।
इन्द्री प्राण शरीर मनबुद्धि त्याग जब सोय ॥
छंद महालक्ष्मी ।
है अहंभावना जासकों । त्यागि देवैभलो तासुको ॥
मुक्तिपावैतुरंतैसही । नाहितो अन्यथाही नहीं ॥
श्रेष्ठजोसंतहैं ज्ञान में । वास पावित्रई थानमें ।
नित्यनेमादितांठौरही । भाँति नानाकरैंगौरही ॥
सो०। पर कबहूं नहिंजाय सो अपवित्र स्थानमहँ ।
सीताराम भुलाय तहां न कबहूं वासकरु ॥
चौ०। है अपवित्रस्थानशरीरा । तामहँ रहनहार जो बीरा ॥
सोउअहै अपवित्र सदाहीं । अस्थिरूप लकडी घर नाहीं ॥
तामहँ रुधिर मूत्र विष्टादी । ताको कीच लगायहु बादी ॥
आमिष की कहगील बनायो । अहंकार को श्वपच बसायो ॥
अरु तृष्णारूपी अति भारी । ताकी अहै श्वपचिनी नारी ॥
लोभ मोह मकरध्वज क्रोधा । हैं सब ताको पुत्र अबोधा ॥
आत्र अपर विष्टादिक पूरी । अस अपवित्र अमंगल भूरी ॥
जो शरीर अहु धाम असारा । ताको करत न अंगीकारा ॥
दो०। यह शरीर चाहै रहै कैन रहै जग माहिं ।
मेरोयाके साथअब कछुक प्रयोजन नाहिं ॥
छन्द अनुकूल ॥
एक बना है घर सब ठाईं । बासकरैं तामहँ पशु आई ॥
धावत सो डारतबहुधूली । वामहँ जावैजबनर भूली ॥
मारत सींगैं सन तिहिधाई । धूरि गिरैताशिरपरजाई ॥
है तनरूपी गृह अति भारी । इन्द्रियरूपीपशुगनसारी ॥
सो०। गृह महँ बैठत जाय तबपावतबहुआपदा ।
तात्पर्य यहि पाय अहंभाव जोई करत ॥
चौ० । तब इन्द्रीरूपी पशुभारी । विषयरूप बिषान सो मारी ॥

तृष्णा रूपी धूरि नवीना। सो याको करिदेत मलीना॥
ऐसो जो शरीर दुखदाई। अंगीकार किये न भलाई॥
जामहँ कलहकरन नितपरई; । अरु प्रवेश कबहू नहिं करई॥
ज्ञान रूप सम्पदा गँभीरा। अहै जु असो गृहरूप शरीरा॥
तृष्णा रूपी चण्डी नारी। इन्द्रिय रूपी द्वार सँभारी॥
तामहँ रहत द्वार पर आई। देखि कल्पना करति सदाई॥
शम दम आदि सम्पदा जोई। तासों यासु प्रवेश न होई॥
दो०। शय्या है तिहि धाम में; तापर जब विश्राम।
करततबहिं सो कछुकसुख, पावतहैभरियाम; ॥
छंद स्वागता॥
जो परन्तु परिवार घनेरा। देखिये सकल तृष्णही केरा॥
सो अराम करने नहिं देहीं। तासु सेज पर जातहि लेहीं॥
ता निकेत महँ सेज अनूपा। है प्रमोदिनि सुषुप्ति सरूपा॥
कौ अराम करने जब जाई। काम क्रोध सब रोवत आई॥
सो०। अरु ये चण्डी वाम को देखत परिवार जो।
कोहमोह अरु काम तिहि उठाइदेवैं तुरित॥
चौ०।सबमिलिधायउठावहितेही। तहँ विश्राम करन नहिदेही॥
ऐसो है सब दुख कर मूला। जो शरीर रूपी गृह तूला॥
तिहि इच्छा हौ दीन्ह्यों त्यागी। परम दुःख सो देत अभागी॥
ताकी इच्छा मोकहँ नाहीं। कहत बारही बार सदाहीं॥
विटप शरीर रूप हौं जानी। तहँ तृष्णा रूपी कौवानी॥
नीच पदार्थ लखै तहँ वैसे। ताके ढिग उडि जाइय जैसे॥
तिमि तृष्णा रूपी सो धाई। भोग रूप पदार्थ पहँ जाई॥
तृष्णा बहुरि मर्कटी न्याई। तन रूपी तरु देति हिलाई॥
दो०। वृक्षनको स्थिर होन नहिं देत अनेक उपाय।
अरु जैसे उन्मत्त गज फँसै कीच मों आय॥
छंद मालती॥
निकसिसकै नहि जाय प्रानसो। दुखितरहै अति खेदवान सो॥

तिमि मद सो करि अज्ञ नीचमें । रहत फँसा सुशरीर कीचमें ॥
सकत नहीं निसरो तहां परो । दुख वहुभांति सहै परो नरो ॥
अस दुखपावत जा शरीर मैं । चहत न तावश होयपरि मैं ॥
सो० । अस्थि रुधिर अरु मासु सों पूरण अपवित्रअति ।
यह शरीरहै जासु जिमिहीलत गजकर्ण निति ॥
चौ० तैसे मृत्यु हिलावतताही । वारम्बार वाहि वपु काही ॥
अवहीं कछुक कालकी देरी । करिहै मृत्यु ग्रास तिहि घेरी ॥
हौं ऐसो शरीर परिहरहूं । ताते अंगीकार न करहूं ॥
यह शरीर कृतघ्न अति होई । भोगत भोग विविधविधिसोई ॥
वहु ऐश्वर्य्य प्राप्त सो करई । मृत्यु सखापन नहिंचितधरई ॥
जव परलोक जीव सवजाई । तव अकेल तन तजत सदाई ॥
याके सुखहित जन्म अनेका । करत जीवपर यह अविवेका ॥
संग न रहै सिदा धरि धीरा । ऐसो जोइ कृतघ्न शरीरा ॥
दो० । सव विधि सवदिन कीन्हमैं याको मनसोंत्याग ।
दुःख देनहारा यही करत न हौं अनुराग ॥
छंदही० । देखहुसव आचरजाहि औरहु चित्तलाइकै ।
साथ चलत नाहिं जुनर भोगकरत धाइकै ॥
मारग रहिजात सवहि भासत जिमि धूरिसों ।
जीवचलत क्षोभित तनसाथ सवहि दूरिसों ॥
धूरि सहित वासनहिं रूप चलत आगरो ।
देखि परत नाहिंय लखत कौनजगहभागरो ॥
जात जु परलोक जवहिं कष्ट वहुत पावतो ।
"क्योंकि" वदनसाथपरशिकै सवहिनशावतो ॥
सो० । यहशरीर क्षणभंग पत्र उपर जिमि बुंदजल ।
परत रहत वहुरंग क्षणभरि तैसे वदन यह ॥
चौ० । असशरीरमहँआस्थाकरही । सोभवसागर कवहुँन तरही ।
अरु ऐसो शरीर उपकारी । सुख न लहत दुखपावतभारी ॥
अपर सकल धनाढ्य जोलोगा । सो शरीर सों भुगतत भोगा ॥

निरधन भोगहि भोगत थोरे। जरा मृत्यु पावहिं युग जोरे ॥
यामहँ कछु विशेपता नाहीं। तन उपकार करब जगमाहीं ॥
अरु भोगना भोग प्रतिआरन। तृष्णा सों उलटो दुखकारन ॥
जैसे कोउ नागिनी काही। नित पय प्यावत धरि गृहमाहीं ॥
तवहूं अन्तसमय दुखदाई। काटिदेति है ताहि नशाई ॥
दो०। तिमि यह जीवने तृष्णारूप व्यालनी संग।
करी सखाई होइहै "नाशवंत,, सो भग ॥

छंदलोला।

कीजैजोबहुभाती भोगैहेतुउपाई।सोईयाजगमाहींघूमैमूढ़कहाई ॥
जैसेमारुतवेगाआवैजायसदाई। तैसेयासुशरीरैनाशैवंतलखाई ॥
यासोंप्रीतिलगाईदुःखैकारनहोई।आस्थायादियमाहींसारोजीवबगोई ॥
याकोत्यागकियोहैकोईहीबिरलोई। जैसे काननमाहीकौएकैमृगहोई ॥
सो०। जो मरुथल के नीर की आस्या त्यागत दुखद।
अरु सव भ्रमत अधीर तृपावंत तृष्णा विवस ॥
चौ०।दीपकअरुदामिनीप्रकाशा। आवतजात लखात विनाशा ॥
पर यहि तनको प्रकटत गोई। आदिअन्तलखिसकतनकोई ॥
जो आवत कहँसों; कहँ जाही। जैसे बुद्बुद सागर माहीं ॥
उपजै अरु मिटिजावै सोई। तिहिआस्थाकछुलाभ न होई ॥
तिहि आस्थातेनहि कछुलाभा। जैसे या शरीर कर आभा ॥
अरु अति नाशरूप तन जोई। स्थिर नाहिंन कदापि ह्वैओई ॥
जैसे चपला नहिं थिरु रहई। तिमि थिरताशरीर नहिगहई ॥
ताकी आस्था मैं नहि कीना। तिहिअभिमानत्यागकरिदीना ॥
दो०। जैसे सूखे तृणहि को त्यागि देहि नर वादि।
तैसहि हौंहू त्यागिदिय अहंकार ममतादि ॥

छंद वासती ॥

ऐसीदेहैंपुष्टकरतहैंजेईलोगू, । सोहैदुःखैहेतुअरथ ना आवैयोगू ॥
आवैकाठैकामजरनकेदूजोनाहीं।तैसेईयादेहजडहुऔगूँगोआहीं ॥
जोईकाठैरूपवदनकोलैज्ञानागी,।जारयोनानाभातिपुरुपमोईहैभागी॥

भौपमार्थैसिद्धिअपरजोजारद्योन ही पायोनानारीतिकष्टप्तोपृथ्वीमाहीं॥
सो० । नहिं मैं होहुँ शरीर, मेरो नाहिं शरीर यह ।
याको नहिहौं वीर, अरु है मेरो यह नहीं ॥
चौ०।अबनहिंकछुककामनामोहूं। होहुं पुरुष निराशी होहूं ॥
अरु शरीर यह नश्वर आही। तासों कोउ प्रयोजन नाही॥
ताते सो उपाय कहवाऊं। जासों होहुँ परमपद पाऊं ॥
तन अभिमान तजा नर जोई। परमानन्द रूप सो होई ॥
अरुजिहिकहँतनकोअभिमाना। परमदुखी पावत दुखनाना ॥
जेते कछु दुख सुख अरु भोगा। होत सकल शरीर संयोगा॥
जरामृत्यु भ्रांती अपमाना। दम्भ मोह शोकादिक नाना॥
होय वपुष संयोग विकारा। जिहिअभिमानतिाहिविकारा ॥
दो० । प्राप्ति होत सब आपदा तब ताही में आय ।
जैसे प्रविशतउदधि में धायनदी सबजाय ॥
सो०। तिमि शरीर अभिमानमें प्रविशत सब आपदा ।
पुरुषोत्तम तिहिजान जो न देह अभिमान करु ॥
चौ०।अपर बन्दनाकरिबे योगहु। नमस्कार मम ऐसे लोगहु॥
मिलि है सर्व सम्पदा ताही। जैसे मान सरोवर माहीं॥
आय हंस गण रहत अनेका। तजिअधर्म अवगुणअविवेका॥
तिमि देहाभिमाननहिं जहँवा। सर्व सम्पदा आवति तहँवां॥
जिमि निजप्रभामाहिंबेताला। कल्पत शिशुडरिहोतबिहाला ॥
प्राप्तिहोति बिचारके जबहीं। होत अभाव तासुको तबहीं ॥
अज्ञानेकर मोर मर्न कांचा। अहंकार रूपी जु पिशाचा॥
दृढ आस्था तनमाहि बताई। ताते अब सो कहहु उपाई ॥
दो० । नाश होय जासो अहकार रूप जु पिशाच ।
आस्था रूपी फाँसिहू जासो टुटे असाच ॥
छन्दभुजंगी॥
भयोमोहिंसंयोग अज्ञानको । अहंकाररूपी पिशाचानको ।
उसी से अनंतर्थ पैदा भई । शरीराहिकेआइआस्थानई ॥

जमै अंकुरै अव्वलै बीजते। पुनः वृक्षह्वै अन्तमेंछीजते॥
अहंकारते होयत्यों देह की। बुरीआसथाखान संदेहकी॥
सो०। यह जु पिशाच मलीन अहकार रूपी दुखद।
कीनजीव सबदीन दै दै दुख सो विविधविधि॥
चौ०। जिमिछायामेंबालमलीना। लखिवैतालहोतअतिदीना॥
अहकार रूपी सु पिशाचा। मोकहँ कीनदीन तिमिकाचा॥
सु अविचार सों सिद्ध लखावै,। किये बिचार अभावहि पावै॥
तिमिर नाशजिमिकरतप्रकाशा। तिमिविचार अहँकारहिंनाशा॥
आस्था राखत जो तनु माहीं। जलप्रवाह समसो थिरनाहीं॥
ऐसौ चल शरीर अहु सोई। विद्युत्चमक नथिरजिमिहोई॥
अरु आस्था गंधर्ब नगर की। वृथाहितिमिआस्थातनुभरकी॥
असिशरीर की आस्था कारन। करु जो अहंकार को धारन॥
दो०। अरु जो जगत पदार्थ के निमित अनेक उपाय।
करत शरीरहि कष्टदै सो अति मूढ़ कहाय॥
सो०। स्वप्न झूठ जिमि जान तैसै यह मिथ्या जगत।
ताहि सत्य करि मान याको करत प्रयत्न जो॥

छन्द दुवैया॥

सो करत बंधन हेतु अपने जैसे गुफा बनावै।
अपने बन्धन हित धुरान सो पीछे बड़ दुख पावै;॥
अरु पतंग दीपक की इच्छा करत नाश निज हेतू।
तैसे अज्ञानी निज तनको करि अभिमान अचेतू;॥
इच्छा करत भोग की अपने नाश के निमित सोऊँ।
हौंतो यहि शरीर को अंगीकार करत नहिं होऊँ॥
काहेते देहाभिमान यह अति दुख देने हारा।
जिहिको यह न रही इच्छा, तिहि भोगहु कीनकरारा॥
सो०। ताते, हौंहु निरास, अरु चाहत हौं परम पद।
जिहिते होय न बास, पुनिससार समुद्र महँ॥

बाल्यावस्था वर्णन ॥

दो०। या संसार समुद्र महँ जो जन्मत वश काल।
॥प्राप्ति होतही तासुमे मिलत अवस्था बाल॥
सो०। सोऊ अति दुख मूल होत दीन बहु ताहिमहँ।
जेते अवगुण शूल आयप्रवेशत कहततिहि॥
चौ०। आसक्तता मूर्खता इच्छा। भली भांतिहों कीन्ह परिच्छा॥
दुख सँताप चपलतादि नाई। ये विकार सब प्रकटत आई॥
देखहु वालावस्था सोई। महा विकारवान यह होई॥
अरु बालक पदार्थको धावत। यकलै दूसरिपै मन आवत॥
याहिभांति सो थिर नहिं होई। बहुरि औरमहँलागत सोई॥
जैसे वानर वैठत नाहीं। ठहरि भूमि वातरुवर पाही॥
अरु जब करत काहुपर क्रोधा; परा अन्तही जरत अबोधा॥
बड़ी बड़ी इच्छा करु सोऊ। जाकीप्राप्ति कबहु नहिहोऊ॥
सदा परा तृष्णा में रहई। अरुभयभीतक्षणहिं मेंसहई॥
कबहूं शान्ति को नहीं पावै। महा दीन सो पुनि ह्वै जावै॥
जिमि मतंग कदली बन केरा। होत दीन साँकल सों घेरा॥
तैसे यह चैतन्य पुरुष वर। दीन होत वालावस्था कर॥
इच्छा कछुक करत नित जोई। है सब बिनु बिचार के सोई॥
तासों पावत दुःख अनेका। रहत सदा सो युत अविवेका॥
तापर मूढ़ गूँग सो आहीं। तासों कछुक सिद्धि ह्वै नाहीं॥
अरु काऊ पदार्थ जब लहई। तामें क्षणहि सुखी सो रहई॥
दो०। बहुरि तपन लागतौ जिमि तपत भूमिको वारि।
जल डारत शीतल रहति लागति तपन वहोरि॥
सो०। तैसे तपत अजान जिमि रजनी के अन्त महँ।
उलूकादि दुखवान होत सूर्य को देखिकै॥
चौ०। तिमिरस्वरूपकौ याहि अज्ञाना। वाल्यावस्था में दुख नाना॥
जो वालकन अवस्था पाही। साथ करै सो मूरख आही॥

काहे ते जो रहित विवेका। अपर सदा अपवित्र अनेका॥
धावत नित पदार्थ की ओरा। ऐसी मूढ़ दीन जो घोरा॥
की, इच्छा मोकहँ कछु नाहीं। करि बिचार देखहु मनमाहीं॥
जिहि पदार्थ कहँ देखत धावत। क्षणक्षणसो अप्रमानहिं पावत॥
जैसे क्षण क्षण धावत श्वाना। द्वार द्वार पावत अपमाना॥
तिमि अपमान बालकहु लहई। मातु पिताकी नितभय रहई॥

दो०। बान्धव गण अरु आपते श्रेष्ठ बालकन सोय।
पशु-पक्षिहु को देखिकै रोवत भय वश होय॥

सो०। राखत इच्छा मैंन सु अवस्था असिदुखदकी,।
जैसे नारी नैन चञ्चल नींद प्रवाह युत॥

चौ०। याहू ते चंचल बहुतेरा। जानत मैं मन बालक केरा॥
सब चंचलता है कनिष्ठ अति। सब ते चञ्चल है बालकमति॥
मन समान सो चञ्चल होई। ताते मनहि रूप है सोई॥
वार बधू को जिमि चित अहई। एक पुरुष में कबहुं न रहई॥
तैसे बालक को चित आही। यक पदार्थ महँ ठहरत नाही॥
यहि पदार्थ सों होइहि नाशा। असविचारि न करतबिश्वाशा;॥
अरु यासों होइहि कल्याना। सोउ विचार न करत अजाना॥
ऐसहि परा चेष्टा करई। सदादीन चिन्ता महँ जरई॥
सुख दुख इच्छा हों सहिकारन,। रहत तपायमान प्रतिवारन॥
ज्येष्ठापाढ़ भूमि तपि जैसे। बालक तपतरहत नित तैसे॥
शान्ती को कदापि नहि पावै। अरु विद्या पढ़ने जब जावै॥
तबनिज गुरुहि डरत इमिसोई। जैसे यम कहँ देखत कोई॥

दो०। जैसे गरुडहि देखिकै सर्प्प रहत भय पाय।
तैसे गुरुहिं निहारि कै बालक रहत डराय॥

सो०। जब शरीर को कोय प्राप्त कष्ट भै आइकै।
तबदुखपावतसोय पैननिवारनकरिसकत॥

चौ०। अरुकहिसकतनराखतगोई। जरत परा अंतर ते सोई॥
पुनिमुख ते कछु बोलि सकैना; जैसे तरुन सकत कहिबैना॥

जिमि औरहु सब तिर्य्यक योनी। निजमुखते कहिसकतनहोनी॥
दुखपावत नहिं करत निवारन। जरत अन्त ते करतसँहारन॥
गूँग मूढ़ तिमि बाल कहावत। अन्तरते बहुविधिदुखपावत॥
ऐसी जो बाल्यावस्था कर। अस्तुतिकरत मूर्ख सोईनर॥
असि दुखरूप अवस्था माहीं। कछुक्रविवेक विचारहु नाहीं॥
यक अहार करि रुदन मचावत। असदुखरूपी मोहिनभावत॥

दो०। थिर नहिं कबहूं रहत जिमि चपला बुद्बुद नीर।
तिमि कदापि नहिं रहत थिर बालकचित्त अधीर॥

चौ०। अतिमूर्खावस्थायहअहई। कबहूं अजानपिता सों कहई॥
मोकहँ हिमि टुकडहि भुनि देहू। कबहुँ उतारि चन्द्रकिनलेहू॥
ये सब मूरखता की वानी। ताको ग्रहणकिये अतिहानी॥
ताते कहत बार हिय वारा। करत न मैं तिहिअंगीकारा॥
जिमिदुख अनुभव बालहिहोई। स्वप्नहु मोहिं न आयोसोई॥
तात्पर्य्य याको यह अहई। बाल्यावस्था अतिदुखलहई॥
बालावस्था अवगुण भूषण। अवगुण सों शोभितअतिदूषण॥
ऐसी नीच अवस्था केरी। काहु भांति नहि इच्छामेरी॥

सो०। ताको अंगीकार तासों मैं करत्यों नहीं।
सीता राम विचार यामें गुणकौ नाहिकछु॥

युवा गारुड़ी॥

दो०। बाल्यावस्था दुखद के अन्तर आवति जोय।
नीचे ते ऊंची चढ़ति युवा अवस्था सोय॥

सो०। उत्तम गनिये योग दुखदाई सोऊ नहीं।
तबसो चाहतभोग लागतकामपिशाच जब॥

चौ०। युवाअवस्थामहँपुनिसोई। आय पिशाचसोइ थितिहोई॥
बार बार सो मनहि फिरावै। अरु पुनि इच्छामें पसरावै॥

जिमि भोरहिसूर्य्योदय माहीं। सूर्य्यमुखी पंकज खिलिजाहीं॥
अरु पखुरिन पसारैं सोई। युवा अवस्था तिमि रवि होई॥
सो रवि उदयहोत जिहिकाला। तब चितरूपी कमल विशाला॥
इच्छा रूप पंखुरी होई। तिहि पसारतहि फुरती सोई॥
कामरूप पिशाच तब ताही। डारिदेत ललनागन माहीं॥
तहां अचेत परा खल रहई। नाना भांति कष्ट बहु सहई॥
दो०। जैसे काहुहि डारि दै अग्निकुण्ड महँकोय।
तहांपरा दुखपावई तिमि मनोज वशसोय॥
छं०त्रि०।जो कछुकविकारा,है संसारा, सबसों न्यारा, होयपरा;।
अवलोकत जाहीं,देखत नाहीं,पावत याही, माहँ अरा॥
जिमिलखिधनवाना,निरधनठाना,धनकोपाना,आशयहीं; ।
तैसे तरुणाई में सबआई दोप समाई जात सहीं॥
अरु भोगैं जोई सुखसम कोई समुझत होई चाह करै।
सो परम अभागी कारन रागी दुख लागी औतार धरै॥
जैसे मद केरी भरी घनेरी घटचहुँ फेरी नीक लगै।
सो पीवतकाला करत बिहाला मतवालाकै ताहि ठगै॥
सो०। तासों ह्वै अति दीन होत निरादर जगत महँ।
तिमियहभोगमलीन देखतअतिसुन्दर लगत॥
चौ०।परजब ताको भोगतकोई। तब तृष्णा के वश महँ होई॥
अति उन्मत्त होत अकुलाई। अरु सो पराधीन ह्वै जाई॥
कोह मोह मनोज बरजोरा। अहंकार लोभादिक चोरा॥
युवारूप यामिनि जब पाई। आतमज्ञान धन लूटत धाई॥
तासों होत जीव अति दीना। आत्मानन्द ज्ञान ते हीना॥
असि दुखदायि अवस्था काहीं। अंगीकार करत हों नाहीं॥
जग महँ अपर शान्तिहो जोई। चित इस्थिर करिबे को सोई॥
सो चित युवा अवस्था माहीं। नितप्रतिधाय विषयपहँ जाहीं॥
दो०। जैसे बाण निरंतरै जात लक्ष की ओर।
तथाहिहोत वाकोविषय सो संयोग बहोर॥

सो०। सो नहिं निवृति होय कबहूं तृष्णा विषय की।
अरु दुख पावत सोय जन्महिंते जन्मांतलगि॥
चौ०। युवाअवस्थाअसिदुखदाई। तिहिइच्छा नहिकरतसदाई॥
अरु जगमहँ जेते दुख आहीं। प्रविशयोयुवा अवस्थहिमाहीं॥
काम क्रोध अरु लोभ मानमद। अहंकार चपलता मोह बद॥
इत्यादिक जेते दुख ओई। युवा अवस्था में स्थिर होई॥
जैसे प्रलय काल महँ आई। सकल रोग इस्थिर ह्वै जाई॥
तैसे युवा अवस्था माहीं। सर्व उपद्रव आय समाहीं॥
अपरमोहि क्षणभंगु लखाही। जिमिचचलाचमकिमिटिजाहीं॥
जिमिवारिधि जलवीचितरंगा। क्षण क्षण उठै क्षणहिंमे भगा॥
तैसे युवा अवस्था होही। क्षणही मध्य मिटत है सोही॥
जिमि कोउ नारिस्वप्नमें आई। करिविकार काहुहि छलिजाई॥
तैसे अज्ञानी को धाई। छलत युवावस्था यह आई॥
परम शत्रु जीवनको सोई। याके शस्त्र बचै नर जोई॥
दो०। धन्य धन्य !! सो जीवहैं, धन्य! धन्य!!जगमाहिं।
युवा अवस्था शस्त्र जो काम क्रोध बचि जाहिं॥
सो०। सो नर वज्र प्रहार सोंभी छेदि न जाइ है।
ताको जीवन भार जो यासों पशु सम बंधा॥
चौ०। युवाअवस्थादेखतसुन्दर। जर्जरीत् तृष्णा सो अन्तर॥
देखत सुन्दर तरुवर जैसे। अन्तर लगो रहत घुन तैसे॥
युवा अवस्था भोगहि हेतू। करत प्रयत्न अनेक अचेतू॥
अरु आपातु रमणीय सोई। कारन याकर ऐसहि होई॥
जबलगि इन्द्रियविषय संयोगा। तबलग यह अविचारितभोगा॥
नीक लगत सुन्दर हितकारी। भये वियोग होत दुखभारी॥
ताते भोगहि मूरुख पाई। अति उन्मत्त होत हरषाई॥
सो कबहूं न शान्ति को गहई। अंतर तो तृष्णा नित रहई॥
अरु कामिनिहिंमाहिंचित केरी। रहत सदा आसक्ति घनेरी॥
होत वियोग इष्ट वनिताको। जरतकरतसुमिरन नितवाको॥

जिमि वनवृक्ष अग्नि करजरई॥ तिमि यामें वियोग जबकरई ॥
जिमि मतंग साखल सों बांधा। कहुँन जात थिरहै चुपसाधा॥
काम रूप मदांध गज जैसे। युवा अवस्था सांकल तैसे ॥
युवा अवस्था सरिता धारा। इच्छा रूप तरंग अपारा॥
वार वार उठिउठि मिटि जावै। सोंन कदापि शान्ति को पावै ॥
युवा अवस्था खल अतिहोई। होवै बुद्धिमान् जो कोई ॥
॥दो०॥ अरु निर्मल नित मुदितमन होवै सब गुणधाम।
॥ ॥ ताकी बुद्धि मलीन करि करत तासु मतिवाम ॥
छं०मो०॥निर्मलज्योंजलकोहुनदीकरा।होतमलीत सहीवरषाभर॥
त्योंहिं युवावस्था जब आवति। बुद्धिहि तासु मलीनबनावति॥
वृक्षस्वरूप शरीर दुखी यह। तामहँ डार युवावस्था अह॥
सो अति पुष्ट लखाय अकारन। बैठत आय तहां भँवरा मन ॥
॥सो०॥ तृष्णा रूप सुगन्ध ताकहँ सूँघत मात्र यह।
॥ ॥ होत मत्त अरु अन्ध भूलत सकल विचार शठ ॥
चौ०॥जिमिजबप्रबलचलतिहैबाई। सूखो पत्र उडाय लै जाई॥
अरु ताको वह रहन न देई। तसे यह आवत हरि लेई॥
गुण सन्तोषादिक वैरागा। करि अभाव करवावतत्यागा॥
अरु दुख रूप कमल हितकारी। युवा अवस्थाजिमितिमिरारी॥
तम रिपु उदय होत जब सोई। तब सब दुःख प्रफुल्लितहोई॥
ताते सर्व दुःख कर मूला। औरन युवा अवस्था तूला ॥
जैसे सूरज मुखी सदाही। तबअरुणोदयमें खिलिजाही॥
तिमि राजीव चित्त रूपीमन। अरु संसार रूप पँखुरी गन॥
पुनि सत्यता रूप सुगन्ध कर। खिलिआवतपावतपंकज वर॥
तृष्णा रूपी मधुकर धाई। ताके ऊपर बैठत आई॥
अपर विषय की लेत सुगन्धा। तासों होय जात सो अन्धा॥
यह संसार रूप पुनि राती। ता महँ तारागन की भांती॥
करत प्रकाश वदन हरषाई। युवा अवस्था तारहि पाई॥
अरु जब युवा अवस्था आवति। नुपुर जर्जरी भाव बनावति॥

जैसे धान केर लघु तरुवर। तवलगिलागत सुन्दरहरुवर॥
जवलगि तामहँ पुष्प न होई। लगतसुमन सूखन लगुसोई॥
॥दो०। अन्न वृक्ष छोटेहु कण जब परिपक्क बनाव।
तव हरियावलि रहत नहिं होत जर्जरी भाव॥
सो०। तैसे जव लगि नाहिं आवतितरुणाइ प्रवल।
तवलगिवदनलखाहिंअतिकोमलसुंदरअमल॥
चौ०। जवहींप्रवलयुवानीआई। तवहिशरीर क्रूर ह्वै जाई॥
ह्वै परिपक्क होत सो क्षीना। होय वृद्ध पुनि होत मलीना॥
असि दुख की जड रूप युवानी। तिहिइच्छानहिंमनक्रमवानी॥
जैसे वहु जल पूर्ण अभंगा। उछरि पछारतविविधतरंगा॥
सोउ न त्याग करै मरयादा। अस ईश्वर आज्ञा की वादा॥
युवा अवस्था तो असि होऊ। शास्त्र लोक मरयादा दोऊ॥
त्यागत मेटत चलत सदाहीं। ताहि रहतविचार निज नाहीं॥
जैसे अन्धकार निशि माहीं। रहत न ज्ञान पदारथ काहीं॥
तिमि तरुणाईतिमिर निधाना। रहत शुभाशुभ केर न ज्ञाना॥
जाके मन बिचार नहिं भावै। ताको शांति कहा ते आवै॥
नितप्रति व्याधि ताप महँ जरई। जैसे मीन नीर विनु मरई॥
सो विनु नीर शांति नहिं पावै। तिमिनरविनुविचारमरिजावै॥
दो०। युवा अवस्था रूपजव रजनी प्रकटत आय।
आतुरकाम पिशाचतव गरजतअतिहरपाय॥
सो०। तासों यह संकल्प वार वार कामिहि उठत।
आवै कोऊ अल्प तासों यह चर्चा करत॥
चौ०। लखहुमित्र? यहकैसीनारी। अंग अंग सुन्दरि सुकुमारी॥
अरु कैसे कटाक्ष हैं बाँके। धरतनधीर लगत हिय जाके॥
तिहि कारन हौं पूछत तोही। कौनप्रकार मिलिहियइमोहीं॥
नितप्रति ऐसिहि इच्छा संगा। कामी पुरुष जरावत अंगा॥
जैसे नदी मरुस्थल केरी। धावत मृगजल चहुँदिशिहेरी॥
अरु जव नीरहिं पावत नाहीं। तवसो जरत तृषानल माहीं॥

जैसे कामी पुरुष अभागी। नित जरु विषय वासना लागी॥
आत्मज्ञान मनहिं नहिं भावै। ताते कवहुँ शान्ति नहिं पावै॥

दो०। उत्तम जन्म मनुष्य को; जासु परन्तु अभाग।
ताहि विषय आत्मपद को न होत अनुराग॥

सो०। जिमिचिन्तामणि जाहि; मिलतनिरादरसोकरत;।
अरु जानै नहिं ताहि ताहि डारि देवै वहुरि॥

छंद भुजंग प्रयात॥

धरे आदमी की शरीराहि तैसे। नपायोपदै आत्मसोमूर्खकैसे॥
अभागी वहीमूर्खता सो नपायो। निजैजीवनैको वृथासोगँवायो॥
युवामें निजै दुःखको क्षेत्रहोई। विकारादि जेतेयुवामाहिंसोई॥
सबै आवते नाशपुर्षार्थ हेतू। छलौमानमोहादिऔमीनकेतू॥

दो०। ऐसी तरुणाई करत प्राप्ति अनेक विकार।
जैसे सरिता वायु सों करत तरंग पसार॥

चौ०। तैसेयुवाअवस्थाआवत। मनके कार्य्य अनेक उठावत॥
जैसे नभग पक्ष बल पाई। उडत रहत अकाश नियराई॥
जैसे भुज बल सों मृग राजा। धावत पशु मारन के काजा॥
तैसे चित्त युवावस्था कर। चलु विक्षेप ओर अतिआतुर॥
सागर तरिबो अधिक अपारो। अपरम्पार जासु विस्तारा॥
रहत नित्य अथाह जल तामें। मच्छ कच्छ मगरादिक जामें॥
अस दुस्तर सागर तरि जाई। सो बरु मोकहँसुगम लखाई॥
पर यहि युवा अवस्था केरा। तरिबो कठिन लखात घनेरा॥

दो०। कारन यह जो यासुमें कठिन रहब निर्दोष।
अस संकट वाली युवा वस्था है अति चोष॥

सो०। तामें जो न चलाय, मान होत सो, धन्य! नर।
तापर ईश सहाय, अपर बंदना योग सो॥

चौ०। युवाअवस्थाअहुअतिहीना। जोचितकोकरिदेतमलीना॥
जैसे नीर बावरी कोई। तिहि लग राख कांट जो होई॥
सो जब पवन झोंक में परई। आय बावरी महँ सब झरई॥

पवन रूप तरुणाई पूरी । दोष रूप काँटे अरु धूरी ॥
तिमि चित रूप बावरी माहीं । डारिडारि मलीन करि जाहीं ॥
ऐसे अवगुण जिहि में आहीं । ताकी इच्छा मोकहँ नाहीं ॥
युवा अवस्था ! विनवौं तोही । यही एक वर दीजै मोही ॥
इतनी कृपा दासलखि कीजै । निज दर्शन कबहूँ जनि दीजै ॥

दो० । तव आवन हौं जानतौं कारन दुख अरु रोष ।
जिमि सकट सुतमरनको पितासकत नहिं शोष ॥

सो० । अरु सोदेखत नाहिं सुख निमित्तसुतमरनजिमि; ।
हौं तव आवनमाहिं सुखनिमित्त जानतनातिमि; ॥

॥ छंद आभीर ॥

ताते मोपर नेहु । करि दर्शन जनि देहु ।
युवा अवस्था केर । तरबो कठिन घनेर ॥
जो कौ यौवन होय । सहित नम्रता सोय ।
अपर शास्त्र गुन सार । जो संतोष विचार ॥
बहुरि शांति वैराग्य । जो सम्पन्न सभाग्य ।
करि देखहु मन गौर । सो दुर्लभ सब ठौर ॥
जिमिअचरज नभमाहिं । बनअरुबाग लखाहिं ।
युवा माहिं तजि रोष । तिमि विचार सन्तोष ॥

सो० । ताते मोकहँ सोय कहौ उपाय विचार करि ।
प्राप्ति आत्मपद होय युवा दुःख सों मुक्त ह्वै ॥

स्त्री दुराशा वर्णन ॥

दो० । जासु मनोज बिलासके निमितनारिको चाह ।
सो रुधिरादिक सों भरी करत रंक नरनाह ॥

सो० । याही के सब भाग सों जिमि पूतरि यन्त्र की ।
बनी करत बश तांग वार २ चेष्टा अमित ॥

चौ०। तिमिमलमूत पूतरीमाहीं। करहुविचारऔरकछुनाहीं॥
जो विचार बिनु देखत ताही। ताको यह रमणीय दिखाहीं॥
दूरिहिते जैसे गिरि ऊपर। सहितगंग माला अतिसुन्दर॥
लगत नीकपर निकटजाई जब। सबअसार पाहनलखाहितब॥
तिमि पहिरे भूषण पट सारी। लागतिशुचि सुन्दरिअरनारी॥
अंग अंग कर करहु विचारा। तो नाहिंनलखातकछुसारा॥
जिमि कोमल व्यालिनिको अंगा। छुवतहोत जीवनको भंगा॥
तैसे जात नारि के पासा। परशतमात्र होततन नासा॥
दो०। जैसे देखत तो लगति सुन्दरि विषकी वेलि।
किन्तु परश के करतही मारत जीवहिं पेलि॥
छंद शंकर। जिमि द्वारपर कौ बाँधि देवै गजहिं पुढ़ जंजीर।
तहँ रहत परवश होइ ठाढ़ो यदपि ऐसो वीर॥
तिमि कामकी जंजीर में अज्ञान नरको प्रान।
यक ठौर बाँधा रहत ठाढ़ो नारि रूपी थान॥
सो०। तहँ ते कतहुँ न जाय सकत महाउत आवजब।
अंकुश देत चलाय निकसत बंधन तोरि तब॥
चौ०। तिमियहिमूढ़मनहिगजजानहु। गुरुहिमहावतरूपीमानहु॥
अंकुश सम ताकर उपदेशा। मारत मात्र कटत सबक्लेशा॥
बार बार अहार करता है। तबतिहि बन्धन सों टरताहै॥
चहत नारि जो कामी प्रानी। नाश निमित्त मूढ़ अज्ञानी॥
जिमि कदलीबनको गजराजा। लखि,कागजहस्तिनि;नहिलाजा॥
धाइ काम वश जबै तिहि गहई। छल बन्धनमें परिदुखलहई॥
तैसे परम दुःख को मूला। नारि संग उपजत बहुशूला॥
जिमिवनमध्यदाह जबआवति। सकलवस्तुतहँ केरिजरावति॥
दो०। तिमि यह नारीकोअनल, तासों प्रबललखाय;।
वासु परश तो तज, यह, सुमिरत देत जराय॥
छंद हरिगीती॥
जिहि सुखीह सब रमणीय जानतताहि रमणी क्यों कहैं,।

जबहोत नारि वियोग तब आपात् रमणी सो अहैं ॥
तिहि काल तासु वियोग में नर होत जैसे शव मरा ।
यह है रुधिर मासादि सकल विकार को पिंजरा भरा ॥
सो० । सो ह्वै है यक बार भस्म अवशि कालाग्नि महँ ।
पशु पक्षिन आहार अथवा कबहूँ होइहैं ॥
चौ० । जिहिलखिपुरुषप्रसन्ननवीना। होतप्रानअकाशमहँलीना ॥
ताते करत चाहना ताकी । अतिशय मूढ़मंद मति जाकी ॥
जिमिज्वालापर श्यामललेशा । तिमिकामिनि शिरऊपरकेशा ॥
जरत अग्नि के परशत जैसे । अबला छुये दोउ सम तैसे ॥
याको नाश को करन हारी । हैयह प्रबल अनलसम नारी ॥
ताकी चाह करत जे प्रानी । सो नर महा मूर्ख अज्ञानी ॥
सो निज नाश हेतु तिहि संगा । जिमिदीपक सों करत पतंगा ॥
तिमिनिजनाशनिमितसबकामी, । करतनारि इच्छा भवगामी ॥
दो० । भुजपदाग्र सब पत्र सम विषकी बल्ली नारि ।
अस्थि रूपगुच्छे सकल भुजा जासुकी डारि ॥

छंद हरिगीतिका ॥

नेत्रादि इन्द्री पुष्प जाको भ्रमर नर कामी भये ।
तहँ काम धीवर नारि रूपी जाल तनि बैठे नये ॥
तिहि वृक्षको फल दोउ कुचलखिजाइ बैठतहफँसे; ।
तबताहि लीनफँसाय नानाभांति कष्टन सों ग्रसे ॥
सो० । अस दुखदेने हारि काम विनशदुहुँ लोक महँ ।
जो चाहत असिनारि सो मतिमंद विमूढ़ नर ॥
चौ०।नारिसर्पिनीजबफुत्करहीं। तबतिहिनिकटकमलसबजरहीं॥
नारि रूप नागिनि करि मानहु । इच्छा सब फुत्कारा जानहु ॥
जब सो फुत्कारा बहिराई । तब बैराग कमल जरि जाई ॥
व्यालिनि के काटे विष चढ़ई । नारिन के चितवत सो बढ़ई ॥
छलकरिमीनहिंव्याधफँसावत; । तिमिनरनारि बन्धतरआवत ॥
अरु सनेह रूपी तागे सों । चला जात बाधा भागे सों ॥

पुनि तृष्णा रूपी छूरी सों। काम मारि डारत दूरी सों॥
ऐसा दुःख देन हारी की। मोहि नहीं इच्छा नारी की॥
दो०। काम पारधी राग रूपी इन्द्री की जाल।
सोविछाय कामीपुरुष मृगहिकरतबेहाल॥
छंद नाराच। तियानि के सनेह रूप डोरि माहँ है फँसो।
तहां वियोग में रहै बँधा अजान बैल सो॥
विलोकि कामिनीन को मुखारविन्द चंदसो।
रहैं प्रसन्न ह्वै विलोकि कजिनी अनंद सो॥
सो०। जैसे होत अनन्द चन्दमुखी चन्दहि निरखि।
सूर्यमुखी गन बन्दहोतलखत लज्जित शशिहिं॥
चौ०। तैसेयह कामिनिर अहई। जो कदापि सो भोगहु लहई॥
तबहु प्रसन्न होत अज्ञानी। परमुद लहतन सज्जनप्रानी॥
सर्पहि विलते नकुलनिकारहिं। जैसे कष्ट देइ तिहि मारहिं॥
तैसे कामिहि मारहिं नारी। आत्मानद सो दूरि निसारी॥
जब नर जात नारि के पासा। तब सो करहिं भस्मकरिनासा॥
जैसे तृण घृत पावक पाई। तृप्त न होति तुरन्त जराई॥
तैसे भस्म करति यह नारी। जो नर हैं कामी व्यभिचारी॥
अपर नारि यह रात्रिसमाना। तासुसनेह तिमिरकरि जाना॥
दो०। तामें कामरु कोह मद मोह उलूक पिशाच।
घूमतचहुँदिशि मुदितमन करतविविधविधिनाच,॥
छन्द हरिगीतिका॥
जो नारि रूपी खड्ग सों बचि गो युवा संग्राममें।
सो धन्य! है नर श्रेष्ठ जगमें करत ताहि प्रणाम मैं॥
नारीन को संयोग सब विधि दु खको कारण सही,।
सो कहत वारम्वार ताते करत मैं धारण नही॥
सो०। औषधि रुज अनुसार जबहिं देत तब कटत सो,।
दिये कुपथ्य विकार प्रलय होत अरु बढ़त दुख॥
चौ०। ताते सो उपायअबकीजै। रुज अनुसार औषधी दीजै॥

मोर दुःख अब सुनहु उदारा । जरा मृत्यु युग रोग अपारा ॥
तासु नाश कै करिय उपाई । अपर भोग नारी समुदाई ॥
देखन मात्र भोग सब जेते । सो यहि रुजहि अधिककैदेते ॥
जैसे अग्नि माहँ घृत डारत । अतिप्रवाहकरि ताकहँजारत ॥
जरा मृत्यु तिमितासु प्रसंगा । दिन २ बाढ़त होत अभंगा ॥
ताते ताके निवृत्ति हेतू । औषधि करहु धर्म गुन सेतू ॥
जौन होइ है ताकर नासा । तौ सबतजिकरि हौं बनवासा ॥

दो० । ताको इच्छा होति है रहत नारि जिन पास ।
जाके नारी है नहीं सो न करत कछु आस ॥

छन्द तोमर । जो तजातियको प्यार । सोजनु तजा संसार ॥
सोईसुखी जगमाहि । जो नारिदेखिलजाहि ॥
संसारबीज लखाहि । तेहि चाहमोकों नाहि ॥
सोमोहि औषध देहु । यहरुजसकलहरिलेहु ॥

सो० । जरा मरण दुइ रोग की औषधिदीजै हमें ।
जो पावत संयोग भोग केर दिन २ बढ़त ॥

जरा अवस्था निरूपण ॥

दो० । बाल अवस्था तो महा; जड़ अशक्त अत्यन्त ।
युवाअवस्था ग्रहणतिहि आवत करततुरंत ॥

सो० । तासु अनन्तर दूत वृद्धावस्था आवही ।
तबहिं जर्जरी भूत होत शरीर अपार यह ॥

चौ० । अपरबुद्धिबलहोवैछीना । बहुरि मृत्युको पावत दीना ॥
यहि प्रकार वृथजीवत जोई । कछुक अर्थ की सिद्धि न होई ॥
जैसे सरिता तट कर तरुवर । होत जर्जरी जल प्रवाह कर ॥
तैसे वृद्धावस्था माहीं । वपु जर्जरी भूत ह्वै जाहीं ॥
जिमि वायु सों पत्र उड़ि जाई । तिमि वृद्धा महँ वपुप नशाई ॥
अरु जेते कछु रोग लखाई । सब वृद्धावस्था महँ आई ॥

प्रकट होत तुरन्त सब वीरा। अरु पुनि कृशह्वैजात शरीरा॥
अपर नारि पुत्रादिक जेते। सब लखि वृद्धत्यागकरि देते॥
दो०। जैसे पाके फलहिंलखि वृक्ष त्याग करिदेत।
तैसे वृद्धहि त्यागहीं सकल कुटुम्ब अचेत॥
सो०। हँसत देखि तिहिगात जिमि बावरो लखातजब;।
सब हँसि बोलत बात यासु बुद्धि जाती रही॥
चौ०।परतकमलपर जिमिहिमआई;। सो जर्जरीभूत ह्वै जाई॥
तैसे जरा अवस्था आवत। नर जर्जरी भाव को पावत॥
अरु शरीर कूबर ह्वै जाई। केशश्वेत;पुनि मंद लखाई॥
क्षीण शक्ति सब होवै सोई। जिमि चिरकाल केरतरुकोई॥
देखत दीर्घ किन्तु घुन तामें। तैसे शक्ति न रहु कछु यामें॥
औरहु क्षीण सकल कृति होई। रहै अशक्ति मात्र-यक जोई॥
जैसे बड़ो वृक्ष पै आोई। रहत उलूकपिशाच लुकाई॥
तैसे क्रोध शक्ति रहु तामें। और शक्ति कछु रहतनयामें॥
जरा अवस्था दुःख निधाना। तिहिखलकेआवतपरिमाना॥
सकलजुरत तिहिमाहँमलीना। तासों होत जीव अतिदीना॥
युवा माहँ मनमथ-बल जोई। वृद्धा माहँ क्षीण सो होई॥
इन्द्रिय की आशक्ति घटत जब। होत चपलताको अभावतब॥
दो०। जिमि पितु के निर्धन भये होत पुत्रअतिदीन।
तिमिशरीर निर्बल हुयेभो इन्द्रियबलहीन॥
छंद चंपकमाला॥
एकै तृष्णाही बाढ़ि जाती। आवै ज्योहीं वृद्धहि राती॥
खासी रूपी बोलत इयारा। आधि व्याधी रूपिय न्यारा॥
घूघू लेवें आय निवासा। ऐसे जीने की कछु आसा॥
वृद्धावस्था नीच सदाहीं। वाकी इच्छा मोकहँ नाहीं॥
सो०। तिहि आवत यहदेह झुकिकूबरह्वैजात कस॥
पाके फलके नेह सों जैसे झुकि जात तरु॥
चौ०।तिमिवृद्धावस्थाजबआई। सब शरीर कूबर ह्वै जाई॥

युवा अवस्था में सुत नारी। टहल करत जैसे अधिकारी॥
चाह करत अति हितसम जेही। परम शत्रु सम त्यागहिंतेही॥
वृद्ध वृषभ को देखि अकामी। जैसे त्यागत ताकर स्वामी॥
तिमि त्यागत यहि एकहि वारा। ताको सब कुटुम्ब परिवारा॥
देखत हँसहिं करहिं अपमाना। ताको देखहिं ऊँट समाना॥
ऐसी नीच जरावस्था की। मोकहँ नहिंइच्छा कछुताकी॥
अब कर्तव्य कहौ कछु जोई। करौं विचारि नाथहौं सोई॥

दो०। यहिशरीर की देखियत तीन अवस्था जोय।
तामें सुखदाई नहीं कोय अवस्था होय॥

छन्द कुसुम विचित्रा॥

जड़ यह बालापन अतिभारी। तरुणअवस्थाअधिक विकारी॥
अपर जरा तौ सब दुख मूरी। तरुण ग्रसै बालहिं भरि पूरी॥
युवहिं जरा ग्रासक समलेही। बहुरि जरैं कालहु करि देही॥
यह सब अल्पै दिन कहँ होहीं। सुखइन आश्रयकहँ कछुमोहीं॥

सो०। ताते मोकहँ सोय कहहु उपाय विचार करि।
मुक्तिजासु बलहोय मोरि यासु सब दुःखते॥

चौ०। जराअवस्थाआवतिजबहीं। सोइमृत्युनगचावतितबहीं॥
जैसे संध्या जब नियराती। तबआवति ततकालहि राती॥
संध्या आवे दिन की जोई। इच्छा करत मूर्ख नर सोई॥
तैसे भये जरा कर बासा। मूर्ख करत जीवन की आसा॥
जैसे चितवत बैठि बिलाई। आवत मूषक पकरहुँ धाई॥
तैसे मृत्यु चितौनि लगावै। कहति जरावस्था जब आवै॥
तबमैं ताहि ग्रहण करि लेहूँ। काहू भांति जान नहिं देहूँ॥
जरा अवस्था को सब कहई। मानहु सखी काल की अहई॥

दो०। रोग रूप मस लेइ के आवत तब सो पास।
नोचि नोचि सुखवावही बदनरूप सब मास॥

छंद मत्तमयूर।

स्वामी याको आय करै भोजन ताको।

तौको स्वामी कालशरीरै परजाको ॥
आगे ताके ठाढ़िरहें जे पटरानी।
आशकाई एक सुनी दूजी लानी ॥
पीराहोवै अंग अहैभी यह नारी।
तीजी खांसीहोय दुहूंसो अतिभारी ॥
सो श्वासा को शीघ्रचलावै निरमूलै।
श्वेतौ श्वेतौ केश मनौ चौराईफूलै ॥
सो०। प्रथमहिं करत प्रवेश काल सहेली आयआसि।
बनवत वपुहिं हमेश जरा रूप कह ढीलसों ॥
चौ०तव तिहिस्वामी कालवलेशा।आय करत अतिशीघ्रप्रवेशा ॥
जो है परम अवस्था नीचू। सोहै जरा आगमन मीचू ॥
जरा अवस्था आवति जवही। करत शरीर जर्जरी तवही ॥
कांपनलागै सोइ शरीरा। निर्वल होति रहति जो बीरा ॥
अपर शरीर होत अति क्रूरा। तृष्णा माया सों भरिपूरा ॥
जैसे तुहिन कमल पर परई। ह्वै जर्जरी भूत सो जरई ॥
तिमि जर्जरी भूत करिडारै। वहुरि काल प्रेरक तिहिमारै ॥
जैसे वन महँ वाघिनि आई। शब्द करै मृग मारै धाई ॥
दो०। खाँसीरुपी सिहनी तिमि शरीर महँ आय।
शब्द करै मृग रूप वल को सो देत नशाय ॥
छंदनिशिपालिका। आइजवहीजरठमृत्युमनमोदिनी।
चन्द लखि ज्यों खिलत पुष्प सुकुमोदिनी ॥
मृत्यु तिमि पाय अहलाद मन भायिनी।
दृष्ट अतिशै जरठ जीव दुख दायिनी ॥
वीर जगमें वहुत भे सरवदा वली।
तासु कहँ दीन करिकै जरहिं ने छली ॥
यद्यपि सुशूर रन में रिपुहिं जीति गो।
वृद्धपन आइ वश काल परि वीति गो ॥
सो०। करि डारे हैं चूर वडे वडे पर्वतन कहँ।

भयेदीनसोउशूर वश ह्वैजरा पिशाचीनिहि ॥

चौ० । वृद्धा रूप राक्षसी जोई । देत दुःख वहुविधि सब कोई ॥
सब कहँ कीन दीन यह नारी । अहै सर्व जग जीतन हारी ॥
देत जरा नाना विधि पीरा । लागत अनल समान शरीरा ॥
जैसे अग्नि वृक्ष महँ लागत । लगत प्रमान धूम बहुजागत ॥
तिमि शरीर रूपी तरु माहीं । अग्नि जरा रूपी लगि जाहीं ॥
तृष्णा रूप धूम तिहि केरा । निसरत बारहि बार घनेरा ॥
डिवी मध्य रत्नादिक जैसे । भरे रहत नाना विधि तैसे ॥
डिव्वा जरा रूप अविवेका । में दुख रूपी रतन अनेका ॥

दो० । हैं शरीर रूपी विटप जरा रूप ऋतु कन्त ।
दुःख रूप रस पाइके पूरण होत तुरन्त ॥

छंदमाया ॥

हाथीहोवै दीनवँधी संकल जैसे;वृद्धारूपी सांकलसो पूरुषतैसे॥
बांधाहोवैदीनशरीरौशिथिलाई;ह्वैजावैसोक्षीणवलौकीअधिकाई॥
इन्द्रीमेंताकेवलथोरौ रहिजावै । सारीदेहोजर्जरि भावैकहँपावै ॥
तृष्णाघाटैनावरु वाढीनितआती । जैसेमूंदैसुरजवंशीलखिराती ॥

सो० । तव पिशाचिनी आय विचरत वहँ अति मुदितमन ।
जरारूप निशि पाय मुँदत तामरस शक्तिसम ॥

चौ० । तृष्णारूपपिशाचिनिसोई।सोनिशिविलखिमुदितअतिहोई
जैसे तरु गंगा तट केरा । सो जल गंग वेगको प्रेरा ॥
जिहि जर्जरी भूत करि दलई । आयुरूप प्रवाह तिमि चलई ॥
तासु वेग सो अधम शरीरा । होत जर्जरी भूत अधीरा ॥
जिमि टुकड़ामिष जवैलखाई । नभते आय चील लै जाई ॥
तिमि वृद्धापन माहिंकराला । लेत वदन रुप आमिष काला ॥
यह तौ बना काल को ग्रासा । जिमि गज खाइकरै तरुनासा ॥
तैसे देखत वृद्ध शरीरा । काल खात वहुविधि दै पीरा ॥

सो० । ऐसो दुखको मूल जरा अवस्था अति प्रवल ।
तासु कार्य जनि भूल सीताराम अजान नर ॥ ८ ॥

कालवृत्तान्त निरूपण॥

दो०। हे मुनीश ! संसार रूपी अह गर्त्त समान।
तामहँ अज्ञानी गिरा गर्त्त अल्प सो जान॥
अरु अज्ञानी तो बड़ो होय गयो नर जोय।
बढ़ु संकल्प विकल्पकी अधिक्यतासे सोय॥
सो०। ज्ञानवान नर जोय सो मिथ्या जानत जगत।
फँसत न क्योहूं सोय पुनि जगरूपी जालमहँ॥
अरु जो नर अज्ञान सत्य जानि संसार कहँ।
फँसारहत अनुमान आस्था रूपी जाल महँ॥
चौ०। अरुजगके भोगनकीजोई। करत वाञ्छा सो अस होई॥
जिमि प्रतिबिंब आरसी माहीं। लखिबालकतिहिपकरनजाहीं॥
तिमिलखि सत्यजगत अज्ञानी। तिहि पदार्थ की वांछा ठानी॥
मोहि होय यह अरु यह नाहीं। नाशात्मक सबसुख यहआहीं॥
अभिप्राय, यह जो सब आवत। अपरजात थिरता नहिंपावत॥
याको काल ग्रास करि जाई। जिमिदाड़िम फल मूषकखाई॥
तैसे सब पदार्थ कहँ आई। काल अहार करत मन लाई॥
हे मुनीश ! पदार्थ यह जेते। काल ग्रसित जानौ सब तेते॥
दो०॥ बड़े बड़े बलवान जिमि अहै सुमेरु गँभीर।
पुरुषनमें करिलीन यह ग्रासकाल बलबीर॥
जैसे भक्षण जानिकै नकुल पन्नगैं खात।
तैसे बड़े बलीनकरं काल ग्रास करि जात॥
सो०। अरु जग रूपी एक गूलरि को फल तासु महँ।
मज्जामिष जु अनेक सो ब्रह्मादिक देवसब॥
तिहि फलको तरु जोय ताको जो बनहैगहन।
ब्रह्म रूप अह सोय तामें जेते कछुक बनें॥
चौ०। अहैतासुसो सकलअहारा। काल खात सबको यकबारा॥
काल बड़ो बलिष्ठ यह होई। देखन मैं आवत कछु जोई॥

कौन ग्रास सब करसो घेरी । क्या कहनी है ? औरन केरी ॥
अरु मेरो जु बड़ो ब्रह्मादी । ताको ग्रास करत यह वादी ॥
मृगहिंग्रासजिमि हरिकरिलेही; । अरु नहिं कोऊ जानत तेही ॥
पल छन घरी पहर दिनमासा । वर्षादिक सबकाल बिलासा ॥
प्रकट काल की मूरति नाहीं । अस अप्रकट रूपी सो आही ॥
काहूकी स्थिति होन न देही । बेली एक पसारयो येही ॥

दो० । तासु त्वचाहै यामिनी अरु दिन ताको फूल ।
आय जीवरूपी भ्रमर तापर बैठत भूल ॥
हेमुनीश? जगरूप यह गूलर पुष्प अनूप ।
तामें कीट पतंग सब रहत अमित जिवरूप ॥

सो० । तिहि फूलहिं करिजात भक्षण तैसे कालयह ।
जैसे शुकगन खात तरुपर पाक अनारकहँ ॥
कालखात सबगात तिमि जगरूपी विटपगन ।
जीवरूप तिहि पात कालरूप गजखात तिहि॥

चौ०।अरुशुभअशुभरूपमहिपाही । कालरूप हरि छेदतखाही ॥
याहीकाल अहै अति क्रूरा । दया न करत काहुपरशूरा ॥
सो सबकर भोजन करि जाई । जैसे मृग राजीवहिं खाई ॥
तासों कोउ रहत बचि नाहीं । एक कमल परंतु बचिजाहीं ॥
सो कसहै जो बचु बल जाके । अंकुर शान्ति मयत्री ताके ॥
अपर चेतनामात्र प्रकाशा । यहि कारण ते सो नहिंनाशा॥
सो खल कालरूप मृग ताही । पहुंचि सकत ताके ढिगनाहीं॥
यामें प्राप्ति भयो जब काला । तबहीं लीन होत तत्काला ॥
जेतो कछु प्रपञ्च जग माहीं । सोहै सकल कालमुखमाहीं॥
ब्रह्मा विष्णु रुद्र धन नाथा । आदिकसब मूरतिनिजहाथा ॥
धरी कालकी हैं सब तेई । अन्तर्द्धान तिनहु करि देई ॥
उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय जोई । सो यह सकल कालते होई ॥

दो० । महा कालहूको करत सोइ ग्रास बहुबार ।
अपर अनेकहु वार पुनि सोकरिहै परचार ॥

अरु भोजनकेकरततिहि तृप्तिकदापिनहोय।
और कदाचित् होनहारीहु अहै नहिं सोय॥
सो०। तृप्तिहोत जिमिनाहि लै घृतकी आहुति अनल।
जगअरु ब्रह्माण्डाहि भोजन करिसो तृप्ति नहिं॥
अरु अस काल स्वभाव जो दरिद्र करु इन्द्रकहँ।
पुनि दरिद्रको दाव पाय शक्र करि देत यह॥
चौ०।अरु सोकरत सुमेरहिं राई। राइहि देत सुमेरु वनाई॥
नीच विभववाले को करई। वड़ो ऊँच नीचहिकरि धरई॥
करत बुन्दको जलधि प्रमाना। करहि सिन्धुकोबुन्दसमाना॥
ऐसनि शक्ति काल में रहई। मत्स्य जीवरूपी जो अहई॥
शुभ अरु अशुभ कर्मरूपीसों। छेदत रहत ताहि छूरीसों॥
वहुरि काल यह कैसो होई। जोहै चक्र कूपको सोई॥
जीवरूप हाँड़ी को साधी। शुभ शुभ कर्म रूपरजु वांधी॥
लिये साथ घूमत चहुं ओरी। अरु कैसो यह काल वहोरी॥
दो०।जीवरूपहै बिटप निशि वासर रूप कुल्हार।
ताको छेदत रहत यह बारम्बार प्रचार॥
हे मुनीश! जेतौ कछुक जगतविलास लखात।
सोसवकहँयहक्षणहिमहँ कालग्रहणकरिजात॥
सो०। अरु अहु डिब्बी काल जीव रूप सव रत्न कर।
लेत उदर महँ डाल खेलकरत तव सो वहुत॥
शशिरवि रूपी गेंद कवहुं उछारत ऊर्ध्वअरु।
कवहुँ धरनि के पेंद पर डारत नीचे करत॥
चौ०। अरुजो हैं महा पुरुषकोई। सो उत्पत्ति प्रलय महँ जोई॥
अहैं पदार्थ तिनहुँ में नेहा। करत न काऊ संग बिदेहा॥
समरथ तिहि नाश के न काला॥जिमिशिवकण्ठधरतशिरमाला॥
तैसे यहो जीव की माला। प्रमुदित ग्रीव माहँ निजडाला॥
वड़े वड़े वलिष्ठ नर जेई। तिनको काल ग्रहण करिलेई॥
जैसे जलधि वड़ो अप्रमाना। करत ताहि वडवानल पाना॥

भोजपत्र जिमि पवन उड़ावै। तैसे सब बल काल बतावै॥
काहू की समरथ नाहिं अहई। जो ताके आगे स्थित रहई॥
दो०। शान्ति गुण प्राधान्य जे अहैं सुरादि सुजान।
रजो गुण प्राधान्य पुनि हैं जो नृप बलवान॥
तमो गुण प्राधान्य हैं दैत्य राक्षसहु जोय।
कोऊ नाहिं समर्थ जो तिहि आगे स्थित होय॥
छंदमरहठा। जैसे जल अन्न भरी टोकरि कों दिय अग्नि पै चढ़ाय;
सो अन्न लगै उछरै औ करछी करि ऊर्ध्व जेर जाय; ॥
तैसे जियै रूप अहै दानहु औ जगरूप टोकनीहु;।
तामें सु चढ़े परि रागादिक द्वेष स्वरूप अग्निहीहु॥
है तामहँ कर्म स्वरूपी कड़छी जिहि सो सबै हितात।
जावै कबहूँ उपराही अरु सो कबहूँ तरैहि जात॥
काहू कहँ काल उपाधी यह नाथिर होनहू बदेत।
दाया नाहिं राखत काहू पर सो निरदै रहै अचेत॥
सो०। याको भय अति मोहिं रहत निरंतर रैन दिन।
तातें बिनवों तोहिं कहौ यतन सो मोहिं अब॥
मैं निरभय है जाहुं जाके बल यहि काल सन।
सीताराम न काहु की इच्छा करु समुझियहि॥

काल बिलास बर्णन॥

दो०। हे मुनीश! यह कालतौ कठिन बलिष्ठ अपार।
जैसे राजकुमार जब खेलन जात शिकार॥
तब कानन पशु पक्षि कहँ प्राप्ति होत अतिखेद।
तैसे यह संसार रूपी आरण्य अभेद॥
सो०। तिहि कान्तार हि भार प्राणि मात्र पशु पक्षि सब।
आवत राज कुमार कालरूप मृगया निमित॥

तब भयभीत अकूत होत अहैं सब जीव तहँ ।
होते जर्जरी भूत मारत तिनको आय पुनि ॥
चौ०। अहैमहाभैरव यह काला। सबहि ग्रास करिलेत कराला॥
प्रलय काल सबको संहारै। सबकी सोय प्रलय करिडारै॥
ताकी शक्ति चण्डिका जोई। वाको उदर बड़ो अतिहोई॥
करति कालिका सबको ग्रासा। पीछे करति सुनृत्य विलासा॥
जैसे मृग बनके सब धरही। सिंह सिंहिनी भोजन करही॥
अपर नृत्य सो करत सदाही। तैसे जगत रूप बन माही॥
जीव रूप जो हरिण समूहा। काल कालिका तिहिकरि हूहा॥
बारबार धरि सबको खावैं। प्रमुदित मन ह्वै नाचैं गावैं॥
दो०। बहुरि ताहिते होत है जग कर प्रादुर्भाव ।
विविध प्रकार पदार्थकर सोई करतबनाव॥
भूमि बाटिका बावरी आदि पदार्थ अनेक।
बे प्रमान उत्पत्ति यह होत इनाहि ते एक॥
सो०। अरु इनहूँ कर नाश एक समय करिदेत यह।
सुन्दर जलधि प्रकाश पावकदेत लगाय पुनि॥
सुन्दर जलज बनाय तापर बरषा करत हिमि।
नाशकरत पुनिआय विविधप्रकार पदार्थरचि॥
चौ०। बडेबडेजहँपरविधिनाना। बसत अनेक एक असथाना॥
ताको सो उजाड़ करि डारै। नेक कछू नहि मनहि विचारै॥
नगर उजाड़ मध्य पुनि करई। ताको बहुरि नाश करि धरई॥
सब कहँ सोइ ग्रास करिलेई। सुस्थिर रहन न काहुहि देई॥
जैसें जबहि बाग के अन्दर। आय जाय कोऊ यक बन्दर॥
आवत मात्र नशावत ताही। देत विटप को ठहरन नाही॥
काल रूप मर्कट यह तैसे। जब काऊ पदार्थ पर बैसे॥
सुस्थिर रहन देत तिहि नाही। देखि लेहु विचारि मन माही॥
दो०। हे मुनीश! याहि भांतिसों सब पदार्थ बशकाल।
होत जर्जरी भूत हैं अधिक अधिक बेहाल॥

ताकी आश्रय करत नहिं कवहूँ काहू भांति ।
मो कहँ तो धरनी सकल नाश रूप दरशाति ॥
सो० । ताते अब नहिं मोहिं इच्छा काहु पदार्थ की ।
यहपदार्थ सब होहिं भवबन्धनकी फाँससम ॥
याते अब ततकाल सीताराम विचार करि ।
त्यागहु सब जंजाल अनुरागहु भगवान पद ॥

कालजुगुप्सा वर्णन ॥

दो० । हे मुनीश ! यहकाल जो, महा पराक्रम ताहि ।
सन्मुख ताके तेजके कोऊ समरथ नाहि ॥
बड़े ऊँच को क्षणहिंमों सो करि डारत नीच ।
अपर नीचको करतपुनि ऊँच क्षणहिके बीच ॥
सो० । तासु निवारनकोय काहूविधि करिसकत नहिं ।
ताके भय बश होय परे नित्य काँपत सकल ॥
भैरव महा अनूप ग्रास करत सब विश्वकर ।
शक्ति चण्डिका रूप तासु अहै बलवान अति ॥
चौ० । अरुपुनि सरितारूपसोई । उल्लंघत करि सकत न कोई ॥
महा काल रूपी है काली । महा भयानकरूप निराली ॥
काल रूप यह रुद्र पालिका । पुनिहै अभिन्न रूपकालिका ॥
सो सब को करि पान गुमानी । पीछे नाचत दोउन प्रानी ॥
कैसे काल कालिका, जोई । बड़ो अकार शीश नभ होई ॥
अरु पाताल चरण है जाको । दशों दिशाहू भुज सम्र वाको ॥
कंकन सप्त समुद्र अनूपा । अरु सम्पूरण पृथ्वी रूपा ॥
ताके हाथ मध्य बहु पाता । भोजन योग्य जीव सबताता ॥
हिम आलय सुमेरु गिरि दोई । तिहि कानके रत्न बड़ सोई ॥
सूर्य्य चन्द्रमा लोचन जाके । माथ बिन्दु तारागण ताके ॥

जाके करमें रहत त्रिशूला। मूशल आदि शस्त्र दुखमूला॥
अरु लै तन्द्रा रूपी फाँसी। तासों डारत जीवहि नासी॥

दो०। काल कालिका देविदुइ ऐसे हैं जगमाहि।
सवजीवन कर कालिका आयग्रासकरि जाहि॥
अपर सुनहु जो है महा भैरव रुद्रकराल।
वाके आगे जाइ तव नृत्य करत सो वाल॥

सो०। अपर करति वहुतेर; अट्ट! अट्ट!! अस शब्दपुनि।
भोजन जीवन केर करि गर में धारण करत॥
तालु रुण्ड की माल सो भैरव के सामने।
करत नृत्य वहुवाल सो भैरव पुनि अहै कस॥

चौ०। जिहिवलसन्मुखरहिवेकाही, । काहू माहँशक्ति कछुनाही॥
क्षण उजार वस्ती करि डारै। वस्ती को क्षण माहि उजारै॥
ताते कहत देव तिहि नामा। कहत अपर कृतान्तदुख धामा॥
उपजहिं वडे पदारथ जोई। अरु पुनिताको नाशहु होई॥
सुस्थिर रहन देति नहि वामा। ताते भा कृतान्त तिहि नामा॥
अरु अनित्य रूपी सो वादी। अपर धरा जो याको आदी॥
कर्म रूप अरु कर्त्ता सोई। काहेते परिणामहुँ जोई॥
अहै अनित्य रूप जिहि धर्मा। ताते परा नाम तिहि कर्मा॥
सवहि नाश सो कैसें करई। धनुष अभाव रूप कर धरई॥
राग दोष रूपी पुनि तीरा। तामें खैंचि चलावत वीरा॥
तासों करत जर्जरी भूता। पुनि करि देत नाश यमदूता॥
अरु उत्पत्ति नाश मे ताको। करन परत न यतन कछुवाको॥

दो०। याको तो यह खेल सम जिमि शिशु माटी लेत।
लेत वनाय उठाय पुनि नाश करत दिन रैन॥
तैसेही यहि कालको उपजावन अरु पत्न।
करन माहिं कछु परत नाहिं करन कदाचित् यत्न॥

सो०। हे मुनीश! यह काल रूप अहै धीवर वहुरि।
क्रियारूपसो जाल दियपसारि सवठौरमहँ॥

आयआय तिहिमाहिं जीवरूप नाना बिहँग ।
कबहुं शांतिको नाहिं प्राप्तिहोत तामहँ फँसे ॥
दो० । हे मुनीश ! यहतौ सकल नाशहि रूप पदार्थ ॥
। यामें आश्रय काहुको सुखी होनके स्वार्थ ॥
। स्थावर जंगम जगत सब बीच कालके गाल ।
नाश रूप जानत कहौ निर्भय पदकी हाल ॥

कालविलासवर्णन ।

दो० । हेमुनीश! जेतो कछुक यह पदार्थ दरशात ।
नाशरूपहीसो सकल नहिंयामे कुशलात ॥
ताते इच्छा कौनकी अरु आश्रय किहिकेर ।
करबी इच्छा यासुकी मूरखताकी टेर ॥
सो० । अरु अज्ञानी चित्त जेती कछु चेष्टा करत ।
सो सब दुःखनिमित्तसो कल्पनाअनेकविधि ॥
करि; जीवनमहँअर्थ केरिसिद्धिनाहिंन कछुक ।
बालावस्था व्यर्थ माहिं रहतवहु मूढ़ता ॥
चौ० । तामेंरहतनकछुकविचारा । आवत युवाजबहिंबिकरारा ॥
सेव विषय करि मूरखताई । मान मोह आदिक बिकराई ॥
सो मोहेई जावै सोई । ताहू में बिचार नहिं होई ॥
सुस्थिरहू नहिं होत कमीनी । रहिकै पुनः दीन को दीना ॥
ताहि विषय की तृष्णा आवत । कबहूं नहीं शान्तिको पावत ॥
हे मुनीश ! आयुर्बल जोई । दुष्ट महा चंचल अति सोई ॥
अरुमृत्यु तोनिकट चलिआवा; । होय न वाहि अन्यथा भावा ॥
हे मुनीश ! जेते कछु भोगा । सो हैं सकल दुःख अरु रोगा ॥
अरु पुनि जाहिसम्पदा जाना । हैं सो सब आपदा समाना ॥
अपर सत्य जाको सब कहहीं । सब असत्य रूपी सो अहहीं ॥

अरु जिहि तिय पुत्रादिकमाहीं । जानत अहै मित्र जग माहीं ॥
जानत जो ताको दुख हर्त्ता । सो सबही बंधन को कर्त्ता ॥
इन्द्रिय अहैं महा आराती । मृगतृष्णा कौ जलवत् भाती ॥
अरु जुअहै यह सुभग शरीरा । सो विकार रूपी मति धीरा ॥
और महा चञ्चल मन बाँका । अहै अशान्त रूप सुसदाँका ॥
अहंकार अति नीच मलीना । प्राप्ति दीनता को सो कीना ॥

दो० । याते कछुक पदार्थ जो याको सुखदलखात ।
देनहारहै सो सकल दुख करिकै उत्पात ॥
तासों याको कदाचित शांति होतहै नाहिं ।
ताते मोकहँ वासुकी इच्छा नहि मनमाहिं ॥

सो० । यद्यपि देखनमात्र यह सुन्दर भासत सकल;।
तौहू दुखकर पात्र यामें सुख कछुहू नहीं ॥
सकल पदार्थ अभंग सुस्थिर रहिबेको नहीं ।
जैसे त्रिविध तरग देखि परतनित उदधि महँ ॥

चौ० । ताहिकरतबडवानलनाशा । तिमिनिशिजायपदार्थप्रकाशा ॥
हौं आपनि आयुष्य विलासा । माहि करों कैसे तिहि आसा ॥
बडे समुद्र दृष्टि जो आवत । सुमेरादि पदार्थ बड यावत ॥
सब यकदिवस नाशको पावत । तब हम सबकी काहकहावत? ॥
बडे बडे राक्षस बलवाना । है जीत्यो जो सकल जहाना ॥
सोउ नाश पायो यक बेरी । तब क्या वार्त्ता ? हमसबकेरी ॥
अरु देवता सिद्ध गंधर्वा । भये नाश पावत सो सर्वा ॥
रही न तिनकी नाम निशानी । तब हम सबकी काहकहानी? ॥
पृथ्वी जल अरु अनल कराला । दाहक शक्ति जो धारन वाला ॥
अरु पुनि नाथ प्रभंजन जोई । है हैं नाश वीर्य युत सोई ॥
रहे न कछु सत्यता सारता । तो हम सबकी काह बारता ? ॥
यमहु कुबेर वरुण सुर नायक । बडे तेज धारी सब लायक ॥
सोउ पाइहैं यक दिन नासा । तबहमसबको क्याइतिहासा? ॥
अरु जो तारा मण्डल सारा । देखि परत गिरिहै यक बारा ॥

सूख पात जिमि तरुवर माहीं । लगत समीर वेगि गिरिजाहीं ॥
यह उडगणतिमिगिरुमुनि नाहा। तवहमसवकी वार्त्ता काहा ?॥

दो० । हे मुनीश ! ध्रुव देखते जो सुस्थिर निज धाम;।
सो अस्थिर है जायगो एकदिवस तिहि ठाम ॥
अरुशशिमण्डल अमीमय आवत दृष्टि अकाश।
रविअखण्ड मंडल अचल जो लखिपरत प्रकाश ॥

सो० । सो सव पाइहिनास ; क्या वार्ता ? हमसवनकी ।
अरु पुनि क्या इतिहास ? औरनहूको कहहिंहम ॥
पुनि यह ईश्वर जोय वड़े अधिष्ठाता जगत ।
तिहि अभावहू होय जैहै काहू समय महँ ॥

चौ० । परमेष्ठी चतुरानन जाई । तिहि अभावहू यकदिन होई ॥
हरि जाइहि हरिहू यक वारा । रुद्रमहा भैरव विकरारा ॥
यक दिन सोउ शून्य है जाई । क्या वार्त्ता हम सवकी भाई?॥
काल जो सवही भक्षण कारक । टूक टूक ह्वै नाशिहि वारक ॥
अरु जो नेत काल की नारी । स्वो अनेतको पाइहि भारी ॥
जो सव कर आधार अकाशा । सोऊ होय जायगो नाशा ॥
नाशत महा पुरुष ऐसे जव । कहा वारता ? हम सवकी तव ॥
अरु जोतो कछु जगपदार्थ कर । सिद्धिहोतसोनाशिहिमुनिवर ॥
कोऊ थिर रहिवे को नाहीं । काकी आस्था करिय सदाहीं ॥
अरु काको आश्रय मन माहीं । यहजगसवभ्रममात्र लखाहीं ॥
यामें आस्था अज्ञानी की । नहि हमारि सज्जनप्रानीकी ॥
किमि उत्पन्न जगतभ्रम भैऊ । अरु हौं येतिक जानत गैऊ ॥
जग महँ येते दुखी मलीना । सो सव अहंकारही कीना ॥
अहंकार जु परमरिपु याके । भटकत फिरत रहतवशताके ॥
जैसे वँधा जेवरी संगा । कवहुँ ऊर्ध्व को जात पतंगा ॥
पुनि कवहूँ नीचे को जाहीं । सुस्थिर कवहुँ रहतसो नाहीं ॥

दो० । अहंकार करि जीवहू ; तिमि ऊर्ध्वहि अवजात ।
सुस्थिर कवहूं होत नहि, करु विचार मनतात ॥

जिमि हयते आरूढ़ रथ; पर वैठे रविसीव।
भ्रमतफिरत नभमार्गमे; तिमिभ्रमतौ यहजीव,॥
सो०। थिर नहिंहोत अतीव; भूला भटकत फिरत नित।
हे मुनीश! यह जीव, परमारथ सतरूपते॥
अरु करिकै अज्ञान; आस्था करु संसार महँ।
भोगहु को सुखजान, तृष्णा तामें सो करत॥
चौ०।अरु जाको सुखरूपीजाना। सो सवताकहँ रोग समाना॥
अरु विष पूरित जैसे कीरा। जीवहि नाशक दायक पीरा॥
पुनि सो जिहिको जानतसाँचा। सो सव नश्वर रूप असाँचा॥
जिहि सुखदायक जानतआही। सवविधि असैकाल मुखमाही॥
हे मुनीश! विचार विनु नरई। आपन नाश आपही करई॥
काहेते, जो याको शोधा। कल्याण करण हारा वोधा॥
सत्य विचार वोध के शरना। जातहोय कल्याण विचरना॥
अरु जेते पदार्थ जगमाहीं। सुस्थिर अहैं सुकोउ नाहीं॥
इनकहँ जानत सत्य सचेतू। सो जानत निज दुखकर हेतू॥
हे मुनीश! जव तृष्णा आवै। तव अनन्द अरु धैर्य नशावै॥
जिमि मारुत करु घनकोनाशा। तिमितृष्णा कर परशुविनाशा॥
ताते; मोको सोइ उपाया। करि विचार कहिये मुनिराया॥
जासों सवजग भ्रमहि नशावों। अरु अविनाशी पदको पावों॥
यह भ्रमरूप जगत जो आही। आस्थाहौं देखतहौं नाही॥
ताते; चहौ करौ तस इच्छा। करिदेखहुजिहिभाँतिपरिच्छा॥
जो परन्तु दुख सुख कछुजाही। होनहार ह्वैहैं सो ताही॥
दो०। सो मिटिवे को कवहु नहि; भावै वैठहुजाय।
कहु पहार की कन्दरा, महँ अँग अग छुपाय॥
भावै वैठहुजाय तुम, कोट अगमहू माहि।
भवितव्यता सुहोइ है; मिथ्या ह्वैहै नाहिं॥
सो०। ताते; जो यहिहेतु, यत्न करतसो मूर्खता।
देखहु द्विज कुलकेतु, निज मनमाहि विचारकरि॥

ऐसो काल विलास; करत निरन्तर जगतमहँ।
तहँ जीवनकी आस, करिये "सीताराम" किमि॥

सर्वपदार्थाभाव॥

दो०। हे मुनीश! बहुभाँतिके, जो सुन्दर दरशात।
सो पदार्थ सब नाशही; रूप अहैं यह तात॥
सो०। आस्थाकरु सो मूढ़, यह तो मनकी कल्पना॥
करिके रचे अगूढ़; तिहिमें किहि आस्थाकरहुँ॥
चौ०।हे मुनीश! अज्ञानीकेरा। जीवन व्यर्थ; वचन फुरमेरा॥
काहेतें जीवत नर जोई। अर्थसिद्धि तिहि नहि कछुहोई॥
जबहि अवस्था होति कुमारा। मूढबुद्धि होइय तिहि बारा॥
तामें होत न कछुक विचारा। युवा जवहि आवति विकरारा॥
तबहिं काम क्रोधादि विकारा। सकल करत तनमहँ पैठारा॥
सो तिहि ढापै रहति सदाई। जालमध्यजिमि खगबँधिजाई॥
सकु आकाशमार्ग नहि देखी। तिमिजुकामक्रोधादि विशेखी॥
तासों आच्छादित विचारमग। देखि न सकत जोउताकेलग॥
ज्योंही जराअवस्था आवै। तन जर्जरी भूत ह्वै जावै॥
अपर होत सो नर अति दीना। पुनि तनको तजिदेत मलीना॥
जिमि नीरज ऊपर हिमपरई। ताहि मलिन्द त्यागतबकरई॥
तैसे जब तन रूप कमलको। होत जराकर परश विमलको॥
जीव भँवर तब त्यागत ताही। यहतन सुन्दर तबलगि आही॥
जबलौं वृद्धावस्था नाहीं। प्राप्तहोति दुखदायिनि वाही॥
प्रभा रहति जिमि हिमकर तबलौं, । राहुआवरण कीननजबलौं॥
कियो आवरण जबहीं राहू। तब न पकाशरहत मुनिनाहू॥
दो०। जराअवस्था आवतै युवाअवस्था केरि।
सुन्दरता जाती रहै जो शोभित बहुतेरि॥

छंद शखनारी। जरा आवतेही। कृशिह्होति देही ॥
बढ़ीजाति तृष्णा। तबै होत कृष्णा ॥
नदी बारसाती। बढी ज्योंहि जाती॥
जरा मध्य तैसे। रहै सोइ कैसे॥

सो०। अपर पदारथ जोय की तृष्णा जो करत नित।
दुखरूपी सबसोय आपहि दुखलहु तासुवश; ॥

चौ०। तृष्णारूप जलधि चहुँफेरा। तहां परा चित रूपी बेरा ॥
राग दोप रूपी तहँ मीना। ताके वश परि जीव प्रवीना ॥
कबहुँ ऊर्ध्व कबहूं अध जाही। सुस्थिर रहतकदाचित नाही ॥
कामरूप यक वृक्ष; विरागी!। तृष्णारूप लता तहँ लागी ॥
जीवरूप मधुकर जब धाई। ताके ऊपर बैठत आई॥
विषयरूप बेली सों तबही। मृतक होइ जाइय सो सबही॥
तृष्णारूप एक सरि भारी। राग दोप आदिक तहँ भारी॥
बड़े मत्स्य तामें रहि जावे। तहँ परि जीव दुःख बहुपावें॥
अरु जगकी इच्छा कर जोई। नाशरूप मूरख नर सोई॥
उत्तम गज तुरंग को वृन्दा। ऐसो जो नररूप समुन्दा ॥
ताको उतरि जाय जो कोई। हौं मानत सो शूर न होई॥
इन्द्रियरूप समुद्र अभंगा। मनोवृत्ति को उठत तरंगा ॥
अस सागर नर जो तरिजाई। ताहि शूरहौं मानत भाई ॥
जिहि परिणाम दुःख सहुप्रानी। ताको आरम्भत अज्ञानी ॥
अरु सुख जासु केर परिणामा। तिहि आरम्भ करतनहिं वामा॥
पुनि काम के अर्थ को धारण। करत धाइ मूरुख दुखकारण॥

दो०। कीन्हे अस आरम्भ के वपुप शांति पाछेहु।
सुखकी प्राप्ति न होति तिहि मन विचार करिलेहु ॥

छन्दमल्लिका। कामना करै निदान। ऐसही जरै अजान ॥
तृष्णही अनात्मकेरि। सो करै पदार्थ हेरि ॥
कौनिभांतिशांतिहोय। मूखपाव दुःखसोय ॥
हे मुनीश! है अथाह। तृष्णही नदीप्रवाह ॥

सो०। तिहि तीरहि वैराग खड़े वृक्ष संतोष दुहुँ।
नाशहोत तिहि लाग तृष्णानदी प्रवाह जब॥

चौ०। तृष्णा अतिशय चंचल जेई। इस्थिरकाहु रहन नहिं देई
मोहरूप यक बिटप सपल्ली। तिहिचहुंदिशितियरूपीबल्ली
सो विष पूरित तांपर आई। चितरूपी अलि बैठत धाई
परशतमात्र नाश तब लहई। मोर पुच्छ सम हीलत रहई
तिमि चंचल अज्ञानीको मन। सो मनुष्य पशुके समानतन।
जिमि पशु दिन काननमें जाई। करत अहार चलत फिरताई।
रजनी समय भवनको आई। पुनि बंधन खूंटनसों पाई।
तिमि मूरख नर बासर घरई। तजिनिजव्योहारहिमेंफिरई।
अरु यामिनी आय निजधामा। सुस्थिरहोयरहत तिहिठामा।
ताते परमारथ कछु नाहीं। सिद्धिहोत; जीवनवृथजाहीं।
बालापन में शून्यहि आही। अरु पुनि युवाअवस्था माहीं।
अति उन्मत्त काम करि होहीं। ताते तिहि इच्छानहिं मोहीं।
मदनरूप चित रूपी सोई। भांति उन्मत्त मतंगज जोई।
नारि रूप कन्दर महँ जाई। इस्थिर होत चित्त हरपाई।
अहै नाथ छर्न भंगुर सोऊ। पुनि वृद्धापन ताकों होऊ।
ताको कृश ह्वै जात शरीरा। मन करिलेहु विचारगंभीरा।

दो०। प्राप्त होत जिमि तुहिन ते कमल जर्जरी भाव।
तिमि वृद्धावश जर्जरी भावहिं यह तन पाव॥

छन्द कामिनी मोहना।

क्षीन ह्वैजात ताकी सबै अंगहीं। तृष्णहूबाढ़िजावै जरासंगहीं॥
जो महानै पशू पूर्व सोई अहै। फूलआकाशकोलेनकोसोचहै॥
औ चढ़ै लैन को पर्वतौ ऊपरै। कन्दरा माहिं या वृक्षहूपैगिरै॥
जीव तैसे चढ़ै आदमी रूप जो। है महा ऊंच सोपर्वतै भूपजो॥

सो०। वासकियो तहँ आय अरु अकाश के फूल जो।
जगत पदारथ भाय ताको यह इच्छा करत॥

चौ०। सोनीचेहीको गिरिजाहीं। राग-दोष कंटक तरु माहीं॥

जेते कछु पदार्थ जग केरे । नाशवान नभ सुमन सुमेरे ॥
याकी आस्था मूरखताई । यह तो शब्द मात्र महु आई ॥
ताते अर्थ सिद्धि कछु नाहीं । अरु जो ज्ञानवान नर आहीं ॥
विषयभोग इच्छा नहिं ताहीं । काहेते जो आत्मा काहीं ॥
यहि प्रकाश तिहि मिथ्या जाना । हे मुनीश ! भलज्ञानहि वाना ॥
दुर्विज्ञेय सुरूप जनवाही । हमहित भासत तृप्तहु मांही ॥
विरक्तात्मा दुर्लभ याही । ताहि भोगकी इच्छा नाहीं ॥
भासत नित स्थिति ब्रह्महि केरी । कछु न रहत सो लोक केहेरी ॥
काहेते जो यह पदार्थ सब । नाश रूप ताको चाहिय कब ॥
पर्वतको देखिय जिहि ओरा । पाहन चूर्ण लखात कठोरा ॥
भूमि मृत्तिका पूर्ण लखाहीं । वृक्ष काष्ठ करि पूर्ण दिखाहीं ॥
जलसों पूर्ण सागरहु लेहीं । अस्थि मांस पूरित तिहि देहीं ॥
पांच तत्त्वसों पूरण अतिरथ । अरु नाश रूप बिनु स्वारथ ॥
ऐसो रूप जानि तिहि ज्ञानी । काहूकी इच्छा नहिं ठानी ॥
नाश रूप यह जग सब ठावै । देखत देखत नाशहि पावै ॥

दो० । तामहँ आश्रम कौनकी करि सुख पाडे अनेक ।
सहस चौकरी युग बितै तब विधिकी दिन एक ॥

छंद चामर ।

तासु बार त्रय भये सबै प्रलय महीं । ब्रह्महू महीरि कालनाश होतहीं ॥
जो विरंचि हूँ गये न तासु संख्य होत । सो असंख्य निःशह है विराञ्चि गत सही ॥
काहि हमैं लारि खैन केरि धारता । मैंहु काहु भोग आस तान धारता ॥
जो चलाय रूप है सबैहि भोग हीं । सुस्थिरै कछू रहै कदापि सो नहीं ॥

सो० । नाशरूप सब आथ ताकी आस्था मूर्ख करु ।
हमकहँ ताके साथ कछुक प्रयोजन हो नहीं ॥

चौ० । जैसे मृगा मरुस्थल देखी । धावत हित जलपान विशेखी ॥
सो कबहूँ न शान्ति कहँ पावै । तैसे मूरख जीवहु ध्यावै ॥
सत्य जगत पदार्थ को मानी । तृष्णा करत मूढ़ अज्ञानी ॥
परन शांतिको पावत सो तब । काहेते असार रूपी सब ॥

नारि पुत्र कलत्रजु लखाहीं। जबलगि होत नष्ट तन नाहीं॥
तबलग भासत यह सब भाई। जबहिं शरीर नष्ट है जाई॥
तब यह भी नहिं जानै कोऊ। कहँगे कहँते भयो सोऊ॥
जैसे रहै तेल अरु बाती। सो दीपक प्रकाश सब राती॥
देखिपरत प्रकाश अति तबहीं। जात बुझाय वेहु रिसो जबहीं॥
तब नहिं जानि परत कहँ गयऊ। बत्ति रूप बांधव तिमि हयऊ॥
तेल स्नेह रूपी तिहि माहीं। तासों जोत नु भासत आहीं॥
सो प्रकाश ही जो यह नाशा। जब तन रूपी दीप प्रकाशा॥
जाय बुझाय जानि नहिं परई। जो कहँगयो न कछु मन भरई॥
हे मुनीश! यह बंधु मिलापा। जिमि तीरथ नहानिको आपा॥
संगहि संग चलौ सब जाई। यिक खन तरु छाया में आई॥
वैठें पुनि न्यारे है जावैं। तिमि बान्धव मिलाप बतलावैं॥
॥दो०॥ तिहि यात्रामें नेहकरु जिमि मूरुख नर जोय।
॥ तैसो याको नेह करब मूर्खता होय॥

॥ छंदघनाक्षरी ॥

अहंममताकीजेवरीकेसाथबांधेहुयेंघटीयंत्रताईंसबभ्रमतेफिराकरैं;
ताहिनाकदापिशांतिहोतदेखतेहिमात्रयहतोचैतन्यदृष्टिसामनेतिराकरैं;
हैंपरंतुबन्दरपशुनतेश्रेष्ठजिहिसंमातितनइन्द्रिसाथबांधेहीधिराकरैं;
अपरपुनिआगसउपायौताकीआस्थजोराखैंमहामूर्खताकीकूपमेंगिराकरैं;
कठिनहैआत्मपदप्राप्तिहोवबाकोजिमिपत्रनसोंवृक्षपातदृढ़ैउड़िजातेहैं;
पुनिताकोलागिबोहैकठिनअतिवृक्षसाथत्योंजोदेहादिसोंराखसनकोपातेहैं;
ताकोपुनिआत्मपदप्राप्तिहैं;हेमुनीश!कोविनविमुखआत्मपदतेजबआतेहैं;
तबैपुनिजगतकेभ्रमकोसदेखतहैंअरुजबआत्मपदओरचित्तलातेहैं;

दो० । तबहि विरसतिहि लागही यह बेड़ा संसार।
॥ अरु पदार्थ जो जगत महँ कौन रहिहि थिर सार॥
सो० ॥ नाश होत सब नाश जो पदार्थ कछु जगत महँ।
तातेहों किहि आश! अरु काको आश्रय करहुं॥
॥ नाशवंत सबकोय वह पदार्थ मोकहँ कहहु॥

॥ जाको नाश न होय सीता राम विचारि प्रभु ॥

जगद्विपर्यय वर्णनम् ॥

दो० हे मुनीश! जेतो कछुक, स्थावर, जंगम, भूप।
जगत दृष्टि महँ आवही, सो सब नाशहि रूप॥
सो० कछुहु काहुकी भूरि सुस्थिर रहिवे की नहीं।
होय गई भरि पूरि जल सों जो खाई रही॥
चौ० अरु पुनि जोवडे वडे लल करि। सागर देखत रहे पूर्ण भरि॥
खाई रूप भये सब सोई। सुन्दर बड़े बगीचे जोई॥
भये शून्य सो नभ की न्याई। अरु जु शून्य अस्थान सदाई॥
सो बनि सुन्दर वृक्ष लखाई। बस्ती जहां उजाड़ तहाई॥
रही उजार भूमि पुनि जहँवां। बस्ती सुभग भई अति तहँवां॥
अरु जहँ रहे अनेक गड़ेले। तहां भये पर्वत अरु ढेले॥
अपर शृंग गिरि रहे जहांही। मेदिनि भई समान तहांही॥
हे मुनीश! यहि भांति सदाही। लखत विपर्यय सब है जाही॥
नहिं थिर रहत कबहुँ लखि परई। पुनि हम काको आश्रय करई॥
किहि पावन की करहु उपाई। नाश रूप पदार्थ सब भाई॥
अरु जो बड़े बड़े सुप्रसन्ना। रहे विभव करिके सम्पन्ना॥
पुनि कर्तव्य करत जो भारी। वीर्यवान जिमि तेज तमारी॥
दो० मरण मात्र सोउ भये, हमसबकी क्या बात?।
नाश होत, नहिं रहत को, घटी पलहि अवदात॥
छन्द संयुक्ता॥
यहवड़ चंचलही अहै। यकरस कदापि न रहै॥
यकक्षणहिं सेंकछु होतहैं; दूसरे में कछु और हैं॥
यकक्षणहिं निधनसमानसो; दूसरे में धनवान सो।
यकक्षणहिं जिवित लखातसो; दूसरेमें मरिजातसो॥
सो० सो एकहि क्षण माहिं मुये उठत जीवत सकल।

॥होत कबहुं थिरु नाहिं यह पदार्थ संसारकर॥
चौ०। ज्ञानवान्‌मनुष्यजगजोई। याकी आस्था करहिं न कोई॥
जलधि प्रवाह एक क्षणमाहीं। भवति मरुस्थलकी है जाहीं॥
होत मरुस्थल नीर प्रवाहा। हे मुनीश! यह भव अवगाहा॥
तिहि आमेसि रहत थिरु नाही। जैसे बालक को चित माहीं॥
तैसे जगत पदारथ काऊ। थिरनाहिं रहत कोठि मुनिराऊ॥
जैसे नरहि स्वांग को धरई। कबहूं कस कबहूं कस करई॥
एक स्वांग में रहत न सोई। तैसे जगत पदारथ होई॥
अरु लक्ष्मिहु न एक रस रहई। कबहू पुरुष कबहुंतिय अहई॥
कबहुं नारि पुरुष बनि जाई। कबहुमनुष्य पशुहि तनुपाई॥
कबहुं होत पशु नर तनु छोरी। अस्थावर जंगमहु बहोरी॥
अरु जंगमें अस्थावर सोई। होति मनुष्य देवतहु भाई॥
पुनि देवता मनुज बनु भाई। यहि विधि घटीयंत्रकी न्याई॥
दो०। जग लक्ष्मी थिरु नहिं रहति कभूँ ऊर्ध्वको जाति।
कबहूँ अधं थिर रहतिमांहिं सदा रहति भटकाति॥
छन्द बरवा॥
जेते कछु पदारथ देत लखाय। अन्तकालसो सकलनष्टह्वैजाय॥
सोसबथिरनरहनकोसरिजुलखाहिं सोबडवानलमेंसबजाइसमाहिं
सो०। तिमि पदार्थ कछु जोय सो अभाव रूपी सकल।
बडवानल को सोय होहिं प्राप्ति तहँ जाइ सब॥
चौ०। अपर महाबलिष्ठ सबजोई। मरे लखत लीन भे सोई॥
पुनि जो अति सुन्दर अस्थाना। सोउ शून्यह्वै गयहु निदाना॥
भूमि मरुस्थल की पुनि जोऊ। पायो सुन्दरता शुचि सोऊ॥
अरु घट पट क्षण में बनि गेऊ। वरके शाप अनेकन भेऊ॥
अपर शाप को वरह्वै जाई। यहि प्रकार हे विप्रगुसाई!॥
यह जो जगत दृष्टि महँ आवै। सो कबहूं सम्पदा लहावै॥
कबहुं आपदा रूपी रहई। अपर महा चञ्चल सो अहई॥
हे मुनीश! यह है बिनु स्वारथ। अस्थिर रूप असर्व पदारथ॥

ताको विनु विचारके मांही। कैसे आश्रय करहुं दृढांई ॥
अरु काकी इच्छा हम करहीं। नाश रूपसो सब लखिपरहीं ॥
पुनि जो यह रवि के प्रकाश सों। देखि परतहै जेय नाश सों ॥
तिमिर रूप बनि जाइहि सोई। अमीपूर्ण लखात विधु जोई ॥
दो०॥ सीऊ विषसों पूर्ण अति काहु समय ह्वै जात।
अरु सुमेरु आदिक शिखर जो अनेक दरशात ॥
छन्द शशिवदना ॥
नाशिहि सबही। लोकहु तबही ॥ यह अभीता। नर सुरताता ॥
यक्ष सुरारी। आदिक भारी ॥ पैहैं नाशा। अवशि निराशा ॥
सो० ताते औरहु शेष कहनि अहे कया औरकी।
ब्रह्मा विष्णु महेश ईश्वर, देखत जगत के ॥
चौ० ॥ सोउ शून्य होइहिं जब ज्ञानी। तबहमैं सबकी काह कहानी ॥
जेतो कछु यह जगत लखाई। नारि पुत्र प्रिय बान्धव भाई ॥
अपर वीर्य्य ऐश्वर्य्य तेज कर। नाना विधि जो जीव देखपर ॥
सो सब नाश रूप अहु साई। बहुरि मोहिं अब देहु बताई ॥
किहि पदार्थ को आश्रय करहूं। अरु काकी इच्छा चितधरहूं ॥
हे मुनीश। पुरुष हैं जोई। अहैं दीर्घ दर्शी सब कोई ॥
तिहि सब विरस पदार्थ लखाही। इच्छा को पदार्थ की नाही ॥
काहेते जो सकल पदारथ। तिहि लखात नश्वर बेस्वारथ ॥
निज आयुर्को जानत सोई। यह दामिनि चमकात तहोई ॥
अहै जिमि तडितको चमकारा। तिमि शरीरको आयुप सारा ॥
जाहि होति तिन आयु प्रतीती। करु नी काहुकी चाह सप्रीती ॥
जिमि पालत जिहि दिन बलिदाना। तब वह चहुं न खान अरु पाना ॥
दो० ॥ सो कछु इच्छा करत नहिं भोगनहूकी तात।
तैसे जाको आपनो मरनो निकट लखात ॥
छंद मालती ॥
रहै नहिं ताहि। पदारथ काहि ॥ सुइच्छहि कोय। प्रदारथ जोय ॥
अहै सब नास। स्वरूप विलास ॥ हमों किहि केरि। करैं बहु तेरि ॥

सर्वान्तप्रतिपादन ॥

।लागी या संसार महँ अग्नि भोगकी रोग।
तासों सबही जरत भे जीव दीन वश भोग ॥
।० । ताग्ने बीच जिमि कंज होत चूर्णगज चरणकरि ।
होत दीन अरु रंज तिमि मनुष्य सबभोगभरि ॥
।नष्टहोतमारुतसोंधनजिमि। काम-क्रोधअरु दुराचारतिमि॥
शुभ गुणहु नष्ट ह्वैजाहीं। जिमि कटकहि पत्रफलमाहीं॥
होय जात बहु फेरे । विषय वासना रूपी तैसे ॥
टक जगत जीवको भाई॥ त्रिविधभांति दारुण दुखदाई॥
।रूप यह जग सब अहई। काहुपदार्थ न सुस्थिर रहई ॥
वासना रूप जल साई । इन्द्रिय रूपी गाठि तहाई ॥
में पुरुष काल विश भाई । फँसा पाइहै अति दुख भाई ॥
त्र वासना रूपी सोई । मुक्ता जीवहि रूप पिरोई ॥
दो०। अरु पुनि ताहि पिरोवको मनरूपी नटआय ।
चेतन रूपी आतमाके गर डारत धाय ॥

छन्द त्रिमोहा ॥

रना रूपके । ताग ज्योंहिट्टै । त्यों भ्रमौकूमनै । होतनिवृत्तहै ॥
भोगकी । चाह सोहिसही । कारनैबंधना । नासुहीमेंसना ॥
होति अति नहि शांति ताते मोको भोग की ।
इच्छा काहू भांति राजहु की नहिं धाम की ॥

सो० । आश्रयजासोंहोय सुखीहोहु यहिजगत महँ ।
जैसे पुरुष कोय आश्रय करहिं समुद्र कहँ ॥
चौ० । मीनकेरि,कहमूढ़औबोरा । तापर बैठि जान चहु पारा ।
होहुँ सुखी चहु पार उतरई । करि मूरखता बूडि सो मरई ॥
तिमिजोयाकोआश्रयकीन्हा । अरुनिजसुखनिमित्ततिहिचीन्हा ।
अवशि प्राप्त सुनाशको होई ॥ हे मुनीश ! पुनि पूरुप जोई ।
जग को नित्य बिचारत रहई । सो जग को रमणीय न कहई ।
अरु रमणीय जानकै नाना । बिधिके कर्म्म, करतअज्ञाना ।
पुनि नाना प्रकार के ताही । करि संकल्प भटकुजगमाही ।
कबहुँ उपर कबहूँ तर आवै । जिमि जबधूरि पवनबलपावै ॥
कबहूँ ऊर्ध्व कबहुँ अध जाही । रहत कबहुँ सो सुस्थिरनाही ॥
तैसे जीव भटकतहि फिरई । है सुस्थिर कबहूँनहिं थिरई ॥
जिहि पदार्थ की इच्छा कैऊ । काल ग्रासरूपी सब भैऊ ॥
जैसे बनमें कबहुँ आगी । जारति इंधनादि को लागी ॥
जैसे कछुक पदारथ जेते । सो इंधन रूपी सब तेते ॥
काल रूप जग कानन तासें । लागिरही प्रबलानल जामें ।
करिलीन्हो सबको सो ग्रासा । पुनि जो यहिपदार्थकीआसा ॥
सोऊ महा मूर्ख नर अहई । जाहि प्राप्ति बिचारकै रहई ॥
दो० । सकल जगत भ्रमरूपयह, देखिपरत नितताहि ।
अरु पुनि आत्म विचारकी, जाहि प्राप्तिकछुनाहि ॥
छंद चौबोला ।
जगतसकलताकोरमणीयभासई, भ्रमपरताहिदेखतसुमूढ़नाशई ॥
स्वप्नपुरीकेसमानदेखिजासुको, करहुमैंहुइच्छाकिमिनाथतासुको ॥
यहतोदुखकेनिमित्तसबउपायहै । जिमिसुमिठाईमेंविषकोमिलायहै ।
भोजनसंतुष्टहेतु ताहिजोकरै । खातहीतुरंतही अवश्यसोमरै ॥
सो० । तैसे भुगतनहारि, आ जगकी सब विषयकहँ ।
सीताराम बिचारि, तिहिभोगनमहँकौनसुख ॥

सो०। ताते,इच्छा नाहिं; काहु पदारथ की करत।
"सीताराम"भुलाहिं; यामें मूरख अंधसब ॥

वैराग्यप्रयोजनवर्णन ॥

दो०। रामचन्द्र बोले जगत रूप गड़े लै बीच।
माहँमूर्ख नरगिरतनित मोहरूप जहँकीच ॥
सो०। दुख पावत तिहिमाहिं परोतासु वशविविध विधि,।
शांतिवान सोनाहिं होत कवहुं काहू यतन ॥
चौ०। जराअवस्था आवति जवहीं। सर्वशरीर जर्जरी तवहीं ॥
है कांपन लागति नित कैसे। पत्र पुरान विटप कर जैसे ॥
हालत पवन लगत सव वैसे। जराअंग हीलत सब तैसे ॥
तृष्णा केरि वृद्धि है जाई। जैसे नीम वृक्ष महँ आई ॥
ज्यों ज्यों वृद्ध होत नित सोई। कटुता अधिकरयोंहि त्योंहोई ॥
तैसे तृष्णा वाढ़ति ताही। जरा अवस्था ग्रासति जाही ॥
हे मुनीश! जिहि नर यहि देही। इन्द्रियादिक न आश्रयलेही ॥
अपनें सुख के निमित विचारी। सो संसार रूप अँधियारी ॥
दो०। कूपमध्य गिरि जातजब निकरिसकत नहिं हापि;।
अज्ञानी कों चित्त नहिं त्यागत भोग कदापि ॥

छन्द प्रज्झटिका ॥

जगके पदार्थ में बुद्धि मोरि। हैगई मलिनअतिदौरि दौरि ॥
जिमि वरपाऋतुमेंसरिमलीन। अरुअगहनमेंमंजारिहुछीन ॥
है जाइय तैसे जगत केरि। देखत देखत शोभा घनेरि ॥
है जातविरसजिमिजगतकाहु। भासतरमणीयपदार्थलाहु ॥
सो०। जैसे खड्डानीर कों आच्छादित तृणादि सों।
मृग वालक तिहि तीर तिस तृणको रमणीयलखि
चौ०। ताके खैवे कहँ तहँ आई। पुनि तिहिखड्डहि ...

ताते कहहु यत्न तुम वाही । होइहि नाश मोहको जाही ॥
अरु हौं सुखी जासु करि होऊ । और न असंसमरथजगकोऊ ॥

दो० । भुगतन हारो भोगको अहंकार यह जोय ।
त्यागि दियों हौं भोगकी पुनि इच्छा क्यों होय ॥

छन्द मधुभार ॥

जु विषैहिरूप । अहि है अनूप ॥ जिहिपर्शसोय।तिहिनाशहोय॥
अरु सर्पजाहि । कहँ काटु ताहि ॥ वहएकवार । मरिहै करार ॥

सो० । अरु पुनि काटत जाहि विषयरूप यह व्याल जब ।
चलोजात मरताहि बहुत जन्म पर्यंत वह ॥

चौ० । तातेपरमदुःखकोकारन । विषयभोगतिहिकरहुनिवारन॥
याते विषय रूप दुखदाई । अहै परमदुख यह मुनिराई ॥
हे मुनीश! औरन को संगा । काटव सहत होत बरु भंगा ॥
अरु वज्रहु करि चूर्ण शरीरा । होनसोउ सहिहौं धरिधीरा॥
विषय भोगवो मोकहँ सोई । काहू भांति सहो नहिं जाई ॥
यह दुखदायक मोहिं लखाई । ताते सो अब कहहु उपाई ॥
जाते मोरे हियते भाई । अंधकार अज्ञान नशाई ॥
निज वक्षस्थलपर जुन कहिहौं । धैर्य शिला धरिबैठहिरहिहौं ॥

दो० । करिहौं चाह न भोगकी जेते कछुक पदार्थ ।
नाशरूप सोसब अहैं तिमिभोगहिको स्वार्थ ॥

छंद तोमर ॥

तडितप्रकाशा उपजत नाशा जिमि अंजलिजल नहिंठहरे; ।
विषयहु भोगा तिमि अतिरोगा आयुषको शठ औन हरे; ॥
ठहरुनहीं सो जिमि कंठी सो मच्छी दारुन दुख लही; ।
भोगहि तृष्णा करि तिमि कृष्णा है पावै अति कष्ट सही; ॥
ताते आहीं, मोकहँ नाहीं, इच्छा काहु पदारथ की ।
जैसे काऊ; मरीचिकाऊ, के जललखिसंत स्वारथ की; ॥
मूढ़ अजाना तिहि जल पाना करनि केरि इच्छाहिं करी; ।
बहुधा धावै जल नहिं पावै मूढ़ गँवावै आन परी, ॥

जिमि कुहार सों कटा मूलको वृक्षहोताथिरनाहीं ॥
बासनाहुसोंकुटबुद्धि तिमिथिर नहिरहतिअभागी।
हेमुनीश! संसाररूप मो कों विशूचिकालागी ॥
ताते कहहु यतनसो जासों नाशदृश्यको होवै।
याने मोहि महादुखदीनों शुभगुण जासों खोवै ॥
होय प्रकाश आत्म ज्ञानहु कवजाके उदयभयेते।
मोहरूप तम नाशहोय सुख उपजै जासुगयेते ॥
सो०। हे मुनीश! जिमि होहिं आच्छादित शशि मेघसों।
तिमि आच्छादित मोहि कीन्हीं बुद्धि मलीनता ॥
चौ०।तोतेकहहुँ यतन अवओही। जिहि आवरण दूरयह होही ॥
अरु आतमानन्द अहु जोई। ताको नित्य कहै सब कोई ॥
जाके पावतही मुनि राई। पुनि कछु शेष नाहिं रहिजाई ॥
नष्ट होय याते दुख सारा। अतर शीतल होत भुवारा ॥
ऐसो जो पद परम अनूपा। कहतिहिप्राप्ति यतनमुनिभूपा; ॥
हे मुनीश! इच्छा यह मोरी। आत्मज्ञान रूपी शशि कोरी ॥
जिहिविधुको प्रकाशजब पावै। बुद्धि रूप कैरव खिलि जावै ॥
कहहुजिहिसुधारूपकिरणिकर। तृप्ति वृत्ति होइय सो मुनिवर ॥
दो०। हेमुनीश!इच्छा नअब रहिबेकी गृहमाहिं। ॥
कान्तारमहँ जानकी हूइच्छा कछु नाहिं ॥
सो०। ममइच्छा मुनिराय, अहै याहि पदकी फकत;।
होयजाय जिहिपाय, ममउर भीतरशांतिशुचि, ॥

अनन्यत्यागदर्शन।

दो०। हेमुनीश! जो जिवनकी आशकरत सोमूढ़।
जिमि नहिं ठहरत पत्रपै जलकोबुन्दअगूढ़ ॥
सो०। तिमि क्षणभंगुरआयु जैसे बरषा कालमें।

तिमि रमणीय भोग सब जानी। गिरुतहँ भोगनको अज्ञानी॥
महा दुःख पावत पुनि सोई। उड़त गडेले पर मृग जोई॥
कबहुंक सुखी होत सो नाहीं। तिमि गडेल रूपीयह आहीं॥
सकल पदारथ जो संसारा। मनरूपी मृग धावन हारा॥
कैसे सुखी होय कोऊनर। हे मुनीश! जगके पदार्थ कर॥
मोरि बुद्धि चंचल भै सोई। ताते सोई कहहु उपाई॥
जिहि करि यह पर्वतकी न्याई। मोरि बुद्धि निश्चल ह्वै जाई॥

दो०। जो रहु परमानन्द के यतन केर निरधार।
पदनिर्भय निरंकारलहिकछुनरहतसंसार॥

छंदरसवाल॥ बहुरिपावनाताहिरहतऔरहुकछुनाहीं, तिमि सारेजगकीनानारचनादवजाहीं;॥ मुझकोकहौउपायतासुपदपावनकेरी। हेमुनीश!असपदतेशून्यबुद्धिहैमेरी॥ तातेशांतिवानहो होतनहीतिहिन्यारा;। जगअरुजगकेकर्ममोहरूपीहैसारा॥ यामे पड़ेहुयेसोशांतकीनहींपाई। जनकादिकजगमेंरहेहुयेनीरजनाई॥

सो०। रहतसदा निर्लेप शांतिवानसंसार महँ।
सोजिमिकौवहु"खेप" पूरनहोवैपंकसों॥

चौ०। अपर कहवसबपहँयहठैऊ। मोहिं पंकको परश न भैऊ॥
तिमि विक्षेप रूप सु राजके। कीचमहँ परे त्यागि लाजके॥
शांतिवान कैसे निरलेपा। रहैं; दीनता सहैं सिरेपा॥
ताकी समुझि कहां कछु काऊ। कहौ कृपाकरि सो मुनि राऊ॥
अरु तुम सम जो सज्जन आहीं। विषयहिं भोगेमोहि लखाहीं॥
पुनि जगकी चेष्टा सब करहीं। सो निर्लेपरहहिं किमितरहीं॥
सोइ युक्ति अबमोकहँ कहहू। जिमि तुमनीरकमलवतरहहू॥
यह बुद्धितौमोहकरि मोही। जिमिप्रवेशकरु करि सरद्रोही॥

दो०। अरु मलीन ह्वै जात जल तैसे बुद्धि मलीन।
ताते कहहु उपाय सो निर्मल होयनदीन॥

छंदनरेंद्र॥
सुस्थिर रहति बुद्धि कबहूं नहिं यह संतोपहि माहीं।

सो०। तिमि चित सुस्थिर नाहिं होत विषय की ओरही।
धावत रहत सदाहिं ताते कहहु उपाय सो॥
चौ०। होय चित्तयह सुस्थिरजाही। अरु संसार रूपवन माहीं॥
भोग रूप सब पन्नग भरही। दंश जीव को सोई करही॥
कहहु उपाय वचन की तासो। अरुयह जेती कछुकक्रियासो॥
मिली सु राग द्वेष के साथा। ताते सो उपाय मुनि नाथा॥
कहिये राग दोष सब जासों। करु नप्रवेश अनेक कलासों॥
जैसे परि कै सागर माहीं। होइय परश नीर को नाहीं॥
तिमि यहि जगतमाहँ गँभीरको,। ताको तृष्णा रूप नीर को॥
होय न परश करु यतन ऐसा। जासों याको होय न वैसा॥
मनमें जुमनन रूपी सत्ता। होय युक्ति सों दूर प्रमत्ता॥
सो अन्यथा दूरि नहिं होई। निवृति अर्थतुम युक्ति कहोई॥
अरु जिहि विधि सों जाके आगे। निवृति भै सो कहहु सभागे॥
शीतलता भै जौन प्रकारा। तव अंतर सो कहौ भुवारा॥
हे मुनीश! जैसे तुम जानत। सोसबकहौ धन्य!जिहिमानत॥
अरु जो विद्यमान मुनि राऊ। तुम्हरे मैंन युक्ति यह पाऊ॥
जानत हौं नहिं कछुरु गँवारा। ह्वैहौं सब तजि निरहंकारा॥
युक्ति न प्राप्ति होय यह जवलौं। भोजनहौंन करहुँ गो तवलौं॥
दो०। नहि करिहौं जल पान कछु क्रियाहु असनानादि॥
सकल सम्पदा आपदा को कारजहू वादि॥
छंदमरालिनी। होइहौं निरहंकार। यह देह नाहिं हमार॥
औ मैं नहीं हौंदेह। सब त्यागि बैठव गेह॥
कागजउपर ज्योंमूर्ति। तिमि रोय रहिहौं सूर्ति॥
यहश्वास आवत जात। खुदक्षीण होइहि तात॥
सो०। दीप तेल विनु जान जिमि तिमि देह अनर्थविनु;।
होय जाय निरवान महा शांति तव पाइहौं॥
वालमीकि कहराम जव यह कहि चुप ह्वै रहे।
केकी लखिघन श्याम वोलि २ चुपरहत।

वोलु मेघ फिरकायु रहुचंचल तव ग्रीव नित ॥
चौ०आयुरदा क्षणक्षणमें तैसे । चचल होय जात नित जैसे ॥
शिवलिलाट शशिरेख गंभीरा । कछुकरहै तिमि अहै शरीरा ॥
महामूर्ख जिहि यामें आसा । यह तो अहै कालको ग्रासा ॥
जिमिविलाइपकडाति चूहाको । तिमि धरि लेत कालवसु याको॥
ज्यों मूखहि सुधरै नहिं देही । तिमि यहधरिअचानकहिलेही॥
अरु काहूको देखि न परई । ताते विकल कोउ का करई॥
जब अज्ञान गरजु घन घोरा । मोह रूप तव नाचत मोरा ॥
वरसु जलद अज्ञान रूप जव । बढ़त मंजरी दुःख रूप तव ॥
लोभ दामिनी क्षणक्षण माहीं । होय होय नष्टहु ह्वै जाहीं ॥
तृष्णा रूप जाल महँ फँसे । जीव रूप नभचर सव ग्रसे ॥
पावत दुःख परो तिहि माही । नेकु शांतिकी प्राप्ति न ताही ॥
हे मुनीश ! जग रूपी वेरा । रोग लगि रह्यो यह बहुतेरा ॥
ताके वारन करिबे केरा । कौन पदार्थ अहै जग हेरा ॥
अहै जोइ पावन के योगू । होय निवृत जासों भ्रम रोगू ॥
अरु अव सो तुमकहहु उपाई । मूर्खहि जग रमणीय दिखाई ॥
अस पदार्थ धरणी नभमाहीं । देव लोक पतालमहँ नाहीं ॥
दो० । ज्ञान मान नरदेखही जिहि रमणीय अनूप ।
ज्ञानवानको भासई सव असार भ्रम रूप ॥

छंदमरहठा ॥

जगमें अज्ञानी आस्थाठानी ; हेमुनीश ! शशिमाहीं ।
सकलंकितजोभा तासोंशोभा सुन्दरिलागतनाहीं ॥
जव दूरकलंका होयमयंका तवहीं सुन्दरि लागै ।
तिमि मम चित रूपा चंद अनूपा कामरूप सो पागै ॥
तासोंसव काहीं उज्ज्वल नाही भासतमलिनहिं सोई ॥
ताते मुनिराई सोइउपाई कहहु दूरि जिहि होई ॥
चंचल वहुतेरा यह चितमेरा थिरु कदापि रहु नाही ॥
पावक महँ डारा जैसे पारा परत मात्र उड़ि जाहीं ॥

सो०। तिमि चित सुस्थिर नाहिं होत विषय की ओरहीं।
धावत रहत सदाहिं ताते कहहु उपाय सो॥
चौ०। होय चित्तयह सुस्थिरजाही। अरु संसार रूपवन माहीं॥
भोग रूप सब पन्नग भरहीं। दंश जीव को सोई करहीं॥
कहहु उपाय वचन की तासो। अरुयह जेती कछुकक्रियासो॥
मिली सु राग द्वेष के साथा। ताते सो उपाय मुनि नाथा॥
कहिये राग दोष सब जासों। करु नप्रवेश अनेक कलासों॥
जैसे परि कै सागर माहीं। होइय परश नीर को नाहीं॥
तिमि यहि जगतमाहँ गँभीरको,। ताको तृष्णा रूप नीर को॥
होय न परश करु यतन ऐसा। जासों याको होय न वैसा॥
मनमें जुमनन रूपी सत्ता। होय युक्ति सों दूर प्रमत्ता॥
सो अन्यथा दूरि नहिं होई। निवृति अर्थतुम युक्ति कहोई॥
अरु जिहि विधि सों जाके आगे। निवृति भै सो कहहु सभागे॥
शीतलता भै जौन प्रकारा। तब अंतर सो कहौ भुवारा॥
हे मुनीश! जैसे तुम जानत। सोसबकहौ धन्य!जिहिमानत॥
अरु जो विद्यमान मुनि राऊ। तुम्हरे मैंन युक्ति यह पाऊ॥
जानत हौं नहिं कछुक गँवारा। ह्वैहौं सब तजि निरहंकारा॥
युक्ति न प्राप्ति होय यह जबलौं। भोजनहौंन करहुँ गो तबलौं॥
दो०। नाहि करिहौं जल पान कछु क्रियाहु असनानादि॥
सकल सम्पदा आपदा को कारजहू बादि॥
छंदमरलिनी। होइहौं निरहंकार। यह देह नाहि हमार॥
औ मैं नहीं हौंदेह। सब त्यागि बैठब गेह॥
कागजउपर ज्योंमूर्ति। तिमि रोय रहिहौ सूर्ति॥
यहश्वास आवत जात। खुदक्षीण होइहि तात॥
सो०। दीप तेल विनु जान जिमि तिमि देह अनर्थविन,।
होय जाय निरवान महा शांति तब पाइहौं॥
वाल्मीकि कहराम जब यह कहि चुप ह्वै रहे।
केकी लखिघन श्याम बोलि २ चुपरहत जिमि॥

देवसमाजवर्णन ॥

दो० । वाल्मीकि कहु पुत्र हे! जब बोले यहि भांति।
व्योम वर्तिरघु नृपति कुल रामरूप शशिकांति॥
सो०। तब सब ह्वै गे मौन खड़े भये सब के नयन।
मानहु रोमहुँ जौन सुनत बयन सब ठाढ़ ह्वै ॥
चौ०।अरु जो सभा मध्यरहु नीके। निर्वासना रूप सु अमीके॥
सागर माहँ मगन सब भयऊ। वामदेव वशिष्ठ जो गयऊ॥
बिश्वामित्रादिक मुनि जोई। दृष्टि आदि मंत्री सब कोई॥
दशरथ मण्डलेश्वरहु जेते। जो नौकर चाकर सब तेते॥
अरु जो कौशल्यादिक माता। मौन भये सब सुनि यह बाता॥
अर्थ यह कि ह्वैगयो सब अचल। जो शुकरहुपिंजरमें तिहिथल॥
सोऊ मौन भये सुनि ताहीं। पशु आदिक अमराइन माहीं॥
गहे मौन व्रत तृण अरु चारा। खात खात रहिगयहु भुवारा॥
अरु जो पक्षी आलयमहिंखग। सोऊ मौन भये सुनि यहवग।
नभमें रहे निकट जो कोऊ। होय गये सुस्थिर सुनि सोऊ।
अरु जो देव सिद्ध गन्धर्वा। विद्याधर किन्नर नभ सर्वा।
सोऊ आय सुनन यह लागे। करत सुमन वरषा छलत्यागे॥
दो०। धन्य! धन्य!! पुनि शब्द सब करनलगे नरनारि।
भई वृष्टि जो पुष्पसो मानहु हिमकी झारि॥

छंदचित्रपदा ॥

क्षीरसमुद्रअभंगा;कोउछलैसुतरंगा ॥
मानहुमोतिहिमाला। कोबरपैघनमाला ॥
माखनकोजिमिपिंडा; सोउडतेपरचंडा; ॥
याहिप्रकारअनंता। अर्धघटीपरयंता ॥

सो०। वरषाभई कठोर पुष्पवृन्द तिहि ठाममहँ।
भयहु कुलाहल घोर बगरो आय सुगंधतहँ ॥
चौ०।भ्रमरपुष्पपरफिरतनिहाला। महाविलासभयोतिहिकाला॥

नमोनमः शब्दहि सब करहीं । जयजयकार बहुरि उच्चरहीं ॥
बोले देवन ताहि प्रशंसी । कैः हे कमलनयन रघुवंशी ॥
नभमहँ शशि रूपी निज रामा । धन्य!धन्य!! तुमसबगुणधामा ॥
तुम अस्थान श्रेष्ठ अति देखे । बहुविधि वचन सुनेअरु लेखे ॥
याते आपकहे वाणी जस । सुनी नहीं कबहूं वाणी अस ॥
सुनिकै यह सब वचन तुम्हारा । रहा जु सुर अभिमानहमारा ॥
सो सब निवृति भयहु कृपाला । मिटा मोह मदमान कराला ॥
अमृत रूपी गिरा तुम्हारी । सुनत पूर्ण भै बुद्धि हमारी ॥
हे रामजी! कहे जस बानी । ऐसो वचन बृहस्पति ज्ञानी ॥
ताहूकी समर्थ्य अस नाहीं । जो कहि मृदुलपारको जाहीं ॥
अहैं नाथ यह वचन तुम्हारे । परमानन्द के करने हारे ॥
सो० । तातेहौ तुम धन्य! मूरुख सीताराम अति ।
जोनभजतभवगन्य!सकलजगत जजालतजि, ॥

मुनिसमाजवर्णन ।

दो० । श्रीवाल्मीकि उवाच—हे भरद्वाज! उदार ।
कहिकै सिद्धि वचनसुअस करतभयेसुविचार॥
सो० । रघुकुल पूजनयोग; तामें रामसुजानयह ।
विद्यमान हमलोग, केकहु वचन उदार अति॥
चौ०उत्तरजुहोयमुनीश्वरकाही । ताको श्रवण कियोअब चाही ॥
सुमननपर जिमि इस्थिरभौरे । नारद पुलह व्यास यहिठौरे ॥
पुलस्त्यादि साधूसब तैसे । सभा माहँ इस्थिर है वैसे ॥
तब वशिष्ठ विश्वामित्रादी । उठि उठि खड़ेभये अहलादी ॥
पूजा तासु करन सब लागे । प्रथमै नृप पूज्यो छल त्यागे ॥
पुनिनानाविधान मिलिसबहीं । पूजावाको कीन्ह्यो तबहीं ॥
यथा योग्य बैठे आसन पर । कैसे मुनि नारद अति सुन्दर ॥

मूर्त्ति, हाथ लै बैसे वीना। श्यामल मूर्त्तिव्यास आसीना॥

दो०। रंजित नाना रंग सों पहिरे वस्त्र सुहाय।
तारा मण्डल बीच जिमि महा श्याम घनआय॥

छंद स्त्रग्धरा॥

दुर्वासा,बामदेवौ, पुलह अरु पुलस्त्यो, तहां आयआई।
ताठैरे, अंगिराजी, गुरु, पितु,भृगु मैंहू रहे आय भाई॥
औ ब्रह्मर्षिहु राजर्षि अरु तबहिं देवर्षिहू आय सारे।
सोऊहू सर्व मुनीश्वरन सहित आये सभा में पधारे॥
औ काहूको जटाभार मुकुट पहिने हैं तहां कोउ कोऊ।
कोऊ रुद्राक्ष मालागरमहँ पहिरे कोऊ मोतीहि सोऊ;
काहूके कंठ माहीं रतनन कर माला कमंडलुहाथै।
औ काहूके सदाही मृग चरम कोऊ वस्त्रहू नीकसाथै;॥

सो०। कौ कटि पै कोपीन कौ कंचन जंजीरही।
ऐसे महा प्रवीन बैठे आय तपस्वि सब॥

चौ०।तामहँकोउराजसी स्वभावा। कोउसात्वकीस्वभावप्रभावा॥
असरसब महा महात्मा आये। वेद पढ़ैया विद्वत पाये॥
रबिवत् कोउ चन्द्रवत् कोऊ। तारावत् सुरतनवत् जोऊ॥
अस सब महा प्रकाशहि वारे। करन यतन पुरुपारथ हारे॥
यथा योग्य आसन थिर भैऊ। मोहनि मूर्ति रामजी ठैऊ॥
दीन स्वभाव दोउ कर जोरी। सभा मध्य बैठे पगु मोरी॥
पूजा करत भये सब ताकी। धन्य!राम!!तुम अहौ कहाकी॥
विद्यमान नारद सब केरे। कहत भये; हे राम! सबेरे॥

दो०। अति विवेक बैराग के; कहे राम तुम बैन।
सो सब कहँ प्यारेलगे;अधिक अधिक सुखदैन;॥

छंद अडिल।

अरु हैं परम बोधको कारण, । हेरामजी! विपत्तिनिवारण;॥
पुनितुम महाबुद्धिके सागर। उदारातमालोकउजागर॥
महावाक अर्थहुतुमही सन। प्रकट होत हैसोचितहुमन॥

उज्ज्वलपात्रहुअससाधूमहँ। कोउकभेअनंततपसी पहँ॥
दो०। अहँमनुज कछुजोय देखिपरतजनुपशु सकल।
आवदृष्टि नितसोय अवर न मोहिलखात कछु॥
चौ०। किमिजाकोजगसागरजोई। पार होन, की इच्छा होई॥
पुरुषारथ की करत उपायी। सोइ मनुष्य अहैं नर रायी॥
साधो! वृक्ष वहुत जग माहीं। कोउक चन्दन विटपलखाहीं॥
तैसे वहुत अहैं तनुधारी। कोउ होत असयह अधिकारी॥
रुधिर मास अस्थिहि सबकेरे। पुतरे संग मिले भट केरे॥
सो पूतरी यंत्र की जेसे। जीव अहैं अज्ञानी तैसे॥
अरु जग महँ गयन्द वहुतेरे। हिहि लिलाट सन मुक्तागेरे॥
सो विरलौ तिमिनर वहु भाई। जु पुरुपार्थ पर यतनदृढ़ाई॥
दो०। करनहार को होतयक जैसे विटप अनेक।
परलवंग तरुहोत कौ देखहु विमल विवेक॥

छंद दुर्मिला॥

तिमिनरवहुतेरे, अस विरलेरे, प्यारेपानहुकोऐसे।
थोरर्थ कहाही, वहु ह्वैजाही, तैल बुन्द थोरैजैसे॥
विस्तारहिपावत, जलमेंनावत, तैसेथोरवचनजोई।
तुम्हरेउरमाहीं, वहुह्वैजाहीं, अरुविशेपतनवुधिसोई;॥
जिमिदीपकवारी, प्रकाशवारी, परमपात्रमुवो यकेरा;।
कहनेमात्रहिते, अतिशीघ्रहिते; ज्ञानहोयतोकहुँढेरा॥
अरु हमसव जोई, वैठे सोई, विद्यमान हमरेज्ञाना।
तुमको होवैना, सव यहवैना, हमवैठेमूरखजाना॥
सो०। प्रकरण प्रथम विरागु आज समाप्तभयो सवै।
"सीताराम,, तुरागु ग्रन्थ मोक्षदायक निरखि॥
दो०। "भुवन अर्द्ध पुनि वेदग्रह चन्द्र" पद्यशुभ पन्थ।
ज्येष्ट दशहरा वारगुरु भयो पूर्ण यह ग्रन्थ॥

छंदतरंगिणी॥

भा ग्रन्थ आज समाप्त। जाको भयो यह प्राप्त॥

ताको पदै निरबान । कैदीन प्राप्ति समान ॥
जो पाय कै कछु नाहिं । इच्छा रहै मनमाहिं ।
सो ग्रन्थ देखि ललाम । कै पद्य "सीता राम,, ॥
सो० । "सीताराम,, नरंग,जगत जनमिएकहु कियहु ।
नतरु तरुणिको संग, नहिं तरुतर डेरा लियहु ॥

इति वैराग्यप्रकरणं समाप्तम् ॥

ॐतत्सत् ।

मुमुक्षुप्रकरण ।

पद्य अर्थात् छन्दप्रबन्ध ।

पं० सीताराम उपाध्यायकृत ।

सोरठा ।

वाल्मीकि गुणऐन बोले--हे साधो! सुनहु।
अस अनुपम जो वैन परमानन्दहि रूप सब ॥
अरु कर्ता कल्यान उपजु श्रवणके प्रीति तब ।
अमित जन्म के आन पुण्य यकत्रित होतजब ॥

चौ० । जैसे कल्पद्रुम फल काही । महापुण्य सो पावत आही ॥
पुण्य कर्म तिहि जासु अकूता । जुरतआइ सब सोई भूता ॥
वाकी प्रीति होति यहि माहीं । अरु पुनिहोति अन्यथा नाहीं॥
परम बोध कारण यह वचना । पुनि बिराग प्रकरणमें रचना॥
अहै ताहि जानत त्रयलोका । एक सहस्र पंचशत श्लोका ॥
नारद कहु जब यहि परकारा । बोले विश्वामित्र--उदारा ॥
ज्ञानिन माहिं श्रेष्ठ; हे रामा! । रघुकुलतिलक सुमंगलधामा॥
रहु जो जानन योग प्रमाना । सो सबभलीभाँति तुमजाना॥
याते और जानिवो नाहीं ।अरुविश्रामनिमिततिहिमाहीं॥
कछुक मारजन करनो होई । जिमि अशुद्ध आदर्शहि कोई॥
दूरि करै मलीनता ताही । तब आनन अस्पष्ट लखाही॥
तैसे कछुक अपेक्षा तोही । शुभ उपदेश केरि ममसोही॥
दो० । तुम समान; हे रामजी! अहैं व्यास भगवान ।

तासु पुत्र शुकदेव जो सोउ महा बुधिमान ॥
तिहि जो जानन योग्य जान्यो विश्राम निमित्त ।
रही अपेक्षा पायसो शांतिवानभा चित्त ॥
छन्दरोला । बोले राम सुजान रहा हे भगवान कैसो ।
बुद्धिमान अरु ज्ञानवान कहिये वह जैसो ॥
अरु कैसी विश्राम की अपेक्षा थी ताही ।
किमि पायो विश्राम कृपाकरि कहिये वाही ॥
बोले विश्वामित्र सुनहु; हे राम! सुजाना ।
अंजन पर्वत न्याईं जासु आकार प्रमाना ॥
ऐसे जो भगवान व्यासजी बैठे आहीं ।
नृप दशरथ के पास हेम सिंहासनपाहीं ॥
सो० । रवि इव प्रकाशवान; कान्ति जासु तिहि पुत्रशुक; ।
सहित सुभग व्याख्यान शास्त्रन को वेत्ता सकल; ॥
सत्य सत्यको जान अपर असत्य असत्य कहँ; ।
शांतिरूप निरवान परमानँद आतमा महँ ॥
चौ० । जबविश्राम न पावत भयऊ । तबविकल्प वाकेमनठयऊ ॥
जिहिहौं जानन ह्वैहैं सोई । आनँदमोहिं न भासतजोई ॥
सो संशय धरिकै यक काला । गिरि सुमेरु कन्दरततकाला ॥
जहाँ व्यासजी बैठे भाई । तिनके निकट कहतभा आई ॥
हे भगवन्! यह सब संसारा । कहँते भ्रमातमक भा न्यारा ॥
वाकी निवृत ह्वै है कैसे । आगे भई काहु को? जैसे ॥
मोहिं बुझाइ कहहु अब सारा । हे मुनीश! जबयहि परकारा ॥
शुक सो कह्यो न राख्यो गोई । विद्वद्वेद शिरोमणि जोई ॥
वेदव्यास जान तिहि सबही । वेगहि उपदेशत भै तबही ॥
तब शुकदेव कहा जो कहहूं । हौं आगे सो जानत अहहूँ ॥
याते मनहिं शान्ति नहिं आती । हे रामजी! जबहिंयहि भाँती ॥
कहा तबहिं सर्वज्ञ उदारा । वेदव्यास निजमनहिं विचारा ॥
दो० । याको मोरे वचन सों प्राप्ति न ह्वै है शाँति ।

पिता पुत्र को याहिअब जो सम्बन्ध लखाति॥
ऐसेमनहिं विचार करि कहतभये तबव्यास।
हौंन सर्व तत्त्वज्ञ,सुत! जाहु जनक नृपपास॥

छंद मैनावली।

वै सर्वतत्त्वज्ञऔशाँतिआत्माहु; वासोंसबै मोह निवृति है,जाहु।
हेरामजी!योंकह्योव्यासने ज्योंहि,वाठौरसेपुत्रताकोचलौत्योंहिं॥
राजाहि कीनागरीमैथिलामाहिं, आयो तबैशीघ्रही द्वारपै वाहि।
ज्येष्ठी तबैजायबोला उसीपास, आयेखड़े द्वारपै पुत्र जोव्यास॥

सो०। "शुक"तब नृप यहजान जिज्ञासा याको अहै।
बोले तब सज्ञान खड़ो रहै तिहि पौरि पर॥
खड़े रहे यक रीति ज्येष्ठी जाय कहा जबहिं।
गये सात दिन बीति तब राजा पूँछा बहुरि॥

चलत अहैं कै वैसे आहीं। ज्येष्ठी कहा खड़े हैं वाहीं॥
तब नृप कह्यु आगे लै आवहु। द्वार दूसरे ठाढ़ करावहु॥
दिवस सात वाहू पर बीता। पूँछयो बहुरि महीप सप्रीता॥
जु शुक अहैं?ज्येष्ठी कह तबहीं। शुक मुनि खड़ेअहैं तहँअबहीं॥
लै आवहु अन्तःपुर माहीं। बिबिध भोग भुगतावहु ताहीं॥
तब अन्तःपुर में लै आये। नाना भाँति भोग भुगवाये॥
वहाँ जाय नारिन के पासा। कीन्ह सात दिनठाढ़ निवासा॥
तब नृप ज्येष्टी सों पूँछा की। कैसी दशा अहै अब वाकी॥
आगे कहा दशा थी भाई। तब पौरिया कहा समुझाई॥
प्रथम न शोकित होय निरादर। अरुअब नाहिं प्रसन्न भोगकर॥
इष्ट अनिष्टहु माहिं समाना। जैसे मंद पवन करि थाना॥
मेरु चलायमान नहि होई। महाभोगलहितिमिनाहिसोई॥

दो०। भये चलायमान नहि जिमि पपीहरा कोय;।
घनजल बिनुसरि तालकेजलकी चाहन होय,॥
तिमि इच्छा नहि वाहिकछु काहु पदारथकेरि।
तब नृप कह लै आवहू तब लै आये घेरि॥

छंद दुर्मिल।

जव आय गये शुकजी तवहीं उठि कै नृप ताहि प्रणाम कियो।
फिर दोउ तहां पर वैठि गये नृपने अनुशासन ताहि दियो॥
तुम्हरो भय आवन काह निमित्त निजै मन चाहत काह लियो।
हम प्राप्ति करें तिसकी तुमको अववेगि कहौ मुनि खोलहियो॥
कहु श्रीशुक- हे गुरु! या जगको उत्पन्न अडम्बर कैसे भयो।
पुनिहोइहि शांति कहौ किहि भांति यहीं कहिकै चुपहोयगयो॥
अरु गाधिहु सुनुकहा जव या विधि सों शुकदेव जु वैन ठयो।
तवहीं मिथिलेश यथाविधि शास्त्रन के तिनको उपदेशकयो॥

सो०। कियनृपसोंउपदेश कहाव्यासतिहि जो कछुक।
पुनि शुकदेव नरेश, सों; विनीत वोलत भये॥
हे भगवन्! कछु जोय कीन मोर उपदेश तुम।
कहा मोर पितु सोय अरु सोई शास्त्रहु कहत॥

चौ०। हौंहूअसनिजमनहिंविचारा। उपजतनिजचितमेंसंसारा॥
अरु चितके निर्वेद भये ते। भ्रमकी निवृति होति नयेते॥
पुनि विश्राम प्राप्ति नहिं होई। वोलेजनक मुनीश्वर जोई॥
हौं जो कछु यहतुमसनभाखा। अरु जो तुमहुंजानिमनराखा॥
याते और यतन कछु नाहीं। कवहुं अस न जानना चाहीं॥
अपर कहनहू नाहिं मुनीश्वर। भा जगचित्त के संवेदन कर॥
होत चित्त फुरवे ते हीना। तव भ्रम निवृतहोत मलीना॥
आतमतत्त्व शुद्ध नित भाई। परमानन्द स्वरूपहु साई॥
केवल सो चैतन्यहि आही। तिहि अभ्यास करैगो जाही॥
तव तुम पावहु गे विश्रामा। मुक्त स्वरूप अहौ गुण धामा॥
काहेते प्रयत्तन जो तेरा। है आत्मा की ओरहि घेरा॥
अरु दृश्यकी ओर नहिं जाते। महा उदारात्मा तुम ताते॥

दो०। व्यासते अधिक जानि तुम आयो मोरे पास;।
अरु तुम मोहूं ते अधिक जान्यो करि विश्वास॥
काहे मम चेष्टाहु जो वाहर आवति दृष्टि।

तेरी चेष्टा बाहरहु ते कछु नाहिं अरिष्टि ॥

रूपघनाक्षर। अपरपुनि अंतरते इच्छानाहमारिहूहै, विश्वामित्र बोले, हेराम ! यहिभांति जब ;। कहे नृपजनक निरसंग होयशुकदेव अरु निःप्रयत्न निर्भयहोय चलेतब; ॥ आयनिर्विकल्प सो समाधिको लगाय दियो वर्षदशसहस्र लों सुमेरुकंदरा अब, ।अरु पुनि निर्वाण भये जैसे दीपतेल विनु होत निर्वाण वहताके विनुवरें कब, ॥ तैसे निरवान ह्वै गये मुनीशवाही ठौर जल बुंद होयजात सागरमें लीन जिमि; । सूरज प्रकाश संध्या कालहि मे लीनहोत सूर्यपासहमें करिलीजिये विचारितिमि; ॥ कलनारूप अकलंकहि को त्यागकरि प्राप्तभये ब्रह्मपद भागवाकी कहिये किमि; । सकल जंजालतजि लीनहोहु तामें तुमजैसे लगिधूप लीनजलमें ह्वैजाताहिमि; ॥

विश्वामित्रोपदेश ॥

दो०। विश्वामित्र उवाच हे नृप दशरथ ! गुणधाम।
शुद्ध बुद्धि वाले रहे जिमि शुक तिमि श्रीराम ॥
जैसे शांति निमित्त कछु वहि मार्जन कर्तव्य।
तिमिरामहि विश्राम हित चहु कछुमार्जननव्य ॥
चौ०।काहेते जु आवरण करई ! भोग तासु इच्छा नहिं धरई ॥
जुकछु जानिवे योग्य सुजाना। अब कछु युक्ति चाहिये ठाना ॥
जासों होय ताहि विश्रामा। जिमिशुककोभो थोड़हिकामा॥
शांति तानिक माज्र्जन करिपाई। तैसे इनहिं होय नर राई॥
हे राजन! अब राम कृपाही। इच्छा भोग परस करुनाही ॥
जैसे ज्ञानवान को वाही। परसनदुःखअध्यात्मिकआही॥
तैसे इनहिं भोगकी इच्छा। हौं देख्यो करिवहुत परिच्छा॥
भोगेच्छा सबको करु दीना। बन्धन याही नाम मलीना ॥

भोगवासना जब क्षय होई। ताको मोक्ष कहै सब कोई॥
करत भोगकी इच्छा ज्यों ज्यों। अति लघुहोत दीनह्वै त्योंत्यों॥
ज्योंहिय ज्योंहि होय क्षयताकी। त्यों त्यों होत गरिष्ठ यकाकी॥
जब लगि आत्मानन्द प्रकाशा। होयन,तबलगिनहिंअवकाशा॥

दो०। किये वासना काहु विधि तबलगदूरि न होय।
विषयवासना कौनरहु प्राप्त होय जब सोय॥

सो०। होत मरुस्थल माहिं जिमि वल्लीउत्पन्ननहिं;
ज्ञानवानपहँ नाहिं विषय वासना वैसही॥

छंदद्रुतयाव॥

विषयभोग करु त्यागकरै जो। अरुन कोउफल चित्तधरै जो॥
निजस्वभाव,रत ज्ञानवलैही। विषयवासनहु नित्य,चलैही॥
उदय सूर्य जिमि अंधअभावा। मनहिराम अब त्यों,यहठावा॥
दहत चाह नहिं भोगहिं काऊ। विहित वेद अवभा मुनिराऊ॥

सो०। अब चाहत विश्राम ताते आपहि जो कहहु।
सोइकरों गुणधाम होवै विश्रामवान जिहि॥

दो०। हेराजन! तवपास जो यह वशिष्ठ भगवान।
ह्वैहै तिनकी युक्ति करि शांतिवान जियजान॥

चौ०।आगेके रघुकुल गुरु सोई। पहिले के रघुवंशी जोई॥
सो ताके उपदेशहि द्वारा। ज्ञानवान भे यहि संसारा॥
साक्षि रूप सर्वज्ञ अघारी। त्रिकालज्ञ अरु ज्ञान तमारी॥
शुभ उपदेश कियेते ताके। ह्वैहै प्राप्त आत्मपद वाके॥
हे वशिष्ठजी! वह ब्रह्मा,का। अहु सुमिरण उपदेश वहांका॥
भा विरोध जब मोर तुम्हारा। तब उपदेश कीन्ह करतारा॥
जु सब ऋषीश्वर अरु तरुपूरा। मन्दर चल पर्वत तिहि भूरा॥
जगवासना नाश हित जोई। तहँ जो उपदेश्यो विधि सोई॥
रहा,तुम्हार हमार बिरोधा। तासु निमित्त जोइ परवोधा॥
और जीवके हित कल्याना। जो उपदेश कीन भगवाना॥
सो उपदेश करौ अब याही। निर्मल ज्ञानपत्र तिहि काहीं॥

ज्ञान वही विज्ञानहु वाही। निर्मल ज्ञान युक्तिहै जाही ॥
सो० । अर्पणहोय विशेष शुद्ध पात्रमें सो सुभग; ।
पात्रविना उपदेश कैसेहु तदपि सुहातनहि॥
दो० । शिष्यभाव जिहि माहँ अरु विरक्तताहु न होय ।
ताहि व्यर्थ उपदेश, अस मूर्ख अपात्रहुजोय ॥

छंदद्रुतविलम्बित ॥

अरु विरक्तनशिष्यहुभावना। तिनहुँकोउपदेशहदेवना ॥
पुनिजुहोयसम्पूर्णहुदोउसो; तवकरोउपदेशसमौउसो ॥
विनाहिपात्रसुहोइहिव्यर्थजो, यहकिहैअपवित्रहुअर्थजो॥
जिमिगऊकरदूधपवित्रहै। परतश्वानत्वचाअपवित्रहै ॥
सो० । तैसेही सव व्यर्थ शुभ उपदेश, अपात्र कहँ ।
ताते करव अनर्थ ताहि अहै नहिं ठीक प्रिय॥
दो० । हे मुनीश! वैराग्य करि, शिष्य होय सम्पन्न ।
अरुउदारआत्माहुजो सोइ योग नहि अन्न॥
चौ० । सोतुमरे उपदेश न योगू । नहिं अन्यथा मूर्ख जगलोगू ॥
अरु तुम हौ कैसे मुनि नाथा । वीतराग सवनावहिं माथा ॥
भय अरु क्रोधहु ते तुमहीना। परमशान्ति मयरूप प्रवीना ॥
सो तव उपदेशहि कर भाजन । रामचन्द्रसुत, दशरथराजन ॥
यहिविधि गाधिसुवनजवभाषा, । नारदव्यासादिकअभिलाषा ॥
मनमें राखिसके, नहिं गोई। साधु ! साधु!! वोलेसवकोई ॥
भला! भला!! कहु अर्थ जुयेही । अहै यथार्थ, लखहु ऐसेही ॥
तव राजा दशरथ के पासा । वहुविधिवैठे साधु! उदासा ॥
तव विधि पुत्र वशिष्ठ सुजाना । वोलेतिनहिसुनहुधरिध्याना ॥
जोइ कछुक तुम आज्ञा कीन्ही। सो सवहममानीअरुचीन्ही॥
अस समरथकोउन विनु कारन। संतनुशासनकरहि निवारन ॥
हेसज्जन नृप दशरथ केरे। जेते पुत्र अहैं मम नेरे ॥
सो० । तिन सवके उरमाहि जु अज्ञानरूपी तिमिर ।
करवनिवारन ताहि ज्ञानरूप रवि कर तिनहि ॥

छंदध्रुवा॥

रवि प्रकाशजिमिहोतदूरतिमिवेश। जोकछुब्रह्माजीनेकियउपदेश॥
मोहिंअखंडस्मरणहैसोमैंयाहि। करिहौपावैपद निःसंशयजाहि॥
दो०॥ याही भांति वशिष्ठजी गाधिसुवनहिं सुनाय।
तासु अनंतर कहत भे रामहि मोक्षउपाय॥

असंख्यसृष्टिप्रतिपादन॥

दो०। कहवशिष्ठ—हे रामजी! कमलज ब्रह्माजोय।
जीवनके कल्याणहित जुउपदेशकियसोय॥
सो०। सो सब भले प्रकार आवत मेरे स्मरणमहँ।
अवसो सकल सँभार हौं तेरे सन्मुख कहत॥
चौ०। कहाराम—अब,हेभगवाना!। कछुकप्रश्नकोअवसरजाना॥
दूरि करहु यक संशय आया। कहहु सहितामोक्षउपाया॥
कहिहौ सो सब तुमहौंजाना। भाष्यो जो यह वचन प्रमाना॥
भैजु विदेह मुक्त शुक देवा। तौ जु व्यास सर्वज्ञ अभेवा॥
सो न विदेह मुक्तकिमि भयऊ। तब वशिष्ठ—बानी यह ठयऊ॥
जिमिरवि की किरणनिसोंभाई। यह त्रसरेणु उडत लखाई॥
तिहि संस्थाहोति कछुनाहीं। तिमि रविसम्वेदनळणमाहीं॥
त्रय लोकी रूपी त्रसरेणू। है असंख्य अनंत मिटि गैनू॥
अरु औरहु अनंत सो होहीं। जानत अहे भांति यहि मोही॥
बहु त्रिलोकिब्रह्मजलधिमाहीं;। संख्या तासु अहे कछु नाहीं॥
रामचन्द्र कह—पुनि सुनतयऊ। जो आगे व्यतीत है गयऊ॥
अरु जो आगे हैहैं आई। तिनकी संख्या केतिक साई॥
वर्तमान जो जानत हैऊ। पुनि वशिष्ठ जी—बोलत भैऊ॥
हेरामजी! अनंत कोटि जन। उपजि मिटि गये त्रैलोकी गन॥
कै हैहैं अरु पुनि कै आही। गनिवेकी संख्या कछु नाही॥

काहेते जो जीव असंख्या। जिवप्रति निज२सृष्टि समंख्या॥
सो०। मृतकहोत तब अल्प जीव वाहि अस्थानमहँ।
अंतवाहके संकल्प रूपी पुरमें आय निज॥
दो०। बन्धपासे आवत वही गृह परलोकहु भास।
आवत पृथ्वी आप अरु तेज वायु आकास॥
छंदचंचला। पंचभूतभासतावबासनावहुप्रकार; । कीनिजै २ सुसृष्टिभास आवतानुसार॥ पैजबै मृतकहोतहै उहांहिते वही; । सृष्टिभास आवती तबै वहीसुनो सही॥ नाम रूप युक्त जाग्रते महांसुसत्यहोइ, । भासआवतीउहांहितेजबैहिमर्तसोय॥ पंचभूत सृष्टिको अभावहोइजाइऔर, । औरभासई जुजीवहोतहै सुता सुठौर; ॥
सो०। तिनको याहि प्रकार सोभी अनुभव होतहै।
यहि प्रकार बहुवार सृष्टिहोत सबजीवकी॥
दो०। ह्वैह्वै एकएक जीवकी अरु पुनि मिटि मिटिजाहि।
ताकी संख्या गिननकी अहै जगत में नाहि॥
चौ०। याहीभांति निरन्तर नाना। जानिपरतयह सकलजहाना॥
तब ब्रह्माकी सृष्टिहु केरी। कैसे संख्याहोय घनेरी?॥
जैसे पुरुष लेत जब फेरी। तासु दृष्टि आवत बहुतेरी॥
सर्व पदारथ भ्रमत लखाहीं। जैसे बैसे नौका माहीं॥
चलत तीर तरु देत लखाई। जैसे नेत्र दोष करि भाई॥
नभमण्डल के बीच अकाला। देखि परति सोतिनकैमाला॥
सृष्टि लखाति स्वप्नमें जैसे। सब जीवहि भ्रम करिकै तैसे॥
यहाँ लोक परलोक लखाई। "वास्तव" जगकछुनहिउपजाई॥
सुअद्वैत परमातम तत्त्वएक। अपनेआप विषे इस्थित तक॥
ताके विषे द्वैत भ्रम जोई। सु अविद्या करिभासत होई॥
जैसे शिशुहि निजै परछाईं। भासत है बैताल सदाई॥
अरु भयको पावत नित सोई। तैसेही अज्ञानी कोई॥
जगत रूप है निज कल्पना। भासत है सोई जलपना॥

व्यासदेव यह बत्तिस वारा । मम देखत आयो संसारा ॥
यक आकार रूप दश तामें । अरु एकही क्रियाहू जामें ॥
अरु एकहि जिमि निश्चयठयऊ । और समानहिं समदशभयऊ ॥

सो० । सुविलक्षण आकार बारह तिनमें जानिये ।
क्रिया चेष्टा हार भये विलक्षण तासु वश ॥

दो० । जैसे होत समुद्र महँ नाना भाँति तरंग ।
तामहँ उपजत केइसम केइ विलक्षणरंग ॥

छंद मोतीदाम ॥

भये तिमि व्याससुनौ अवराम । दशौसम जोभय श्री गुणधाम ॥
यही तिनमें दशमों शुचि व्यास । अगाडिहु अष्टम केरनिवास ॥
तबै यहआवहिं गे जग जोय । पुनः महभारत को कहिसोय ॥
बहोरि नवों वह बार सँयुक्त । भये "विधि" होय विदेहहुमुक्त ॥

सो० । हमहूँ होवे विदेह मुक्त वाल्मीकिहु सहित ।
अरु विधिहू लहितेह पुनि सुरगुरु पितु अंगिरा ॥

दो० । इत्यादिक ऋषि गण सहित अरु औरहु सबलोग ।
पैहैं मुक्ति विदेह पुनि जीवन सब तजि भोग ॥

चौ० । हेराम जी! एक समहोई । एक विलक्षण होवे सोई ।
अरु नर सुर तिर्यादिक जीवा । केइ बेर समान है सीवा ।
होत विलक्षण केतिक वारा । केतिक जीव समान अकारा ।
कुल क्रिया युत होवैं आगे । कइ संकल्प करि उडत भागे ।
आना जाना जीना मरना । स्वप्नभरम इव लखिपर करना ।
वास्तव में कोऊ नाहिं आवै । कोऊ मरतन कोऊ जावै ।
करि अज्ञान भरम लखि परई । कियेविचार न कछुक निसरई ।
जैसे कदली को अस्तम्भा । देखत लागत पुष्ट अदम्भा ।
खोदिदेखुकछु निकसु न सारा । तैसे जग भ्रम करि अविचारा ।
सिद्धि अहे सु विचार करै जब । कछुभासत नाहींजग भ्रमतब ।
हे रामजी! कहौं तव पाहीं । जो नर आतम सत्ता माहीं ।
जाग्यो ताहि द्वैत भ्रम नाहीं । वह आतम दर्शीहु सदाहीं ।

शांतात्मा परमानँद रूपा। सब कलना ते रहित अनूपा॥
ऐसे जीवन्मुक्तिहिं कोई। सकुचलाय न कछू यह गोई॥
ऐसे व्यास देव जी जोई। तिनहिं सदेह मुक्ति कहतोई॥
सो न विदेह मुक्ति की कलना। नित अद्वैत रूप हैं ललना॥
दो०। जीवन्मुक्तहिं राम जी भासत नित सर्वत्र।
सर्वात्मा पूर्णहिं अपर स्वस्वरूप एकत्र॥
सो०। अपर स्वरूपहिसार शांतरूप पूरण अमी।
सीता राम सुचार इस्थित हैं निर्वाणमहँ॥

पुरुषार्थोपक्रम वर्णन॥

दो०। जीवन्मुक्ति विदेह मुक्ति में भेद कछु नाहिं।
जिमिथिर जल जल सोउ औ युततरंग जलवाहिं॥
सो०। तैसें जीवन्मुक्ति अरु विदेहहु मुक्ति महँ।
भेद नाहिं कछु उक्ति, ऐसा है; हे रामजी!॥
चौ०। जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिकरा। अनुभवतोहिंप्रत्यक्षनलखिपर॥
काहे स्वसम्वेद्य कछु जोई। तिनमे भेद जु भासत सोई॥
सु असम्यक्दर्शी को भासै। ज्ञानिहि भेद कछून प्रकासै॥
सुनहु हे मनन हारी माहीं। श्रेष्ठ रामजी! जो यह आहीं॥
होतवायु जिमि स्पन्दहि रूपा। तौहू पवन अहै सुर भूपा॥
अरु निस्पन्द रूप जो होई। तबहु प्रभजन कहु सब कोई॥
उसके वायेतें निश्चय महँ। हे रामजी! न भेद कछू अहँ॥
होत पर अपर जीवहिं स्पन्दा। तौहू भासत अरुनिस्पन्दा॥
तबहुं भासत है कछु नाहीं। सीताराम देखु मन माहीं॥
दो०। तौ भासत कछु नाहिं तिमि ज्ञानवान कहँ भेद।
जीवन्मुक्ति विदेह मुक्ति में नहीं कछु छेद॥
सो०। सदा द्वैत कल नाहिं तेवह रहित रहत प्रभो।

जावहिजवहि लखाहिनिजतनजीवन्मुक्तत्व;॥

छन्द प्रमानिका॥

शरीरहोतहै जबै। श्रदृश्यतासुकों तबै;॥ विदेहमुक्तहीकहैं। दुहूंउ सेहि तुल्य हैं॥ प्रकृत्यके प्रसंग को; । अबैहिवासुरंगको;॥ सुनौ सुचित्तकै सही। उदार रामचन्द्रही॥

सो०। होत जो कछू सिद्धि सो अपने पुरुपार्थ करि।
पुरुपारथविनु वृद्धि कवहुँ सिद्धिकी होति नहिं॥

दो०। श्रौर कहत जो लोगसब जो करि है सो दैव।
सो अपनी मूर्खता वश मम जानत येहछैव॥

चौ०।यहशशिशीतलकरिहियकाही। अरुउल्लासकरतजुलखाही॥
सो यामें शीतलता नई। सवही पुरुपारथ करि भई॥
हे रामजी! जिहि अरथ केरी। करै कोउ प्रार्थना घनेरी॥
अपर प्रयत्न करै सो वाही। अरु तेहिमाहिंफिरैसो नाही॥
तो तिहिअर्थ-को अविस्मयकर;। पावत अवश्यमेवहिसुनिवर॥
पुरुप प्रयत्नहु काको नामा। ताको श्रवणकरहु गुणधामा॥
सज्जन अरु सच्छास्त्र गुसाईं;। के; उपदेश रूप सुउपाई॥
तिहि अनुसारहिचित्त विचरना;। सो पुरुपार्थ प्रयत्न सुवरना॥

दो०। तासु इतर जो चेष्टा; करतनाम तिहिराय।
चेष्टा अति उन्मत्तअरु जासुनिमित्तउपाय॥

सो०। करत लहत सो रत्न एक जीववह रहत जो।
करि पुरुपार्थ प्रयत्न पाई पदवी इन्द्रकी॥

छन्द वन्धूक॥

त्रैलोकपती तब जातहोय। सिंहासनपै आरूढ़ सोय॥
हे रामचन्द्र! आत्मत्व माहि। चैतन्यअहै अस्पन्दजाहि॥
सो स्पन्द रूप ह्वै फुरत तात। निजपुरुपारथकै पायजात॥
सो ब्रह्म पदै ताते विलोकु। जो कछुकसिद्धताप्राप्तभोकु॥

दो०। सु पुरुपार्थ करि केवलहि जु चैतन्य आत्मत्व।
तामें चित्त सम्वेदनहु स्पन्दरूपही स्वत्व॥

सो०। अरु यह जो चैतन्य संवेदन सोऊ निजै।
पुरुषारथ करि अन्य खग पति पै आरूढ है ॥
चौ०विष्णुरूप पुरुषोत्तम होई। सु चैतन्य सम्वेदन जोई ॥
निज पुरुषारथ करिकैभयऊ। रुद्ररूप जु जन्म यह लयऊ ॥
अर्द्ध अंग में पारवती को। अरु मस्तक में वास शशीको ॥
नीलकण्ठ अतिशांत स्वरूपा। ताते; सिद्धि होत जु अनूपा ॥
पुरुषारथ करि होवै सोई। हे राम जी! पुरुष जो कोई ॥
पुरुषारथ करि चहै जु करई। चूर्ण सुमेरुहु को करि धरई ॥
पूर्व दिवस में दुष्कृत कीन्हा। अगलेदिवससुकृत करिदीन्हा ॥
तब दुष्कृतहु दूरि ह्वै जाई। जो निज हाथ नसकत उठाई ॥
दो०। जो निजहाथ न लै सकत चरणामृतहु गवाँर।
सो पुरुपारथ जो करै तौ वाही यक वार ॥
सो०। ऐसो समरथ होय या पृथ्वी के करन को।
खण्ड खण्ड बहुलोय सीताराम न सो करत ॥

॥ पुरुषार्थ वर्णन ॥

दो०। हे रामजी! करत कछुक वांछा जो चित्त माहिं।
अपरशास्त्र अनुसार पुरुषार्थ करत सो नाहिं ॥
सो०। सो सुख को पावै न तिहि चेष्टा उन्मत अहै।
दुइ प्रकारसे है न पुरुषारथ कोउ कोउ अधिक ॥
चौ०। यकतोअहैशास्त्रअनुसारा। एक शास्त्र विरुद्ध व्यवहारा ॥
शास्त्र विरुद्ध शास्त्र त्यागी। विचरत निजइच्छा अनुरागी ॥
पैहैं सोन सिद्धता स्वारथ। जो शास्त्रानुसार पुरुषारथ ॥
तिहि सिद्धता प्राप्त है जाही। हैहैं कोउ दुःख नहिं ताही ॥
जो अनुभव ते सुमिरण होई। अरु सुमिरण ते अनुभव सोई ॥
सो दोऊ याही ते आही। दैव तो भयोहीं कछु नाही ॥

अपर दैव अहै नहीं कोई। याको कौन प्राप्त यहि होई॥
पर जो होत वलिष्ठ सु नरई। सोऊ तिहि अनुसार विचरई॥
जु संसकार पूर्व के वली। तौ वाको जय होवै भली॥
विद्यमान पुरुषारथ जोई। वली होत तव जीतत ओई॥
जिमियक नर के वेटे दोई। अरु जो तिनहिं लडावतसोई॥
तौ जो वली अहैं युगमाहीं। ताही को जय होत तहाँहीं॥
अहैं परन्तु तासु सुत दोऊ। तैसे दुहूं कर्म या कोऊ॥
संसकार पूरव को आवै। वली तवै सोऊ जय पावै॥
यह जो करत अहै सत संगा। अरु सच्छास्त्र विचारत अंगा॥
वहुरि सोउ विहंग की न्याई। जग वृक्षहि की ओर उड़ाई॥

दो०। संसकार तिहि पूर्व को वली अहै अति तात।
तासों इस्थिरहोत नहिं सकत सदैव उड़ात॥

सो०। ऐसेही तुमज्ञान त्यागिय पुरुष प्रयत्न नहिं।
है न अन्यथा आन पूरबके संस्कार ते॥

छन्द सारंग॥

होवै वली पूर्व को जासु संस्कार। कीजै जवै सोउ सत्संग व्यौहार॥ सच्छास्त्रहूकेर होवै सुअभ्यास;। तौपूर्वके संस्काराहि अन्यास॥ जीतै कियो दुष्कृतै पूर्व में जोय। आगे कियो सुकृतै आयकै सोय॥ तौ आगिले को अभावाहि हैजात;। खूवै विचारो हिये माहि धैतात॥

सो०। सो देखहु नरनाह होवै पुरुष प्रयत्न यह।
सो पुरुषारथ काह ?होतसिद्धि क्या? तासुकर॥

दो०। ज्ञान वान सो श्रवणकरि अरु जोसज्जन संत;।
अपर अहै सच्छास्त्र जो विद्या ब्रह्म अनन्त॥

चौ०। करव प्रयत्नतासुअनुसारा। तासुनामपुरुषार्थ प्रचारा॥
करि पुरुषार्थ पाइवे योगू। है आत्मा जानत सवलोगू॥
जिहिसों यह अगाध जगसागर;। सो होवै यह प्राणी आगर॥
जो कछु सिद्धहोत; हे रामा!। सो पुरुपारथ करि सवयामा॥

दैव अहै दूजो कछु नाहीं। शास्त्ररीति पुरुपारथ काहीं ॥
तजिकै कहत जोइ जो भावै। करन अहै सो दैव बतावै ॥
गर्दभ अहै मनुज महँ सोई। ताको संग करै जनि कोई ॥
ताकी संगति दुख को कारन। यहि नरको तौ प्रथम सँवारन ॥
जो अपने वर्णाश्रम माहीं। शुभ आचार ग्रहण करु ताहीं ॥
अरु पुनि देइ अशुभको त्यागी। बहुरि संत की संगति लागी ॥
पुनि सत्शास्त्रहु केर विचारा। बहुरि वही विचार अनुसारा ॥
निज गुण दोषविचारहु धरई। जो निशिदिन महँ क्या शुभ करई ॥
अरु पुनि अशुभ कहि करि राखी। आगे गुन अरु दोषहुँ साखी ॥
भूत,, होय कर जो संतोषा। धैर्य विराग विचार अरोपा ॥
सब गुनयुत अभ्यास सप्रीती। तिनहि बढ़ाव दोष विपरीती ॥
तिनहि त्याग करवौ प्रति बारा। अस पुरुपार्थहि अंगीकारा ॥

दो०। करै कोउ जबहीं तबै परमानन्द स्वरूप।
आत्मतत्त्वको पावही यहि विधि सो नरभूप; ॥

सो०। तातेहोय न तात कौधायल वनमृग सदृश।
जुतृणधास अरु पात चुँगतरसखोजानिकै ॥

छंदहंसगति। तैसेनारीसुतबाधवधनआदिक। माहँ मग्न है रहनासोनहिंबादिक ॥ इनतेहोयविरक्तदतसोदंतहि। पारहोन कीयत्नचबायभवैमहिं ॥ भयतेबंधनतोरिनिकरनायाहिय। जिमि केशरीसिंहनिकसैहैबाहिय ॥ बलसोंपिंजरतोरिनिकसुसोजैसहि। सोईहैपुरुपार्थनिसरनातैसहि ॥

सो०। हेरामजी! सुजाहि, प्राप्तभईकछुसिद्धता।
पुरुपारथ करिबाहि बिनुपुरुपारथ केनहीं ॥

दो०। होतन ज्ञानपदार्थको जैसे बिनहि प्रकाश।
जोतजि निज पुरुपार्थको भयोदैवकोआश ॥

चौ०। करिहिदैवकल्याणहमारा। सो हैहै नहिं काहु प्रकार
जिमि पाहन ते तेल निसारा। चाहै सोनहिं निकसत
तैसे ही याको कल्याना। हैहै नाहि दैव ते

परमपुरुषार्थबर्णन॥

दो०। पूरवकी पुरुषार्थ जो याको वाको नाम।
"दैव„अवरसो कोउनहिं; नहींकोउ तिहिठाम॥
सो०। जबहीं यह सतसंग; शुभसतशास्त्रविचार पुनि।
करि संस्कारहि भंग पूरवको पुरुषार्थ तें॥
जो नर मन चितलाय इष्टपाइबे के निमित।
करिहैं यही उपाय सुभग शास्त्रद्वारा सुगम॥
दो०। अपनेहीं पुरुषार्थ ते सोई अवश्य सेव।
करिकैसोफलपाइहै त्यागिअवरसबभेव॥
चौ०। होतअन्यथाहकिछुनाहीं। हुआ न होइहिकाहुहि काहीं॥
पूर्व पाप जो कीना कोई। तिहिफलजबदुखपावतसोई॥
तब मूरख कछु मन न बिचारै। हाय! दैव!! हादैव!!! पुकारै॥
हाय! कष्ट!! हाकष्ट!!! बखानी; । मूरख मनमें करत गलानी॥
हे रामजी! यासु को जोई। पूर्व केर पुरुषारथ कोई॥
दैव नाम ताही को आहीं। और दैव कछु कोऊ नाहीं॥
अपर दैव कल्पत जो कोऊ। बारम्बार मूर्ख नर सोऊ॥
पूर्व जन्म सुकृत करि आया। सोई सुख है देत लखाया॥
दो०। सुकृत बली जो पूर्व को काहू को यह होत।
तब ताहीको होत जग जय अरु तेज उदोत॥
सो०। पूरब दुष्कृत जोय बलीहोत जब जाहिको।
पुरुषारथकरु सोय तवशुभहितवहुदेयचित॥

छंद दोहरा॥

संतसंग सत्शास्त्रहुको करु श्रवण बिचार।
पूर्व के संसकारहिं जीति लेत यक बार॥
ज्योंकरिपापहिं प्रथमहिं दूजेदिनअतिपुन्य।
पाप पूर्व को निवृत्त होत सकल अवगुन्य॥
दो०। तैसे दृढ़ पुरुषार्थ जब इहाँ करै नर कोय।

पूर्वके संसकारको जीति लेत तब सोय ॥

सो०। ताते जो कछुसिद्धि सो याकोपुरुपार्थ करि।
तासों ताकी वृद्धि करहु निरंतर चेति मन ॥

चौ०। जो एकत्रभावकरिरामा। "यत्न" तासु पुरुपारथनामा ॥
है यकत्र करु जासु उपाई। अवशमेव सो ताकहँ पाई ॥
जो नर अवर दैव को जानी। बैठो करि पुरुपारथ हानी ॥
आगे दुखको पैहैं सोई। शांतिवान् कवहूँ नहिं होई ॥
हे रामजी ! असत्य दैव के। आशाहि त्यागहु सकल छैचके ॥
करु पुरुपार्थहि अंगीकारा। जो सज्जन सतुशास्त्र विचारा ॥
युक्ति साथ करि यत्नआत्मपद। सुअभ्यास करि प्राप्तहोवसद ॥
अहै नाम पुरुपार्थ याहि को। लहै सोइ वड़भाग जाहि को ॥

दो०। जैसे होत प्रकाश करि पदार्थहू कर ज्ञान।
पुरुपारथकरिआत्मपद प्राप्तिहोतसुखदान ॥

"सोरठा,,। दुष्कृत पूरवकेर अरु अतिपापी होतजो।
दृढ़पुरुपार्थ घनेर कीन्हे जीतततताहिसों ॥

छंद सुंदरी ॥

जिमि वड़ाघनहोत अकाशमो। करत तासु प्रभंजन नाशको ॥
वरसहू कर क्षेत्र पका हुआ। वरफ़ ताकरि नाशकरै सुआ ॥
तिमिहि पूरव संसहिकार जो। करत नाश पुरुप प्रयत्न सो ॥
पुरुप सो अतिश्रेष्ठ कहै सवै। करत जो सतसंग रहै अवै ॥

दो०। सुसतुशास्त्र द्वाराहुजे तीक्ष्ण वुद्धिको कीन।
करिपुरुपारथतरनहित जगसमुद्रमनलीन ॥

सो०। अरु जाने सत्संग सुसतुशास्त्रद्वाराहि वुधि।
किय न तीक्ष्णवहुरंग पुनिवैठेपुरुपार्थतजि ॥

चौ०। सोपैहैं नीचतेनीचगति। अपर जो अहैं श्रेष्ठपुरुपअति ॥
सो अपने पुरुपारथ करतहि। पावेंगे परमानन्द पदहि ॥
जाके पाये ते कवहूँ नहि। दुखीहोतनर अमितकष्टसहि, ॥
होत देखिवे ते जो दीना। अरु सत्संगति के आधीना ॥

अरु सत्शास्त्रहु के अनुसारा। पुरुषारथ करु वारहिं वारा॥
सो उत्तम पदवी कहँ पाई। मोकहँ देत सदैव लखाई॥
पुरुष प्रयत्न जु नर करि भाई। ताको सकल सम्पदा आई॥
प्राप्त होत नित नूतन रूरे। परमानन्द ह्वै रहे पूरे॥

दो०। जैसे रत्नहु करि उदधि पूरण रहत अरोग।
तैसे परमानन्द करि पूरणभे यह लोग॥

सो०। ताते पुरुष उदार श्रेष्ठ सुनिज पुरुषार्थकरि।
तिहि द्वारा संसार के वंधन ते जात छुटि॥

छंद उल्लाल॥

जिमि केशरि सिंह जु जातछुटि पिंजरते वलकै निजहि।
तिमि वह अपने पुरुषार्थ करि जगवंधनते चलु निवहि॥
यह पुरुष अवरकछु नाकरै तो अवश्य इतनाहिं करु।
जो अपने वर्णाश्रमाहिके अनुसारहि जगमें विचरु;॥

दो०। जो संतहु अरु सार शास्त्रहुको आश्रय होय।
तानुसार पुरुषार्थ करु तव सव वंधन जोय॥

सो०। तासों होवै मुक्त अरु जो पुरुपारथ तजत।
मानि मूढ़करि युक्त और कोउ दैवहिकहत॥

चौ०। वह मेरोकरिहैकल्याना। जो यह निजमनमेंअनुमाना॥
जन्म मरण सो पावत जैहै। अपर शांति कवहूँनहिं ह्वै है॥
लाग्यो जीवहि जो यह लोगा। जग रूपी विशूचिका रोगा॥
ताहि करनको दूर उपाई। कहत अहौं; हेराम! वुझाई॥
सजन अरु सत्शास्त्र अर्थ महँ। दृढ़ भावना करै ताहीं पहँ॥
जो कछु सुना तासुकी आसा। वार २ करु तिहि अभ्यासा॥
औरहु सकल कल्पना त्यागी। करुचितवनयकान्ततिहिलागी॥
तव यह जीव परमपद पावै। द्वैत भरम निवृत ह्वै जावै॥

दो०। अपर अद्वैत रूपड़ा भासै ताहि तुरन्त।
पुरुपारथअहुयाहिकोनामकहतसवसन्त॥

परम पुरुषार्थोपमा वर्णन ॥

दो०। याको करि पुरुषार्थ आध्यात्मिक आदिकताप,।
प्राप्त होत सब तासु करि शांति न पावत आप ॥
तुमहूँ रोगी होहु जनि निज पुरुषारथ युक्त।
जन्म मरण के बंध ते होहु बेगही मुक्त ॥
सो०। अवर न कोऊ देव मुक्तकरनको अहैं कहुँ।
निज पुरुषारथ भेव मुक्तहोत जगभवैते ॥
निजपुरुषारथ त्याग कीन मूढ़ जो पुरुषने।
अपर देव तिहिलाग भयो परायणतासुके ॥
चौ०। ताकोधर्म अर्थअरुकामा। मोक्ष नष्ट ह्वै जाइहि रामा ॥
अरु नीच ते नीच गति पाई। पैहैं दुःख नरक महँ जाई ॥
हे रामजी ! शुद्ध चैतन्या। जो इहि अपनो आपनअन्या ॥
अपर सुवास्तव रूप सुजाना। जासु करै न कोउ अपमाना ॥
अहै तासु आश्रय जो आदी। चित संवेदन स्फूर्ति अनादी ॥
अहं ममत्व जोइ संवेदन। होयफुरनलागतिहै छनछन ॥
अहं स्फूर्ति अहुइंद्रि वहोरी। जब यह फूर्नी होय करोरी ॥
सत शास्त्रही के अनुसारा। तब वह पुरुष सुजानउदारा ॥
परम शुद्धता को रघुराई। प्राप्त होत है जो सुखदाई ॥
अरु जो तिहि अनुसार न होई। तब वासनानुसारहि सोई ॥
भाव अभाव रूप अहु जोई। यह भ्रमजाल दीखु सबकोई ॥
तामें घटी यत्र की न्याई। भटकत रहत परो तिहिठाई ॥
भै यह प्राप्त सिद्धता जाही। सो निज पुरुषारथ करिताही ॥
विनु पुरुषार्थ सिद्धता आई। प्राप्त न होत काहु को भाई ॥
ग्रहण करिय कोउपदार्थजब ; । भुजा पसारि ग्रहणकरियेतब ॥
अरु जब कोउ प्राप्त चहैं देशा। तबचालिपहुँचहुसहिबहुक्लेशा ॥
दो०। अपरअन्यथा होतनहिं ताते विनु पुरुपार्थ।
देखिलेहुतुमसिद्धि कछुहोततात नहिं स्वार्थ ॥

अरु सत्शास्त्रहु के अनुसारा। पुरुषारथ करु वारहिं वारा॥
सो उत्तम पदवी कहँ पाई। मोकहँ देत सदैव लखाई॥
पुरुष प्रयत्न जु नर करि भाई। ताको सकल सम्पदा आई॥
प्राप्त होत नित नूतन रूरे। परमानन्द ह्वै रहे पूरे॥

दो०। जैसे रत्नहु करि उदधि पूरण रहत अरोग।
तैसे परमानन्द करि पूरणभे यह लोग॥

सो०। ताते पुरुष उदार श्रेष्ठ सुनिज पुरुषार्थकरि।
तिहि द्वारा संसार के बंधन ते जात छुटि॥

छंद उल्लाल॥

जिमि केशरि सिंह जु जातछुटि पिंजरते बलकै निजहि।
तिमि वह अपने पुरुषार्थ करि जगबंधनते चलु निवहि॥
यह पुरुष अवरकछु नाकरै तो अवश्य इतनाहिं करु।
जो अपने वर्णाश्रमाहिंके अनुसारहि जगमें विचरु;॥

दो०। जो संतहु अरु सार शास्त्रहुको आश्रय होय।
तानुसार पुरुषार्थ करु तब सब बंधन जोय॥

सो०। तासों होवै मुक्त अरु जो पुरुषारथ तजत।
मानि मूढ़करि युक्त और कोउ दैवहिकहत॥

चौ०। वह मेरोकरिहैकल्याना। जो यह निजमनमेंअनुमाना॥
जन्म मरण सो पावत जैहै। अपर शांति कबहूँनहि ह्वै है॥
लाग्यो जीवहि जो यह लोगा। जग रूपी बिशूचिका रोगा॥
ताहि करनको दूर उपाई। कहत अहौं, हेराम! बुझाई॥
सज्जन अरु सत्शास्त्र अर्थ महँ। दृढ़ भावना करै ताही पहँ॥
जो कछु सुना तासुकी आसा। बार २ करु तिहि अभ्यासा॥
औरहु सकल कल्पना त्यागी। करुचितवनयकान्ततिहिलागी॥
तव यह जीव परमपद पावै। द्वैत भरम निवृत ह्वै जावै॥

दो०। अपर अद्वैत रूपडा भासै ताहि तुरन्त।
पुरुषारथअहुयाहिकोनामकहतसबसन्त॥

परम पुरुषार्थोपमा वर्णन ॥

दो०। याको करि पुरुषार्थ आध्यात्मिक आदिकताप,।
प्राप्त होत सब तासु करि शांति न पावत आप ॥
तुमहूँ रोगी होहु जनि निज पुरुषारथ युक्त।
जन्म मरण के बंध ते होहु वेगही मुक्त ॥
सो०। अवर न कोऊ देव मुक्तकरनको अहैं कहुँ।
निज पुरुषारथ भेव मुक्तहोत जगभवैतें ॥
निजपुरुषारथ त्याग कीन मूढ़ जो पुरुषने।
अपर देव तिहिलाग भयो परायणतासुके ॥
चौ०। ताकोधर्म अर्थअरुकामा। मोक्ष नष्ट ह्वै जाइहि रामा ॥
अरु नीच ते नीच गति पाई। पैहैं दुःख नरक महँ जाई ॥
हे रामजी ! शुद्ध चैतन्या। जो इहि अपनो आपनअन्या ॥
अपर सुवास्तव रूप सुजाना। जासु करै न कोउ अपमाना ॥
अहै तासु आश्रय जो आदी। चित संवेदन स्फूर्ति अनादी ॥
अहं ममत्व जोइ सवेदन। होयफुरनलागतिहै छनछन ॥
अहं स्फूर्ति अहुइंद्रि वहोरी। जब यह फूर्ना होय करोरी ॥
संत शास्त्रही के अनुसारा। तब वह पुरुष सुजानउदारा ॥
परम शुद्धता को रघुराई। प्राप्त होत है जो सुखदाई ॥
अरु जो तिहि अनुसार न होई। तब वासनानुसारहि सोई ॥
भाव अभाव रूप अहु जोई। यह भ्रमजाल दीखु सबकोई ॥
तामें घटी यंत्र की न्याई। भटकत रहत परो तिहिठाई ॥
भै यह प्राप्त सिद्धता जाही। सो निज पुरुषारथ करिताही ॥
बिनु पुरुषार्थ सिद्धता आई। प्राप्त न होत काहु को भाई ॥
ग्रहण करिय कोऊपदार्थजब,। भुजा पसारि ग्रहणकरियेतब ॥
अरु जब कोउ प्राप्त चहुँ देशा। तबचलिपहुँचहुसहिबहुक्लेशा ॥
दो०। अपरअन्यथा होतनहिं ताते बिनु पुरुषार्थ।
देखिलेहुतुमसिद्धि कछुहोततात नहिं स्वार्थ ॥

अरु सत्शास्त्रहु के अनुसारा। पुरुषारथ करु वारहिं वारा॥
सो उत्तम पदवी कहँ पाई। मोकहँ देत सदैव लखाई॥
पुरुष प्रयत्न जु नर करि भाई। ताको सकल सम्पदा आई॥
प्राप्त होत नित नूतन रूरे। परमानन्द ह्वै रहे पूरे॥
दो०। जैसे रत्नहु करि उदधि पूरण रहत अरोग।
तैसे परमानन्द करि पूरणभे यह लोग॥
सो०। ताते पुरुष उदार श्रेष्ठ सुनिज पुरुषार्थकरि।
तिहि द्वारा संसार के बंधन ते जात छुटि॥

छंद उल्लाल॥

जिमि केशरि सिंह जु जातछुटि पिंजरते बलकै निजहि।
तिमि वह अपने पुरुषार्थ करि जगबंधनते चलु निवहि॥
यह पुरुष अवरकछु नाकरै तो अवश्य इतनाहिं करु।
जो अपने वर्णाश्रमाहिंके अनुसारहि जगमें विचरु;॥
दो०। जो संतहु अरु सार शास्त्रहुको आश्रय होय।
तानुसार पुरुषार्थ करु तब सब बंधन जोय॥
सो०। तासों होवै मुक्त अरु जो पुरुषारथ तजत।
मानि मूढकरि युक्त और कोउ दैवहिकहत॥
चौ०। वह मेरोकरिहैकल्याना। जो यह निजमनमेंअनुमाना॥
जन्म मरण सो पावत जैहै। अपर शांति कबहूँनहिं ह्वै है॥
लाग्यो जीवहि जो यह लोगा। जग रूपी बिशूचिका रोगा॥
ताहि करनको दूर उपाई। कहत अहौं; हेराम! बुझाई॥
सज्जन अरु सत्शास्त्र अर्थ महँ। दृढ भावना करै ताही पहँ॥
जो कछु सुना तासुकी आसा। बार २ करु तिहि अभ्यासा॥
औरहु सकल कल्पना त्यागी। करुचितवनयकान्तःतिहिलागी॥
तब यह जीव परमपद पावै। द्वैत भरम निवृत ह्वै जावै॥
दो०। अपर अद्वैत रूपढा भासै ताहि तुरन्त।
पुरुषारथअहुयाहिकोनामकहतसबसन्त॥

परम पुरुपार्थोपमा वर्णन ॥

दो०। याको करि पुरुपार्थ आध्यात्मिक आदिकताप, ।
प्राप्त होत सव तासु करि शांति न पावत आप ॥
तुमहूँ रोगी होहु जनि निज पुरुपारथ युक्त ।
जन्म मरण के बंध ते होहु वेगही मुक्त ॥
सो०। अवर न कोऊ देव मुक्तकरनको अहैं कहुँ ।
निज पुरुपारथ भेव मुक्तहोत जगभवैतें ॥
निजपुरुपारथ त्याग कीन मूढ़ जो पुरुपने ।
अपर देव तिहिलाग भयो परायणतासुके ॥
चौ०। ताकोधर्म अर्थअरुकामा। मोक्ष नष्ट ह्वै जाइहि रामा ॥
अरु नीच ते नीच गति पाई। पैहैं दुःख नरक महँ जाई ॥
हे रामजी ! शुद्ध चैतन्या। जो इहि अपनो आपनअन्या ॥
अपर सुवास्तव रूप सुजाना। जासु करै न कोउ अपमाना ॥
अहै तासु आश्रय जो आदी। चित सवेदन स्फूर्ति अनादी ॥
अहं ममत्व जोइ सवेदन। होयफुरनलागतिहै छनछन ॥
अहं स्फूर्ति अहुइंद्रि वहोरी। जव यह फूर्नी होय करोरी ॥
संत शास्त्रही के अनुसारा। तव वह पुरुप सुजानउदारा ॥
परम शुद्धता को रघुराई। प्राप्त होत है जो सुखदाई ॥
अरु जो तिहि अनुसार न होई। तव वासनानुसारहि सोई ॥
भाव अभाव रूप अहु जोई। यह भ्रमजाल दीखु सवकोई ॥
तामें घटी यंत्र की न्याई। भटकत रहत परो तिहिठाई ॥
भे यह प्राप्त सिद्धता जाही। सो निज पुरुपारथ करिताही ॥
विनु पुरुपार्थ सिद्धता आई। प्राप्त न होत काहु को भाई ॥
ग्रहण करिय कोऊपदार्थजव , । भुजा पसारि ग्रहणकरियेतव ॥
अरु जव कोउ प्राप्त चहँ देशा। तवचलिपहुँचहुसहिवहुक्लेशा ॥
दो०। अपरअन्यथा होतनहिं ताते विनु पुरुपार्थ ।
देखिलेहुतुमसिद्धि कछुहोततात नहिं स्वार्थ ॥

सबतनसों सबवार चेष्टा करवावत बहुरि ॥
दो०। सोचेष्टा कछु होतनहिं तातेपुरुष समर्थ।
जानत हैं जो दैव को शब्द अहै सो व्यर्थ ॥
चौ०। पुरुषारथ कीवार्त्ता भाई। अज्ञानीहु प्रत्यक्ष लखाई ॥
अपने पुरुषारथ विनु जोई। काहु भाँति ते कछु नाहिं होई ॥
गौपालहु यह जानत आहीं। जो गैयहिं चराय हौं नाहीं ॥
तो वह रहि जावैं गी भूखी। तासों रहिहिं निरंतर दूखी ॥
ताते और दैव की आसा। वैठि रहत नहिं करिविश्वासा ॥
आपहि तिहि चराय लै आवै। कवहुँ न आश दैव पर लावै ॥
दैव कल्पना भ्रम करि करहीं। अवर दैवतो नहिं लखिपरहीं ॥
हस्त पाद शरीर तिहि केरा। कोउ न मोहिं लखात घनेरा ॥
दो०। अरु अपने पुरुषार्थ करि यह सिद्धतालखाहिं;।
दैवहिं रहित अकार कौ कल्पिये बनत नाहिं ॥
सो०। काहे जु निराकार अरु होवै साकार को।
किमि संयोग, उदार; अपर सुनहु,हेरामजी! ॥
छंदमत्तगयंद।
और न दैव लखात कहूँ यह दैव निजै पुरुषारथ आहीं।
दैवहि रूप अहै नृप सो सब ऋद्धिहु सिद्धिहु युक्त लखाहीं ॥
सो अपने पुरुषारथ के वल ते प्रकटे धरणी तल माहीं।
जो यह गाधि तनै तिसने तजु दूरहि ते यह शब्द तहाहीं ॥
सो अपनी पुरुषारथ ते भय ब्राह्मण क्षत्रिय ते तुव पाहीं।
और विभूतिहु वान भये पुरुषारथ कै निज सो लखि जाहीं ॥
दैव करै जु पढ़े विनु पण्डित जानिय दैवहि कीन जनाहीं।
सो पढ़िवे विनु होत यहीं कहुँ देखि विचारहु पंडित नाहीं ॥
दो०। अरु जो ज्ञानी पुरुष ते ज्ञानवान है जात।
सोऊ निज पुरुषार्थ करि होय जात सवतात ॥
सो०। ताते दैव न कोउ मिथ्या श्रम को त्याग करि।
सज्जन सत्शास्त्रोउ के अनुसार प्रयत्न करु; ॥

चौ०। जग सागरते तरिबे हेतू। करहु प्रयत्न भानु कुल केतू॥
तव पुरुपारथ विनु जगमाहीं। और दैव कोउ अहै नाहीं॥
अवर दैव जो हो तो कोई। तो वहु वेर क्रिया वल जोई॥
ताको त्यागि रहत नर सोई। दैवहि परा करिहि निज ओई॥
सो तौ कौन करत अस याते। अपने पुरुपारथ विनु ताते॥
कछुकं नसिद्ध होत असचीन्हा। अरुन होत कछु याकोकीन्हा॥
तो ये पाप के करने हारे। कोटिन जाते नरकहु द्वारे॥
पुराय करय्या स्वर्ग न जाते। ताते पुरुपारथ करि पाते॥
दो०। पाप करैया नरक में जातअहैंसव कोय।
पुराय करय्या स्वर्गको ताते प्राप्तजु होय॥
सो०। सो सव जो नर पाव अपनेही पुरुपार्थ करि।
वेद शास्त्रजिहि गाव सोई करत विचारि हम॥

छंदतिलका।

करुदैवहिजो। कहुऐसनसो। तिहिकेशिरको। तवकाटिय जो।
तिहिआश्रयकै। जिवतै जुरहै। तवजानियकी। अहुदैवहु भी॥
दो०। सो तौ जीवत कोउ नहि ताते दैवहिअन्त।
मिथ्याअरु भ्रम जानिकै सत्शास्त्रहुअरुसन्त॥
सो०। के अनुसार प्रमान तुम अपने पुरुपार्थकरि।
आत्मपद विपे आनहोओ सीतारामास्थित॥

परमपुरुपार्थ वर्णन॥

दो०। हे भगवन् सव धर्मके वेत्ता-तवकहुराम।
कहौऔर कौ दैवनहिं कहूं नताको ठाम॥
अहैदैव पर ब्राह्मणौ कहु ऐसो सव लोग।
अरुसव कछुताको कियो होतपरे संयोग॥
चौ०। अरुसुख दुखसव देनेहारा। दैव अहै; प्रसिद्ध संसारा

सबतनसों सबबार चेष्टा करवावत बहुरि ॥
दो० । सोचेष्टा कछु होतनहिं तातेपुरुष समर्थ ।
जानत हैं जो दैव को शब्द अहै सो व्यर्थ ॥
चौ० । पुरुषारथ कीवार्त्ता भाई । अज्ञानिहु प्रत्यक्ष लखाई ॥
अपने पुरुषारथ विनु जोई । काहु भाँति ते कछु नाहिं होई ॥
गौपालहु यह जानत आहीं । जो गैयहिं चराय हौं नाहीं ॥
तो वह रहि जावैं गी भूखी । तासों रहिहिं निरंतर दूखी ॥
ताते और दैव की आसा । वैठि रहत नाहिं करिविश्वासा ॥
आपहि तिहि चराय लै आवै । कवहुँ न आश दैव पर लावै ॥
दैव कल्पना भ्रम करि करहीं । अवर दैवतो नहि लखिपरहीं ॥
हस्त पाद शरीर तिहि केरा । कोउ न मोहिं लखात घनेरा ॥
दो० । अरु अपने पुरुषार्थ करि यह सिद्धतालखाहिं; ।
दैवहिं रहित अकार कौ कल्पिये बनत नाहिं ॥
सो० । काहे जु निराकार अरु होवै साकार को ।
किमि संयोग, उदार; अपर सुनहु,हेरामजी! ॥
छंदमत्तगयंद ।
और न दैव लखात कहूँ यह दैव निजै पुरुषारथ आहीं ।
दैवहि रूप अहै नृप सो सब ऋद्धिहु सिद्धिहु युक्त लखाहीं ॥
सो अपने पुरुषारथ के बल ते प्रकटे धरणी तल माहीं ।
जो यह गाधि तनै तिसने तजु दूरहि ते यह शब्द तहाहीं ॥
सो अपनी पुरुषारथ ते भय ब्राह्मण क्षत्रिय ते तुव पाहीं ।
और विभूतिहु वान भये पुरुषारथ कै निज सो लखि जाहीं ॥
दैव करै जु पढे विनु पण्डित जानिय दैवहि कीन जनाहीं ।
सो पढ़िवे बिनु होत यहीं कहुँ देखि विचारहु पंडित नाहीं ॥
दो० । अरु जो ज्ञानी पुरुष ते ज्ञानवान है जात ।
सोऊ निज पुरुपार्थ करि होय जात सबतात ॥
सो० । ताते दैव न कोउ मिथ्या भ्रम को त्याग करि ।
सज्जन सत्शास्त्रोउ के अनुसार प्रयत्न करु; ॥

तासों जीव करत यह पाया। जु पूर्व पुण्य कर्म कियआपा ॥
तौ विचरत शुभ मारग माहीं। बोले राम--मुनीश्वर पाहीं ॥
दृढ़ वासना पूर्व अनुसारा। विचरत यह सारा संसारा ॥
तो हों कहा? करों सु प्रवीना। सो वासना मोहिं कियदीना ॥

दो०। अब मोको कर्त्तव्य क्या? कहहु नाथ तुमसोय।
कहु वशिष्ठ-- जो वासना दृढ़ पूरव की होय ॥

छन्द घनाक्षरी। बहुरि वशिष्ठकहे--सुनहु हे राम जीव ! पूरव की वासना जो कछु दृढ है रहे। रहु तिहिभाँति श्रेष्ठ नर निज पुरुषार्थ सों पूर्व के मलीन संस्कारनको ध्वैरहैं ॥ ताकोमल दूर होत सत्शास्त्र ज्ञानवान् वचनानुसार निज पुरुषार्थ कै रहैं। तबै मलीन वासनाहू दूरि होयजाय याही भाँति रहहु तुमारी सदा जैरहैं ॥ पूर्वके मलीन पापकैसे जानिये औशुभ कैसेजानिये ताहि तात श्रवण कीजिये; । जो विषैकी ओर चित्तधावै अरुशास्त्रमार्ग के विरुद्ध जावै शुभपै न पायदीजिये ॥ तबतुम जानिये जो पूर्व को मलीन कर्म कोउहै हमार जाते अयशये लीजिये। पुनिसंत जन औ सत्शास्त्र अनुसार करैं चेष्टा जगसांगत विरक्त पाप छीजिये; ॥

सो०। तब तुम लीजिय जानिकर्म शुद्ध अति पूर्व को।
ताते ल्यो यह मानि तोहि दोउकरि शुद्धता ॥

चौ०। जुपूर्वसंसकारशुद्ध तेरा। ताते अति शीघ्रहि चित हेरा ॥
सन्तसंग सत्शास्त्रहु वाचा। ग्रहणकरियतवचितनहिंकाचा॥
वेगहि मिलिहि आत्मपदतोही। जो तवचित शुभमारगसोही ॥
थिरन होय तो पुरुपारथ करि। पार होहु भवसागरको तरि ॥
तुम चैतन्य अहहु जडनाहीं। करहु आश निज पुरुपार्थाहीं ॥
आशीर्वाद यही पुनि मेरा। शुभ मग में है थिर चिततेरा ॥
जु ब्रह्म विद्या हू को सारा। तामें इस्थिति होय तुमारा ॥
अहै जु श्रेष्ठ पुरुष पुनि वाहू। संसकार जेहि पूरव काहू ॥
यद्यपि ताको अधिक मलीना; । वरण सन्त सत्शास्त्र अधीना ॥

कहवशिष्ठ-- हे राम! सुजाना । हौं तुम पहँ यह बात बखाना ॥
ज्यों भ्रम निवृत्त होयतुमारा । कियो कर्म है याको सारा ॥
शुभ वा अशुभ तासु फलजोई; । अवश्य मेव भोगना सोई ॥
दैव कह्यो; पुरुषारथ; ताहीं । और दैव कोऊ अहै नाहीं ॥
कर्त्ता क्रिया कर्म सब माहीं । नहीं दैव कौ कतहुँ लखाहीं ॥
नहिं कौ थान दैव को अहहीं । रूपन;और दैव क्या? कहहीं ॥
मूर्खन के परचावन हेतू । दैव शब्द सब कहत सचेतू ॥
अहै जैसहीं शून्य अकाशा । तैसे दैव शून्य अन्यासा ॥
कहा राम--हे भगवन्! साईं । सर्व धर्म वेत्ता मुनि राईं ॥
कहहु अवर न दैव कौ भाई । अहै शून्य अकाश की न्याईं ॥
तुमरे वचन कहन हूं सोईं । दैव सिद्ध ताहू सों होईं ॥

दो० । कहहु दैव जो यासुके पुरुपारथ को नाम ।
दैवशब्द यहिजगविषे बहु प्रसिद्धसब ठाम;॥

छंदसंजुभाषिनी । यहलाग कहौकह--रामजीयसों! । जिहिदैव शब्दउठिजायहीयसों ॥ यहअर्थ--शून्यपरिजायबामको । पुरुपार्थ निजै अहदैव नामको ॥ पुरुपार्थ नाम शुभकर्मको अहैं । अरुकर्म नाम वासना को कहैं । अरुवासनाहु मनतेहि होत है । मनरूप पूर्ण जगमें उदोत है ॥

सो० । अरु सोई यह पाव करत जासु की वासना ।
जब यह चाहत गाव तब पावतयह गॉवको ॥

चौ० । पत्तनकीवासनाकरु जोई । ताको प्राप्त पत्तनहिं होई ॥
ताते और दैव कौ नाहीं । शुभ वा अशुभजो पूरबमाहीं ॥
जोई दृढ़ पुरुपारथ कीन्हा । भला बुरा एकहु नहिं चीन्हा ॥
सुखअरु दुःख तासु परिणामा । होइ अवश्य दैव तेहि नामा ॥
तुम विचारकरि देखहुताता; । निज पुरुपार्थ कर्म ते राता ॥
भिन्न न तो सुख दुख धनहारा, । लेनहार न दैव कौ न्यारा ॥
क्यों? जु पाप की वासना करई । शास्त्र विरुद्ध कर्मचित धरई ॥
सो काहे यह होत अपारा । दृढ़ पुरुपार्थ पूर्व अनुसारा ॥

यह चित जगके भोगहि औरा। भोगहि रूप खाड में दौरा॥
तामें याहि गिरन जनि देहू। विरसजानि तजि देहु सनेहू॥
परम मित्र वहु ह्वैहै तेरा। त्यागि देहु अरु करहु घनेरा॥
जासों वहुरि ग्रहण नहिं होई। मोक्ष उपाय संहिता सोई॥
चित एकाग्र करि याको सुनहू। परमानन्द पायके गुनहू॥
प्रथमै शम अरु दमको धारहु। अर्थ जु सम्पूरण संसारहु॥
की वासना त्याग करि देऊ। उदारता करि तृप्त रहेऊ॥
याको नाम अहै शम भाई। दमको अर्थ सुनहु मन लाई॥
वाह्य इन्द्रियनको वश करना। जब याको प्रथमै चित धरना॥
उपजै परम तत्त्व सु विचारा। तासु विचार विवेकहि द्वारा॥
प्राप्ति परम पद होय तुरंता। जासों दुख न होय पुनिअंता॥
अविनाशी सुख तोकों होई। मोक्ष उपाय संहिता जोई॥
करु पुरुषारथ तिहि अनुसारा। प्राप्त आत्मपद होइ उदारा॥
जो कछु ब्रह्मा पूरव माहीं। किय उपदेश आज हमताहीं॥
तुमको कहत राम समुझाई। चेतहु यह ह्वैहै सुखदाई॥

दो०। कहा राम—ब्रह्मा तुमहु कीन्हे जौन उपदेश।
सोकिहि कारण कियो अरु किमितुम धारयोवेश॥

सो०। कह वशिष्ठ—हे राम! चिदाकाशहै शुद्ध यक।
अरु अनंत तिहिनाम अविनाशीहै सो पुरुष॥

छंदरूपमाला। रूपपरमानन्द है अरु चिदानंद स्वरूप;। तिहिमाहँ संवेदन स्पंद स्वरूप परमअनूप;॥ सो विष्णुही करि थिति भई है विष्णुजी कसहोय,। जो स्पंद अरु निस्पंदमें है एक रस नहिंगोय,॥ अरु कदाचित् अन्यथा भावहि प्राप्तभो सो नाहिं;। जिमिजलथितवहुरंगविविधतरंगउपजतजाहि,॥ तिमि चिदाकाशहि शुद्धते अस्पंद करि उत्पन्न;। भैविष्णुजीयहिजगत में हैं सकल गुण संपन्न;॥

दो०। तासु विष्णुके स्वर्णवत किरन वाल जो जन्न।
नाभि कमल ते हैं भये ब्रह्मा जी उत्पन्न॥

दृढ पुरुषार्थ कियो करि दावा। सोऊ कबहुँ सिद्धता पावा॥
अरु जो मूरख जीव अभागा। सो निज पुरुपारथको त्यागा॥
तातें; जगते मुक्त न होई। पाप कर्म्म किय पूरब जोई॥
दो०। ताके मल करि पापमें धावत थिर नहिं पाव;।
पुरुपारथ तजि अन्धहै अरु विशेष करि धाव॥
छन्द किरीट। जो नरश्रेष्ठ तिन्हें कर्त्तव्य सु पांचहु इन्द्रिनको फो प्रथमै वश। शास्त्रनुसार तिन्हें बरताव करै शुभवासना को दृढ़ता अश॥ त्यागकरै अशुभै यदि त्यागनी वासना दोहू चहौ तुम जो यश। तो प्रथमै शुभ वासना को करि ढेरतजै अशुभै करिकैकश॥ शुद्ध सुवासनासों परिपक्क कँपाय जुहोयगो सुंदरही जब। "है शुद्ध अन्तःकर्ण,, हृदय महँ संत सिद्धान्त जु शास्त्रन को सब॥ तासु विचारभये तिहिते तुम आतमज्ञानहिं पावहुगे तब। होइहि तासन आतमको शुभसाक्षतकार हजारगुनाफव॥
दो०। क्रिया ज्ञानको त्याग तबहोय जाय अव वेश।
शुद्धद्वैतरूपहि सिरिफ भासिहि निज २ भेश॥
सो०। सकल कल्पना त्याग सन्त अवर सत्शास्त्र के।
अनुस्सार अनुराग युत पुरुपार्थ करहु सदा॥

वशिष्ठोपत्तिस्तथा वशिष्ठोपदेशा गमन बर्णन॥

दो०। कह वशिष्ठ--हे रामजी! ग्रहण करहु मम बैन।
बाँधवसम अरुताहिकहु परममित्र निजऐन॥
सो०। करि है रक्षा तोर दुःखहु ते हे रामजी!।
यह उपाय जो मोर मोक्ष ताहिहौं कहतहौं॥
चौ०। तानुसार पुरुपारथ कीजै। परमअर्थ सिधितब करिलीजै॥

यह चित जगके भोगहि औरा। भोगहिं रूप खाड में दौरा॥
तामें याहि गिरन जनि देहू। विरसजानि तजि देहु सनेहू॥
परम मित्र वहु ह्वैहै तेरा। त्यागि देहु अरु करहु घनेरा॥
जासों वहुरि ग्रहण नहिं होई। मोक्ष उपाय सहिता सोई॥
चित एकाग्र करि याको सुनहू। परमानन्द पायके गुनहू॥
प्रथमै शम अरु दमको धारहु। अर्थ जु सम्पूरण संसारहु॥
की वासना त्याग करि देऊ। उदारता करि तृप्त रहेऊ॥
याको नाम अहै शम भाई। दमको अर्थ सुनहु मन लाई॥
बाह्य इन्द्रियनको वश करना। जब याको प्रथमै चित धरना॥
उपजै परम तत्त्व सु बिचारा। तासु विचार विवेकहि द्वारा॥
प्राप्ति परम पद होय तुरंता। जासों दुख न होय पुनिअंता॥
अविनाशी सुख तोको होई। मोक्ष उपाय सहिता जोई॥
करु पुरुषारथ तिहि अनुसारा। प्राप्त आत्मपद होइ उदारा॥
जो कछु ब्रह्मा पूरब माहीं। किय उपदेश आज हमताहीं॥
तुमको कहत राम समुझाई। चेतहु यह ह्वैहै सुखदाई॥

दो०। कहा राम—ब्रह्मा तुमहु कीन्ह जौन उपदेश।
सोकिहि कारण कियो अरु किमितुम धारयोवेश॥

सो०। कह वशिष्ठ—हे राम! चिदाकाश है शुद्ध यक।
अरु अनंत तिहिनाम अविनाशीहै सो पुरुष॥

छंदरूपमाला। रूपपरमानन्द है अरु चिदानंद स्वरूप;। तिहिमाहँ संवेदन स्पंद स्वरूप परमअनूप,॥ सो विष्णुहीकरि थिति भई है विष्णुजी कसहोय;। जो स्पंद अरु निस्पदमें है एक रस नहिंगोय,॥ अरु कदाचित् अन्यथा भावहि प्राप्तभो सो नाहिं,। जिमिजलधितेवहुरगविविधितरंगउपजतजाहिं;॥ तिमि चिदाकाशहि शुद्धते अस्पंद करि उत्पन्न,। भैविष्णुजीयहिजगत में हैं सकल गुण संपन्न,॥

दो०। तासु विष्णुके स्वर्णवत किरन वाल जो जन्न।
नाभि कमल ते हैं भये ब्रह्मा जी उत्पन्न॥

सो०। पुनि ब्रह्माजी सोय ऋषि मुनीश्वरनके सहित।
स्थावर जंगम जोय प्रजा युक्त उत्पन्न करि॥
चौ०। मनौराज्यकरिब्रह्मासोई। किय उत्पन्न जगत यह जोई॥
ताहीं जग के कोन समीपा। भरत खण्ड अरु जम्बू द्वीपा॥
तहँ आतुर दुखकरि नर देखी; । उपजी करुणा ताहिविशेखी॥
पुत्रहि देखि पिता को जैसे। करुणा उपजति ब्रह्महितैसे॥
तब ताके सुख हेत विधाता। तप उत्पन्न कीन्ह विख्याता॥
जासों सुखी होहिं नर नारी। आज्ञा करी करहु तपभारी॥
तब तप करत भये तिहि आगे। स्वर्गादिकहु लहन सङ्लागे॥
सो सुखभोगि गिरिहिपुनियाहीं ;। तब सो जीवदुखी रहिजाहीं॥
असलखि सत्यबाक चतुरानन ;। धर्महिं करतभये प्रतिपादन॥
तिनके सुखहित आज्ञा कीन्हा; । तासु धर्म प्रतिपादन चीन्हा॥
लहन लगे लोकहु सुखआला। बहुरिगिरिहिकरिभोगविशाला॥
बहुरि दुखी के दुःखी रहहीं। तहँ गिरि बिबिधकष्टकोसहहीं॥
दो०। बहुरि दान तीर्थादिकहु पुण्यक्रियाउपजाय।
उनको आज्ञाकीन जो सेवत तिनहिं अघाय॥
सो०। सुखीहोहुगे तात जब सेवनलागे तिनहि।
प्राप्त ह्वै भये जात महा पुण्य के लोकको॥

छंद गीता॥

भोगनलगे सुख तिनहुंके पुनि बहुतकाल प्रमान।
निज कर्म के अनुसार करिकै भोगि गिरतसुजान॥
करिकै बहुत तृष्णातबै सुख दुःख को नर पाय।
जन्मरु मरण के दुःख ते भै महादीन सुभाय॥
अरु देखिआतुर दुःखकरि विधिके मनहिंयहआय।
जिहि दुःख निवृत होय ताते करिय सोयउपाय॥
हे राम ! ब्रह्मा जी विचारत भये जबधरिध्यान।
ह्वै है न निवृत दुःख याको विना आतम ज्ञान॥
दो०। सुखी होहि; उपजाइये ताते आतम ज्ञान।

यहविचारिपुनिकरतभेआत्मतत्त्वकोध्यान ॥
सो०। आत्मतत्त्वके ज्ञान ते संकल्प कियो तबहिं।
करनेते तिहिध्यान तत्त्वज्ञान जो शुद्धयह ॥
चौ०। ताकीमूर्त्ति होयहौं भेऊं। सो सुजान हौं कैसो हैऊं ॥
जो विधि के समान हौं नाथा। जिमि कमण्डुरहउनकेहाथा ॥
तैसे हाथ कमण्डलु मेरे। जिमि रुद्राक्ष माल उन केरे ॥
तिमिममकण्ठ बीचसो माला। जिमि उनके ऊपरमृगछाला ॥
तिमि मृग छाला मेरे ऊपरु। यहि प्रकार ब्रह्माजी को अरु ॥
मेरो अहै समान अकारा। शुद्ध ज्ञान रूपहू हमारा ॥
मोको जग भासत कछु नाहीं। जग सुषुप्तिइव मोहिलखाहीं ॥
तब ब्रह्मा जी कीन्ह विचारा। जो याको हौं यहि संसारा ॥
जीवहि के कल्याणहि हेतू। किय याकी उत्पत्ति सचेतू ॥
शुद्ध ज्ञान स्वरूप यह अबहीं। अरु अज्ञान मारगहि तबहीं ॥
शुभ उपदेश होय यह सबहीं। कछु प्रश्नोत्तर होवै जबहीं ॥
तब मिथ्या को होय विचारा। करत विचार हरतदुखसारा ॥
दो०। जीवहु के कल्याण हित गोद लियो बैठाय।
फेरयो कर मम शीशपर शीतलभयो सुभाय ॥
सो०। जिमि शीतलता होय तनको शशिकी किरन सों।
तैसे शीतल सोय सारी भई शरीर मम ॥

छन्द इन्द्रवज्रा ॥

ब्रह्मा मुझे जैसेहि हंसकाही। हंसे कहैं मोकहँ भांतिवाही ॥
कल्यान को जीवहु के विचारो। अज्ञान को काल कछूक धारो ॥
जो श्रेष्ठ हैं सो अवरोहु हेतू। आवे मही बीच रहे अचेतू ॥
जैसे रहै निरमल चन्द्र आभा। पै अंगिकारोहु श्यामता भा ॥
दो०। तिमि अज्ञान मुहूर्त्त भर कीजै अंगीकार।
शापमोहिं विधिने दियो, रघुवर!यही प्रकार ॥
सो०। हैहो तुम अज्ञान तबहीं ब्रह्मा जीव की।
आज्ञालीन्हीमान शापहिअंगीकार किय ॥

चौ०। आतमशुद्धतत्त्व,तवमेरा। अपुना आप जो रहा हेरा॥
ताके मैंहु अन्य की नाईं। होत भया;हे राम! गुसाईं॥
यह मेरी जो स्वभाव सत्ता। मोंको भई विस्मरण मत्ता॥
अवर जागि मेरो मन आया। भाव अभाव रूप दरशाया॥
अरु वशिष्ठ आपुहि हौं जाना। ब्रह्मा को सुत यों करिजाना॥
जग जान्यों पदार्थ युत नाना। चंचल होत भयोतिहि प्राना॥
तब गुनिजगजालहिं अतिछूंछा। दुःख रूप ब्रह्मा सन पूंछा॥
हे भगवन्! कैसे संसारा। उपजतअरु विनशतयकवारा॥
हे रामजी! पितहिं यहि भांती। पूँछौ लखि करुणाकी कॉती॥
किय उपदेश भली परकारा। मम अज्ञान नष्ट भा सारा॥
अरुणोदय तप निवृत जैसे। मम अज्ञान निवृत भा तैसे॥
अपर शुद्धताको हौं लीन्हे। जिमि आदर्शहिमाजनकीन्हे॥

दो०। शुद्ध होत तिमि हौं भयों अवर सुनों हे राम!।
ब्रह्माजीते हौं अधिक होत भयों तिहि याम॥

सो०। आज्ञा कीन्हीं मोरि परमेष्ठी ब्रह्मा सुनहु;।
जम्बुद्वीप की ओर भरत खण्डको जाहुतुम॥

छन्दकाव्य। तुमको अष्टप्रजापतिको अधिकार मिलैगो।
उपदेशहु तहँजाय जिवहिं तव मोदखिलैगो॥
जाहि तहां संसारी सुखकी इच्छा होवै।
कर्म मार्ग उपदेशहु जाते सब दुख खोवै॥
तिसकारि स्वर्गादिक सुखभोगेंगे सबकोई।
अरु जगते विरक्त ह्वै पावहिंगे सुखसोई॥
सो जिनको आतम पदकी शुभ होवै इच्छा।
ताहि ज्ञान उपदेश्यो करि बहुभांति परीच्छा॥

दो०। ताते अब भूलोकमें जाहुतात करिक्लेश।
यहि प्रकार उपजत भये मोकहँ शुभ उपदेश॥

सो०। आवन भा यहिभांति सीताराम विचारि तुम।
खलमण्डली जमाति तजिकै भजु हरिहर चरण॥

वशिष्ठोपदेश वर्णन ॥

दो०। पुनिकह मुनि-हेरामजी! यहिप्रकारजगमाहिं।
मेरोहू भावनभयो में कैसो हों जाहिं ॥
सो०। ज्ञानहिं वांछा कोय; ताहिपूर्ण करिवेहि हितु।
उपजावतभै सोय; मोंकोकहि यह,वैन पितु ॥
चौ०।कहा,रामजी-हेभगवाना!। यह शुभउत्पतिते तिहिसाना॥
शुद्ध अनन्त जीवकी, कैसे। भई; सुनावहु मोकहँ तैसे॥
कहँ वशिष्ठ-हेराम! गुसाँई। आतम शुद्धि तत्त्व जो भाई॥
तासु स्वभाव रूप सम्वेदन। स्फूर्ति अहै जाको नहिं छेदन॥
सो विधिरूप होय स्थितभावर। जिमि समुद्र अपनीद्रवताकर॥
होत तरंग रूप तिमि भयऊ। पुनि सम्पूर्ण जगत सो ठयऊ॥
अरु उत्पन्न कीन्ह तिहुँकाला। तव वीत्यो बहुकाल कराला॥
पुनि कलियुग आयो अतिहीना। भई जीवकी बुद्धि मलीना॥
पाप विषे तव विचरन लागे। शास्त्र वेद आज्ञा सब त्यागे॥
याही भाँति धर्म मरयादा। छिपी; पाप प्रकटत भाज्यादा॥
राज, धर्म मरयादा जेती। सो सब नष्ट होतिभै तेती॥
निज,२ इच्छा के अनुसारा। विचरन लगे जीव यकवारा॥
पावन लागे कष्ट विशेखी। विधिहिभई करुणातिहिदेखी॥
सोइ दया धारण करि ओहीं। भूमि लोक महँ भेज्यो मोहीं॥
और कहा, हेराम! देइ मन। कियो धर्म मर्यादा स्थापन॥
जीवहिं करौ शुद्ध उपदेशा। भोगहु की इच्छा जिहि वेशा॥
दो०। तिहि कीजे उपदेश तुम कर्म काण्ड को वेश।
संध्या जप अस्नान तप यज्ञादिक उपदेश॥
सो०। अवर मुमुक्षु विरक्त जो अरु चाहत परमपद।
ताहि तुम यथा शक्त ब्रह्म सुविद्या को कियो॥

छंद सारावती॥

हे हरि! जौन प्रकार सिखै। मोकहँ भेज्यहु लोक्य विखै॥

तैसहिं सन्त कुमार गये—। नारदहू कहँ देत भये— ॥
सीख ; सबैहि महीश्वर के। कीन विचार जुटै कर के ॥
क्यों जग की मरयाद सरै। जीव मार्ग शुभ में बिचरै ॥
दो०। तव हम कीन बिचार यह प्रथम राज्य व्योहार।
स्थापिय जीव बिचारही जिहि आज्ञा अनुसार ॥
सो०। स्थापिय प्रथमहि भूप रहे दण्ड कर्त्ता जु वह।
कैसो सोउ अनूप वीर्यवान जो होय अति ॥
चौ०। तेजवानअतिआत्मउदारा। उपदेश्योंहौं तिनहिंभुवारा॥
सुअध्यात्म विद्याहिं सुनावा। जासों परम पदहिं सो पावा॥
परमानन्द रूप अविनाशी। सोइ ब्रह्म विद्या अवकाशी॥
सो उपदेश भयो तिहि जवहीं। सब अति सुखी होतभे तवहीं॥
यहि कारण तिहि विद्यानामा। पराराज्य विद्या सुललामा॥
तवहिं शास्त्र श्रुति वेद पुराना। करि मरयाद धर्म की ठाना॥
जप, तप, यज्ञ,दान;स्थानादी। कीन्ह्यो प्रकट क्रियासबवादी॥
अरे जीव! सेवन ते याके। सुखी होहुगे हरि रुख ताके॥
तवहीं सो सब फलको धारी। सेवन लगे तिनहिं नर नारी॥
तामें कौ यक निरहंकारा। हृदय शुद्ध हित क्रममन यारा॥
अरु जो मूर्ख रहे सो भूली। कामना निमित मनमें फूली॥
कर्म करत तब रहे सुभाई। भटकहिं घटी यंत्रकी नाईं॥
आवत कवहुँ ऊर्ध्वकभु नीचे। जो निष्काम कर्म्म करु खचि ॥
होत शुद्ध हिय ताको भारी। होत ब्रह्म विद्या अधिकारी॥
अरु ताके उपदेशहि द्वारा। प्राप्ति आत्मपद होत हजारा॥
जीवन्मुक्त भये यहि काजा। विदितभेद भै कै सिधिराजा॥
दो०। सो चलावते आवते परंपरा निज राज।
मोरेही उपदेश करि पायो ज्ञान समाज॥
सो०। अरु पुनि दशरथ राय ज्ञानवानभे सोउभी।
यही दशाको आय प्राप्त भयो तुमहूं अवहिं॥
छंदनील। सोतुम श्रेष्ठभयो अवहीं सबसो अतिहीं; । ज्योंहीं

विरक्तआत्महुमेंशुभकैमतिही ; ॥ त्योंपहिलेहि स्वभाविकआत्म विरक्तभये । सोउस्वभावहिसे तनशुद्ध कियेहिठये ॥ याहिय कारणते तुम श्रेष्ठभये अबहीं । कोउ अनिष्ट जु पावतहैं दुखको तबहीं ॥ तासन होय विरक्तहुजो तुम सो न भई । तो कहँ इन्द्रिय सर्वहि विषे लखायदई ॥

दो० । तैसे होत तुमहिं भयो तात प्राप्त वयराग ।
त्योंहिअहैं सब श्रेष्ठअति, श्रेष्ठअधिक तवभाग ॥

दो० । हे राम जी! मशान आदि कष्ट के भस्थान कहँ ।
सब को ताके ध्यान से उपजत वैराग्य अति ॥

चौ० । कछुन अहैयकदिन मरिजाना । जोकौनरहैंश्रेष्ठसुजाना ॥
सो वैरागहि अति दृढ़ राखै । मूरख पूरि विषय अभिलाखै ॥
ताते जिहि वैराग अकारण । सोई पुरुष श्रेष्ठ साधारण ॥
हे राम जी! श्रेष्ठ नर जोई । स्व अभ्यास विराग बलसोई ॥
होहि मुक्ति जग बंधन छोरी । जिमि हाथी नग बंधन तोरी ॥
निज बलसों बाहर कढ़ि जाई । सुखी होत तब आनँद पाई ॥
तिमि विराग अभ्यास जोरकर । छूटत बंधन ते ज्ञानी नर ॥
महा अनर्थ रूप संसारा । जो नर निज पुरुषार्थ प्रचारा ॥
बन्धन को नहिं तोरि बहावत; । तिनहि राग दोषाग्निजरावत ॥
जो पुरुषार्थकरि शास्त्रहिमाना; । गुरु प्रमाण करिकै सा ध्याना ॥
सोई नर वहि पद को पाया । ताको कोउ सकै न सताया ॥
आध्यात्मिक दैविक तिहि भाई । भौतिकताप सकै न जराई ॥

दो० । जैसे वरषा काल में बहु बरषत बन माहिं ।
तबपुनि दावानल बनहिं कोटि जारि सकु नाहिं ॥

सो० । तिमि ज्ञानिहिं नहिंआप दुराचार करिकै कबहुँ ।
आध्यात्मिकादिकताप कष्टदेत नाहि काहुविधि ॥

छन्द पंकजवाटिका ॥

नर श्रेष्ठ जिन्हें संसार लाग । अति ते रस जानै कौन त्याग ॥
न सकै पदार्थ ताको गिराय । तिहि गेरि देत जो मूर्ख भाय ॥

परि तीक्ष्ण वेग आँधी झँझार। गिरि वृक्ष पौन लागे अपार॥
पर कल्प वृक्ष क्योंहू गिरै न। तिमि; रामचन्द्र हे! धर्म ऐन॥

दो०। श्रेष्ठ पुरुष अति सोय जिहि विरस भयो संसार।
इच्छा आतम तत्त्व की भै ताही आधार॥

सो०। तिनहीं को अधिकार नित्य ब्रह्म विद्याहि को।
उत्तम नर सुकुमार तुमहूं उज्ज्वलपात्र तिमि॥

चौ०। जिमिव्वैकोमलबीजधरामें। तिमिउपदेशतुम्हेकरतामें॥
जाहि भोग की इच्छा घोरा। करतयतन पुनिजगकी ओरा॥
पशुवत् सोई श्रेष्ठ नर वाही। है पुरुषार्थ तरन की जाही॥
हे राम जी! प्रश्न तिहि पासा। करहु जानिवे में जिहिआसा॥
मेरे प्रश्न करन महँ जोई। उतर देन को समरथ होई॥
जिहि समरथन रहै तिहिमाही। तासों प्रश्न करन नहिंचाही॥
जिहि समरत्थ देखिये तामें। वचन भावना होय न जामें॥
तवहूं प्रश्न करिय नहिं तासों। पाप होत जु दम्भकरि यासों॥
तिनहिं करत गुरुहू उपदेशा। है वेते विरक्त जग क्लेशा॥
केवल आतम परायण हेतू। श्रद्धा होवै रवि कुल केतू॥
आस्तिकभाव होय अस भाजन। देखि करै उपदेश अकाजन॥
हे रामजी! गुरु अरु चेला। दोऊ उत्तम होत सु वेला॥

दो०। वचन शोभु तब; तुम अहहु शुद्ध पात्र उपदेश।
जेते कछु गुण शिष्यके वरणत शास्त्र दिनेश॥

सो०। सब तेरे महँ राम पावहुँ अरु उपदेश महँ।
समरथ हौं तिहि काम होवैगो अति शीघ्रही॥

छन्द पायता॥

हे प्यारे! निर्म्मल अति ही। भै है तेरी शुभ मति ही॥
सारे सिद्धान्त जु वयना। तेरेही [illegible] अयना॥
जैसे ही सुन्दर पट [illegible] में। जावै [illegible] ८ में॥

तैसे तेरी बुद्धि हू शुभ गुण सों खिलि आय॥
सो०। जु कछु शास्त्र सिद्धान्त आत्म तत्त्वतोकों कहों।
तामें ह्वै बुधि शान्त करिहै शीघ्र प्रवेश तव॥
चौ०। निरमलनीरमाहँजिहिभांती। करतप्रवेशसूर्य्यकीकांती॥
आत्म तत्त्व में तव बुधि तैसे। करि शुद्धता प्रवेशिहि वैसे॥
हे राम जी! सामने तोरे। करहुँ प्रार्थना युग कर जोरे॥
जो कछु मैं उपदेश सुनावा। तामें कीजै आस्तिक भावा॥
हे कल्याण यहि वचन मोहीं। जो धारणा न होवै तोहीं॥
तो जनि कीजै प्रश्न घनेरा। जाशिष्यहि गुरु के वच केरा॥
ह्वै आस्तिक भावना प्रमाना। ताको शीघ्र होन कल्याना॥
मेरे वचन माहँ तुम ताते। आस्तिकभाव कियो मनसाते॥
और आत्म पद पैहौ जातें। सोहौं कहहुँ सुनहु सब बातें॥
प्रथमहिं कहहु मानिममवानी। असत बुद्धि जु जीव अज्ञानी॥
तिनको संग तजहु अति भारी। मोक्ष द्वार जु पौरिया चारी॥
तिन सों मित्र भावना कीजै। तब मनकोमनोर्थ निजलीजै॥
दो०। मित्र भाव मैं देइ सो मोक्ष द्वार पहुँचाय।
तुमहिं आत्म दर्शन तबहिं होवै गो रघुराय॥
सो०। द्वारपाल को नाम शम सन्तोष विचार सुनु।
सन्त संग अभिराम द्वारपाल हैं चारि यह॥

छन्द सुखमा॥

जानै इनको लीन्हा वश कै। सो मुक्तिहु द्वारै ते खसकै॥
सो चारिहु जो होवै वशना। सो तीनिहि को खूनै कसना॥
दोई वश वा एकै करिये। जो कै वश में एकै धरिये॥
एकै वश में होवै जबहीं। चारों वश में होवैं तबहीं॥
दो०। इन चारिहु को आप में अहै परस्पर नेह।
तहा आय चारिहु रहत एक करत जहँ गेह॥
सो०। इन सों नेह जु कीन्ह सुखी भये सो सर्वदा।
त्याग कीन्ह जिन चीन्ह दुखीरहत सो मूढ़नर॥

चौ० । यद्यपिहोतप्राणकोत्यागा । तौभीयक साधन करिलागा ॥
अति वल करिकैनिजवशकीजै । वश करियक चारिहुवशिलीजै ॥
एक वशत चारिहु वश नेहा । चारिहु केर परस्पर नेहा ॥
जहँ यक आवत तहाँ तुरन्ता । चारों आय रहत भगवन्ता ॥
जो नर इनसों स्नेह बढ़ावा । सुखीभये सो अतिसुखपावा ॥
अरु जो नरने इनको त्यागा । दुखी भये सो होय अभागा ॥
हे राम जी ! तुरन्त पयाना । यद्यपि त्याग होय निजप्राना ॥
तौहू यक साधनहि प्रवीना । वल करि कीजैनिजआधीना ॥
एकहिं वश चारों वश होई । अरु तव बुधिमें शुभगुनसोई ॥
आय कीन गंभीर निवाशा । जिमि दिनकरमें सर्वप्रकाशा ॥
तिमि संतन अरु शास्त्रसुबानी । जो निर्मल गुन कहावखानी ॥
सो तेरे में पैयत सारी । अव तुम भै ममवचअधिकारी ॥
दो० । जिमि तन्त्रीके सुननको, अन्दोलत चहुँओर ।
अति अधिकारी होतहैं तासु शब्दसुनिघोर ॥
सो० । चन्द्रोदयते कंज शशिवशी खिलिजात जिमि ।
तैसे शुभ गुन पुंज ते खिलि आई बुद्धि तव ॥
॥ छंद हरिपद ॥
संतसंग सत्शास्त्रहिद्वारा तीक्ष्ण किये ते बुद्धि ।
होत प्रवेशआत्मतत्त्वहिमें यहीबुद्धिअतिशुद्धि ॥
ताते श्रेष्ठ पुरुष सोई अहु जाने यह संसार ।
त्यागिदियोअतिबिरसऔरदुखदाईताहिविचार ॥
संत और सत्शास्त्रहिद्वारा करत अनेक उपाव ।
आतमपदहित सो अविनाशीपदकोवेगहिपाव ॥
अरु जो शुभमारगको तजिकै लगेजगतकीओर ।
सो हैं महा मूर्ख जड़ पापी पावेंगे दुख घोर ॥
दो० । शीतलता करि नीर जिमि वरफ़होत नरनाह ।
तिमि अज्ञानी मूर्खता करि दृढ़ आतमराह ॥
सो० । तजु जड़ है, हे राम ! अज्ञानी के हृदय विल ।

माहँ दुराशा धाम सर्प निरंतर रहु दुखद ॥
चौ०। पावतशान्तिकदापिनसोई। आनँदसेप्रफुल्लितनहिंहोई ॥
रहु संकुचित सदा आशाकर। सकुचुमांसजिमिअग्निमाहँपर ॥
आत्म पदहि साक्षात्कार महँ। आवरणे विशेष आशा रहँ ॥
घन आवरण होत रवि आगे। तिमि आवरण दुराशा लागे ॥
आत्मतत्त्व के आगे पूरी। आशा रूप आवरण दूरी ॥
जबै होय आतम पद तबही। शुभ साक्षात्कार है सबही ॥
हे रामजी! दूर तबै आशा। होय जबै नर करि विश्वाशा ॥
करै संत संगति सत्कारा। सत्शास्त्रहु को होय विचारा ॥
एक बड़ा जग रूपी तरुवर। छेदिजात सो बोध खड्गकर ॥
संत संग सत्शास्त्रनुसारा। तीक्ष्ण बुद्धि जबहोय उदारा ॥
तब जग रूपी भ्रम को रूपा। होत तुरत्त नष्ट अरु शूपा ॥
जब शुभ गुण होवै विधिनाना। आयविराजत आतम ज्ञाना ॥
दो०। जहाँकमल अरु भँवर जहँ स्थिति होतहें आय।
तब शुभगुण महँ रहत है आत्मज्ञानयहछाय ॥
छंद पद्धाटिका ॥
शुभगुण रूपी जबपवनजोत। इच्छा रूपी घन निवृतहोत ॥
तब आत्मा रूपी चन्द्र चारु। साक्षात्कार होवै उदारु ॥
जिमिशशिके उदयभएशिकाल। शोभतनित चारों आसपास ॥
तिमि आत्मा के साक्षात्कार। के;भए बुद्धितव खिलिहितार ॥

तत्त्वज्ञ माहात्म्य वर्णन ॥

दो०। गदगद कहा वशिष्ठ--हे राम! सर्वगुण धाम।
अब तुम मेरे वचन के अधिकारी अति धाम ॥
काहे; तप, वैराग, जो अरु विचार; सन्तोष।
आदि जु शुभगुण संतअरु शास्त्र कहे निरदोष ॥

चौ० । सोसब मैं तेरेमहँपायों । ताते अब यह बचन सुनायों ॥
रज;तमगुणकोत्यागिशुद्धअति ; ।सुनुह्वैसात्विकवानविमलमति॥
राजस विक्षेपहि ते जोई । तामस लय निद्रा महँ होई ॥
सो तुम सुनहु त्यागिके दोऊ । वर्णन करत शास्त्र सब कोऊ ॥
जिज्ञासू के गुण कछु जेते । हैं सम्पन्न तोहि में तेते ॥
जो गुण गुरु के वर्णन कीना । सो सबही मोरे आधीना ॥
जिमि सम्पन्न रत्नसों सागर । तैसे हौ सम्पन्न उजागर ॥
ताते तू मम वच अधिकारी । नहिं अधिकारी मूरख भारी ॥

दो० । चन्द्रोदय ते होत जिमि द्रवी भूत शशि कांत ।
तामें ते अमृत सरत नहीं अन्यथा भ्रांत ॥

सो० । अरुपाहन शिल जासु ते द्रविभूतन होत यह ।
तैसे जो जिज्ञासु ताहि लगत परमार्थ वच ॥

छंद गोपाल ॥

अज्ञानी को लागत नाहि । हे रामजी ! शिष्य तो वाहि ॥
अतिही शुद्ध पात्र जो सोय । ज्ञानी नहिं उपदेशक; होय ॥
तो वाको आत्मा को सार । होवै नहीं साक्षात् कार ॥
चन्द्रमुखीकमलिनि जिहिभात । विमल रहैलखि चाँदनिरात ॥

दो० । अरुजब चन्द्र न होत तब,प्रफुलित होतनसोय; ।
ताते तुमहौ मोक्ष को पात्र न तुम समकोय ॥

सो० । अवर हौहुँ भगवान अहौपरम गुरुजगतहित ।
ह्वै है नष्टाज्ञान तेरो मम उपदेश करि ॥

चौ०।मोक्षउपायकहतहौंसारा । वाहि विचारहु भले प्रकारा ॥
मनकी मलिन वृत्ति तव जेती । तिनको होय अभाव अनेती ॥
महा प्रलयके रवि करि भाई । जिमि मन्दराचलहुजरिजाई॥
ताते वैराग्यहु अभ्यासा । कोवलकरियहिमनहिनिरासा ॥
अपने विषे लीन करु भ्राता । शान्त आतमा होवहु ताता ॥
तैं बालावस्था सों याही । राख्योअति अभ्यास सदाही ॥
... मन उपशम कहँ पाई । ह्वै है प्राप्त आत्म पद भाई ॥

सन्त संग सत्शास्त्रहि द्वारा। पाय आत्म पद जन्म सुधारा॥
दो०। पुनि तिनको दुख लगत नहिं, सुखी भये नर जोय;।
काहेते दुख देह को, अभिमानहि करि होय॥
सो०। सो तनके अभिमान को तो तजि तैंने दियो।
तैसे सोय सुजान तज्यो देह अभिमान जो॥
छन्द शार्दूलविक्रीडिता॥
तैसे जो नर दंभ त्यागि अरु सो देहात्मता को नहीं।
पीछे ते पुनि धाय ताहि न गहै ताते सुखी सो सही॥
जाने आत्महि केर जोर धरिकै वीचार द्वारा बदा।
कीन्ह्यो आत्मपदै सुप्राप्तिवहीं भागभियो सो सदा॥
अकृत्रिम आनन्द पूरण सदा ताको लखाई प्रभौ।
दैवै आनन्द रूप जक्त मखिलौ आनंददायी विभौ॥
आसम्यग्दर्शी अहैं जे जहां ज्ञानी अमानी अवै।
भासै है दिन रैन जक्त तिनको आनन्द रूपी सवै॥
दो०। जो संसरण स्वरूप यह है संसार सुव्याल।
सो अज्ञानी के हृदय में दृढ़ भयो कराल॥
सो०। सोउ नष्ट ह्वै जाहि योग सु गारुड़ मंत्र करि।
होत अन्यथा नाहि और अहै जो सर्प विष॥
चौ०। एकजन्ममहँ मारत सोई। अरु संसार रूप विष जोई॥
तासों अमित जन्म कहँ पाई। जन्म जन्म मरतहिचलिजाई॥
होत कदाचित शांतिवान नाहि। जन्म अनेक अनेक कष्टसहि॥
सन्त संग सत्शास्त्रहि द्वारा। जो नर आत्मपदहि विस्तारा॥
सो आनन्दित भयो सदाही। अन्तर बाहर ताहि लखाही॥
आनँद रूप सकल जग भासा। क्रियनहु माहँ अनन्दाविलासा॥
संत संग सत्शास्त्र विचारा। त्यागिरहे सन्मुख संसारा॥
तासों तिहि जग अनरथ रूपा। सो ऐसो दुख देत अनूपा॥
दो०। जिमि सर्पन के दन्तते दुखी होत हैं आय।
घायल शस्त्रन सों भये अग्नि परे की नाय॥

सो०। बँधे जेवरी संग अन्ध कूपमें पुनि गिरै।
पावत दुःख अभंग; किमि जगमें दुख पावनर; ॥
छन्द उपस्थिनि ॥
जो पूर्व सत्संग सत्शास्त्र द्वारा; । पायोन कछु आत्मपदै विचारा।
सो कष्ट जगमें बहु भांति पावै। नरका नलू विषे जरते सुजावै॥
चक्कीन महँ पीसत दुःख रोवै; । पाषाण बरषा करि चूर्ण होवै॥
कोल्हून महँ पेरत जाहि ताको। औ शस्त्रसनकाटतसोउवाको॥
दो०। इत्यादिक जो कष्टबड सोउ प्राप्त तिहिहोय।
जीवहिं प्राप्त न होत जो ऐसो दुःख न कोय॥
सो०। दुःखहोत सबताहि आत्महिंके परमाद सों।
अवरपदार्थहिजाहि जानतयहरमणीयअति॥
चौ०। चखलसोउचक्रकीनाई। कबहूं थिरु नहिंरहत गुसाईं
अरु जो सन्मारगको त्यागी। इनकी इच्छा करत अभागी॥
महा दुःख को पावत सोई। जान्यो बिरसजगहिनर जोई
दृढ भै पुरुषारथ की ओरा। ताहि आत्मपद प्राप्त कठोरा॥
अपर आत्मपद जे नर पावा। तिनकोबहुरि दुःखनहिंआवा॥
तिनके दुःख नष्ट जो नाहीं। होत कबहुं यहिजीवन माहीं॥
ज्ञान हेतु पुरुषारथ कोई। जो नहि करत मूढता खोई॥
अज्ञानिहिं दुखसन भवकूपा। ज्ञानिहि सबजग आनँदरूपा॥
दो०। अपने आपहि जानिके रहत न तिहिं भ्रमकोय। ॥
ज्ञानवान में बहुतविधि चेष्टा भासत जोय॥
सो०। शान्त स्वरूप सदाहि आनँदरूप कवौं रहत।
जगको कौदुखनाहि परशकरिसकततहिकछु॥
छन्दस्वरूपी॥
काहे जो पहिरयो तिनने। ज्ञानरूप कवचहु जिन
दुःख होत है ज्ञानिन को। बड़े बड़े ब्रह्मर्षिन
ज्ञानी बहु राजर्षिहु भये। सोऊ
पै दुख सों आतुर न भये। सदा

दो०। क्यों जो ज्ञानी ज्ञानको पहिरयो कवच सदाहि।
तातें कोऊ दुःख तिहि परश करत कछु नाहि॥
सो०। नित आनन्दहिरूप, जिमि ब्रह्मा अरु बिष्णु शिव;।
नाना भांति अनूप चेष्टा करत लखात सब॥
चौ०। अन्तरतेअतिशांतिहिरूपा। लो है देव दनुजनरभूपा॥
यहिविधि औरहु ज्ञानी जोई। उत्तम शांतिरूप नर सोई॥
ताको करता को अभिमाना। कोऊ नहीं फुरत भगवाना॥
अज्ञानी रूपी घन जासों। मोहरूप कुल्हाडतरु तासों॥
सोऊ ज्ञान रूप हिम काला। करिके नष्टहोत ततकाला॥
पावते स्वसत्ता को ताते। अरु अनन्दकरि पूर्ण सदाते॥
जो नर करत कछूक क्रियाको। सोउ विलास रूप है ताको॥
अरु आनन्दरूप जग सबही। ज्ञानवान नरहोवै जबही॥
दो०। तनरूपी रथ इन्द्रिहय मनरूपी रजुआहि।
तासों हयको खींचहीं मनरूपी रथवाहि॥
सो०। बैठो तिहि रथमाहिं वह नरहै आरूढ़अति।
खोटे मारग माहि डारत इन्द्रिय रूप हय॥
छंददोहो। ज्ञानीके इन्द्रिय रूपहय सो अस अहैं अनूप।
जो जहाँ जात हैं सो तहां अहैं अनन्दहिरूप॥
नहिंकोहु ठौर में खेदलहैं और सबक्रियामाहि;।
है विलास तिहि आनन्द करि रहततृप्तसदाहि॥

शमवर्णन॥

दो०। अपर सुनो, हे रामजी! कहा मुनीश वशिष्ट।
होवै तबहिय पुष्ट जो आश्रय करि यहि इष्ट॥
सो०। बहुरि न होय चलाय मान तोर मन कबहुँकछु;।
काहू भांति लुभाय जगके इष्ट अनिष्ट सन॥

चौ०। जानरकोयहिभांतिसदाई। प्राप्ति आत्मपदकीभइभाई॥
सोई परम आनन्दित भयऊ। शोक करत नयाचनाठयऊ॥
हेयोपादे यहि ते हीना। परम शान्ति रूपी परवीना॥
होय रहे अमृत करि पूरे। देखत चेष्टा करत सुरूरे॥
करत परन्तु नहीं कछु भाई। मनकी वृत्ति जहाँ तिहिजाई॥
भासति आतम सत्ता तहई। आत्मानन्द पूर्ण है रहई॥
अमृतमय राकाशशि जैसे। परमानँद मय ज्ञानी तैसे॥
यह जो हौं तोको रघुराई। अमृतरूपी वृत्ति सुनाई॥
जब विचार युत जानहु ओही। तब साक्षात्कार तोहिंहोही॥
जब जो आत्म ज्ञानको पावा। तबहीं सो सब कष्ट नशावा॥
रहुन तापशशि मण्डलमाहीं। कबहुं शांति अज्ञानिहि नाहीं॥
अरु पुनि कछुक क्रियाकरुजोई। तामें अति दुख पावतसोई॥
जिमि कक्करके वृक्षमाहँ वहु। कंटक की उत्पत्ति होतरहु॥
तैसे अज्ञानी को भारी। दुख उत्पत्ति होत सुखहारी॥
यह जो जीव जगत महँ आवैं। मूरखता करि अति दुखपावैं॥
असदुख अद्भुत और न कोई। करि कौविपद न असदुखहोई॥
दो०। जस दुखसहु मूर्खता करि असदुख कोऊ नाहिं।
लेय भीख चाण्डाल घर लै ठिकरा करमाहिं॥
सो०। आत्मतत्त्व की होय जिहि जिज्ञासा अतिसुभग।
तबहु और सबकोय अहै श्रेष्ठ ऐश्वर्यते॥

छन्दरूपक॥

मूर्खताहि सो परन्तु व्यर्थ जीवना अयुक्ति।
दूरि हेतु मूर्खताहि हौं कहौं उपाय मुक्ति॥
मोक्ष को उपाय पर्म बोधकार है सुजान।
बुद्धि संसकृत्त होय है कछू अचार ज्ञान॥
अर्थ होय जो पदै पदार्थ जानतेहि हारि।
मोक्षको उपाय शास्त्रलेय खूब ही विचारि;॥
तौहितासु मूर्खता तुरंत नष्ट होय जाय।

नष्टहोतेही सुखी सुभाय होत तासु काय; ॥
दो०। प्राप्त आत्मपद होय तब जैसे आतम बोध।
कोकारणयहशास्त्रसब अतिउत्तम अविरोध ॥
सो०। तिमि न अवर कौ भास शास्त्र त्रिलोकीके बिषे।
बहु प्रकार इतिहास उदाहरण दृष्टान्त युत ॥
चौ०। जामेंताहिविचारैंजबहीं। होय प्राप्त परमानंद तबहीं ॥
तिमि अज्ञान रूप हरिबे को। ज्ञान रूप शलाक करिबे को ॥
अन्धकार जिमि सूर्य नशावै। तिमि अज्ञान नाशि यहनावै ॥
जिहि बिधि होत यासुकल्याना; । श्रवण करौ सोकृपानिधाना ॥
अरु गुरु ज्ञानवान नर जोई। करु उपदेश शास्त्रको सोई ॥
निज अनुभव सोपावत ज्ञाना। निजअनुभवगुरुशास्त्रसमाना ॥
तीनिहुँ मिलैं यकत्रितआई। तब कल्याण होय यहिभाई ॥
जब लगि अकृत्रिम आनन्दा। भयो प्राप्तनहिंरविकुलचन्दा ॥
तबलगि करै सुदृढ़ अभ्यासा। अकृत्रिम आनन्द बिलासा ॥
ताको प्राप्त को करने हारा। मैं गुरुहौं सुनु राम उदारा ॥
परम मित्र जीवहि हम आहीं। ऐसो मित्र अवर कौ नाहीं ॥
जीवहि संगति तात हमारी। प्राप्त अनन्द को करने हारी ॥
ताते जो कछु कहौं सुनीजै। भलीभाति बिचारितिहिकीजै ॥
यह जो अहै जगतको भोगा। सो क्षणमात्र अंत महँ रोगा ॥
ताते इनहि त्यागिये रामा। दुःखअनंत विषय परिणामा ॥
इनकहँ दुःखरूप तुम जानी। त्यागहु बेगि रामतुम ज्ञानी ॥
दो०। होयकरहु हम सारिखे ज्ञानवानको संग।
मेरे वचन बिचारते ह्वैहै दुख सब भंग ॥
सो०। जो नर मेरेसंगप्रीति करी मन वचन क्रम।
तिनको हौं बहुरंग कीन्ह्यों प्राप्त अनंतपद ॥

छंद वसततिलक ॥

आनन्द प्राप्त तिन को हम कीन्ह जानी।
अनन्दितै जिहि भयो बिधि रुद्र ज्ञानी ॥

सो निर्दुखै पदहि प्राप्त भयो सदाही ।
कीन्ही जु प्रीति मम संग सुश्रेष्ठ आही ॥
जो सन्त औ सबहि शास्त्र विचार द्वारा ।
दृश्यैं अदृश्य लखिकै निरभय गुजारा ॥
आत्मा प्रमाद करु जीवहि खूब दीना ।
अज्ञानिको हिय कंज तव लौं मलीना ॥
दो० । जबलगि तृष्णारूप निशि को विनाश नहिं होत; ।
अरु जाही क्षण ज्ञान रूपी भो सूर्य उदोत ॥
सो० । नष्ट होत तिहि-पुंज तृष्णा रूपी रात्रि तव ।
पुनिहियरूपीकंज खिलिआवतआनंदकरि ॥
चौ० । जोपरमार्थमार्गकोत्यागा । खान पान आदिकमेंलागा ॥
जगके भोग माहँ रहु साना । जानहु ताकहँभेकिसमाना ॥
परि कीच में शब्द करु जैसे । अहु मूरुख वह पूरुप तैसे ॥
यह संसार आपदा सागर । तामे जो कौ श्रेष्ठ उजागर ॥
सुसतसंग रातशास्त्र विचारा । करि उतरत समुद्र संसारा ॥
पावत परमानन्द नवीना । आदि अन्त मध्यहुते हीना ॥
निर्भय पदको पावत सोई । जग सागरके सन्मुख जोई ॥
दुखते दुःख रूप पद पायो । कष्ट ते कष्ट नरकमहँ आयो ॥
पानकरत विषको द्विप जानी । नाश करतसोविपतेहिआनी ॥
तिमि जो लखिअसत्य संसारा । बहुरिकरत जगको व्यवहारा ॥
सो नर अवशिमृत्यु को पावै । विमुखआत्मपदते जो आवै ॥
अरु जो आत्मपदहि पहिचाना । तिहि कल्याणरूपकरिजाना ॥
त्यागि आत्मपदको अभ्यासा । धावत जगकीओर पियासा ॥
लागि अग्नि काहू गृह माहीं । तृणको घर तृणकीशय्याहीं ॥
में , सोवत ज्यों पावत नासा । जन्म मृत्यु त्योंपावउदासा ॥
अरु संसार पदारथ देखी । भै दोप रागवान विशेखी ॥
दो० । सोसुख विद्युत चमक जिमि अरु जोह्वैमिटिजाइ, ।
थिर न रहै तिमि जगत को दुःख आगमा पाइ ॥

सो०। अरु पुनि यहसंसार भासतनित अविचारकरि;।
कीन्हें अवर विचार सोउ और ह्वै जात है॥

छंदमदनहरा। सुविचारतताही लीनजुनाही तासों तुम को उपदेश कियेको कामनहीं। सो विचार कीना होवै लीना पुरुषार्थ यही कारन चहिये जो करे सही॥ जिमि दीपक हाथा होवै नाथा कूप माहँ ह्वै अंध गिरै है मूर्ख वही। तैसे संसारां टारनहारा भ्रमको विद्यमान गुरुहै अरु शास्त्र यही॥ तिहिशरणन आवै मूर्खकहावै जो नर सतसंगतिहिकिये सतशास्त्रहिये। के; विचारद्वारा जन्म सुधारा आत्म पदै सो पायलिये मन हर्ष किये;॥ ज्ञानी नर सोई केवल्ल ओई कैवल्य भावको प्राप्त भयो यश अमित लयो। यह अर्थ जुभायो चैतनपायो शुध भ्रम जुरह्यो ह्वै निवृत गयो॥

दो०। मनहीके संसरणते उपज्यो यहसंसार।
नहिंह्वैहैकल्याण यहि करि बान्धवपरिवार॥

सो०। अरु धनहू करि नाहिं होत प्रजाहूकरि नहीं।
तीर्थ देव द्वाराहिहू करिकै नहिं होत यह॥

चौ०। होय न विभवहुसोभगवाना। यकमनजीते ते कल्याना॥
जाको कहत परम पद ज्ञानी। जाहि रसायन कहत सुबानी॥
जाके पावत होय न नासा। होय अमर सु अमरपुरवासा॥
अरु सब सुख पूरणता चोखा। साधन शमता अरु सन्तोखा॥
उत्पति ज्ञान इनहिं ते होई। आत्मज्ञान रूपी तरु सोई॥
अरु पुनि सुमन शांति है तामें। इस्थिति रूप फलहु रहु जामें॥
जाहि प्राप्त होवै यह ज्ञाना। शांतिवान सो भयो सयाना॥
सोइ रहत निर्लेप सदाही। भावाभाव जगत को ताही॥
क्षणहु तात यह परशत नाहीं। जिमिरविउदयहोय नभमाहीं॥
जगकी क्रिया होत सब तबहीं। बहुरिअदृश्य होत सोजबहीं॥
जग की क्रिया होतितब लीना। मनमें लेय विचारि प्रवीना॥
जैसे तासु क्रिया ही केरे। होन न होने माहँ घनेरे॥

सो निर्दुखै पदहि प्राप्त भयो सदाही ।
कीन्ही जु प्रीति मम संग सुश्रेष्ठ आही ॥
जो सन्त औ सबहि शास्त्र विचार द्वारा ।
दृश्यैं अदृश्य लखिकै निरभय गुजारा ॥
आत्मा प्रमाद करु जीवहि खूब दीना ।
अज्ञानिको हिय कंज तब लौं मलीना ॥
दो० । जबलगि तृष्णारूप निशि को विनाश नहि होत; ।
अरु जाही क्षण ज्ञान रूपी भो सूर्य उदोत ॥
सो० । नष्ट होत तिहि पुंज तृष्णा रूपी रात्रि तब ।
पुनिहियरूपीकंज खिलिआवतआनंदकरि ॥
चौ० । जोपरमार्थमार्गकोत्यागा । खान पान आदिकमेंलागा ॥
जगके भोग माहँ रहु साना । जानहु ताकहँभेकिसमाना ॥
परि कीच में शब्द करु जैसे । अहु मूरुख वह पूरुष तैसे ॥
यह संसार आपदा सागर । तामें जो कौ श्रेष्ठ उजागर ॥
सुसतसंग रातशास्त्र बिचारा । करि उतरत समुद्र संसारा ॥
पावत परमानन्द नवीना । आदि अन्त मध्यहुते हीना ॥
निर्भय पदको पावत सोई । जग सागरके सन्मुख जोई ॥
दुखते दुःख रूप पद पायो । कष्ट, ते कष्ट नरकमहँ आयो ॥
पानकरत विषको दिप जानी । नाश करतसोविषतेहिआनी ॥
तिमि जो लखिअसत्य संसारा । बहुरिकरत जगको व्यवहारा ॥
सो नर अवशिमृत्यु को पावै । विमुखआत्मपदते जो आवै ॥
अरु जो आत्मपदहि पहिचाना । तिहि कल्याणरूपकरिजाना ॥
त्यागि आत्मपदको अभ्यासा । धावत जगकीओर पियासा ॥
लागि अग्नि काहू गृह माहीं । तृणको घर तृणकीशय्याहीं ॥
मे ; सोवत ज्यों पावत नासा । जन्म मृत्यु त्योंपावउदासा ॥
अरु ससार पदारथ देखी । भै दोष रागवान विशेखी ॥
दो० । सोसुख विद्युत चमक जिमि अरु जोहैमिटिजाइ, ।
थिर न रहै तिमि जगत को दुःख आगमा पाइ ॥

सो०। अरु पुनि यहसंसार भासतनित अविचारकरि;।
कीन्हे अवर विचार सोउ और है जात है ॥

छंदमदनहरा। सुविचारतताही लीनजुनाही तासों तुम को उपदेश कियेको कामनहीं। सो विचार कीना होवै लीना पुरुषार्थ यही कारन चहिये जो करै सही ॥ जिमि दीपक हाथा होवै नाथा कूप माहँ ह्वै अंध गिरै है मूर्ख वही। तैसे संसारा टारनहारा भ्रमको विद्यमान गुरुहै अरु शास्त्र यही ॥ तिहिशरणन आवै मूर्खकहावै जो नर सतसंगतिहिकिये सतशास्त्रहिये। के, विचारद्वारा जन्म सुधारा आतम पदै सो पायलिये मन हर्ष किये; ॥ ज्ञानी नर सोई केवल ओई कैवल्य भावको प्राप्त भयो यश अमित लयो। यह अर्थ जुभायो चैतनपायो शुध भ्रम जुरह्यो ह्वै निवृत गयो ॥

दो०। मनहीके ससरणते उपज्यो यहसंसार।
नहिह्वैहैकल्याण यहि करि बान्धवपरिवार ॥

सो०। अरु धनहू करि नाहि होत प्रजाहूकरि नहीं।
तीर्थ देव द्वाराहिंहु करिकै नहिं होत यह ॥

चौ०। होय न विभवहुसोभगवाना। यकमनजीते ते कल्याना ॥
जाको कहत परम पद ज्ञानी। जाहि रसायन कहत सुबानी ॥
जाके पावत होय न नासा। होय अमर सु अमरपुरवासा ॥
अरु सब सुख पूरणता चोखा। साधन शमता अरु सन्तोखा ॥
उत्पति ज्ञान इनहि ते होई। आत्मज्ञान रूपी तरु सोई ॥
अरु पुनि सुमन शांति है तामें। इस्थिति रूप फलहु रहु जामें ॥
जाहि प्राप्त होवै यह ज्ञाना। शातिवान सो भयो सयाना ॥
सोइ रहत निर्लेप सदाही। भावाभाव जगत को ताही ॥
क्षणहु तात यह परशत नाहीं। जिमिरविउदयहोय नभमाहीं ॥
जगकी क्रिया होत सब तबहीं। बहुरिअदृश्य होत सोजबहीं ॥
जग की क्रिया होतितव लीना। मनमें लेय विचारि नवीन
जैसे तासु क्रिया ही केरे। होन न होने माहँ

ज्योंको त्यों अकाश रहु साई। ज्ञानी तिमि निर्लेप सदाई॥
आत्म ज्ञान उत्पत्ति उपाई। मेरो श्रेष्ठ शास्त्र यह भाई॥
जोइ पुरुष यह मोक्षो पाया। शास्त्रहि श्रद्धा युक्त सुनाया॥
पढ़ै पढ़ावै सुनै अदागी। तब सो होय मोक्षको भागी॥

दो०। द्वारपाल हैं मोक्ष को चारि कहत सो तोहि।
सो इनमें ते एकहू जब अपने वश होहि॥

सो०। मोक्ष द्वार तेहि याम, याको होय प्रवेश प्रभु;।
सो चारिहुकोनाम,कहौंसुनौ धरिध्यान तुम,॥

छन्द चतुष्पद॥

यह शम है याको पर्श कार्ण विश्रामहि को नर राई;।
यह संसार जु देखि परै सुमरुस्थल की सरि नाई॥
याको देखि मूर्ख अज्ञानी जो मृग हैं जग माहीं।
सो सुख रूप जानि जलधावत शांतिहि पावत नाहीं,॥
जब शम रूपी मेघ बरीसै तबहिं सुखी सो होई।
शमही परम अनन्द रूप है शमहि परम-पद सोई॥
अरु शिवपद है सोई शम पुनि प्राप्त भयो शम जाको।
सो संसार समुद्र पार भै मित्र होहि रिपु ताको॥

दो०। चन्द्रोदय अमृत सरत शीतलता पुनि होत,।
तिमि जाके हिय माहँ शम रूपी चन्द्र उदोत॥

सो०। तासु मिटत सब ताप शांतिवान अति होतहैं।
समुझिलेहुतुमआप शमदुर्लभसुरअमियसम॥

चौ०। वहीपरसअमृतमनलोभा। शमकरियाहिहोयअतिशोभा॥
अनुप अमलराकाशशि कांती। उज्ज्वल होति पर जिहिभांती॥
तैसे शमहि पाइ कै याकी। उज्ज्वलकांति होति अतिवाकी॥
जिमि दुइहृदय बिष्णुकेआहीं। सो एक तो निजें तन माहीं॥
दूजो सन्त माहँ रहु कैसे। याके हृदय होत युग तैसे॥
यक निज तनमें दूसरि सोई। शमहू इनको हिरदय होई॥
ोत तात आनँद यह ऐसा। अमी पियेहु होत नहिं वैसा॥

अरु लक्ष्मिहुकी प्राप्ति न होई। शमवानहि आनँद रहु जोई॥
हे रामजी! प्राण ते वादा। जो कोऊ होवै प्रिय ज्यादा॥
अन्तर्द्धानहु करि सु बहोरी। प्राप्त होय जाको यह जोरी॥
तैसे आनँद होवै ताही। जिमिआनँद शमवानहि काही॥
ताके दर्शन हू ते भांई। सो आनन्द प्राप्त ह्वै जाई॥
अस आनन्द नृपहु नहिं होवै। मंत्री श्रेष्ठ पौरि पर जोवै॥
अरु अन्तर ते सुन्दरि नारी। तिहिन होयअसआनँदभारी,॥
शम सम्पन्न पुरुष को जैसा। आनँद होय न काहुहि वैसा॥
शम को प्राप्त भयो जो लोगू। पूजन और बन्दना योगू॥

दो०। जिहि भै शमकी प्राप्तितिहि आवैनहि उद्वेग।
लोकहुते उद्वेग नहि पावत अहैं सुवेग॥

सो०। वाकी धर्मी समान अहै क्रिया सब जगतकी।
सुधासमानजवान सों सबनिकसतवाकतिहि॥

छन्द मुक्तहरा॥

अहै जिमि शीतल चन्द मयूप सुअमृतरूपकहें निरधार,।
सबै चहुँधा यहरामअहै जिमिसन्तजनोंकर वैन प्रचार॥
भयोशम प्राप्तिजिन्हैंतिनकी जबसंगतिजीवहिं होयउदार।
तबै सब पर्म अनंदित होय कहैं यहबात सुजान विचार॥
अनंदितहोतअहैं जिमिबालक मातुपिताकहँपायअमान।
भईशमप्राप्तिजिन्हें तिमिताकहँह्वैअतिजीवहिआनँदवान,॥
मुवापुनिआवहिबांधवज्योंअरुताकहँहोयखुशीअतिशान;।
अनंदहि पायलहै सुखजो वहजातन मोपहँ नेकुबखान;॥

दो०। ताहू ते अतिही अधिक यह आनँद सम्पन्न।
पाय पुरुष को होत भति देखिलेहु अवगन्न॥

सो०। चक्रवर्त्ति लहिराज ऐसो आनँद होत नहि।
त्रैलोकीहु समाज पायेते नहिं होतवरु॥

चौ०। शमकीप्राप्ति शुभभई जाके। रिपुहुँ मित्र ह्वै जावै ताके॥
ताको कछु भयहोत न यासों। सर्पहु की भय-रहत न तासों॥

ज्योंको त्यों अकाश रहु साई। ज्ञानी ति
आत्म ज्ञान उत्पत्ति उपाई। मेरो श्रेष्ठ र
जोइ पुरुष यह मोक्षो पाया। शास्त्रहि
पढ़ै पढ़ावै सुनै अदागी। तब सो ह

दो०। द्वारपाल हैं मोक्ष को चारि कहत
सो इनमें ते एकहू जब अपने

सो०। मोक्ष द्वार तेहि याम, याको होय प्रवे
सो चारिहुकोनाम,कहौंसुनौ धरिध्या

छन्द चतुष्पद॥

यह शम है याको पर्श कार्ण विश्रामहि क
यह संसार जु देखि परै सुमरुस्थल की
याको देखि मूर्ख अज्ञानी जो मृग हैं
सो सुख रूप जानि जलधावत शांतिहि पार
जब शम रूपी मेघ बरीसे तबहि सुखी
शमही परम अनन्द रूप है शमहि परम
अरु शिवपद है सोई शम पुनि प्राप्त भयो श
सो संसार समुद्र पार, भै मित्र होहि रि

दो०। चन्द्रोदय अमृत सरत शीतलता पुनि
तिमि जाके हिय माहँ शम रूपी चन्द्र

सो०। तासु मिटत सब ताप शांतिवान अति
समुझिलेहुतुमआप शमदुर्लभसुरअमि

चौ०। वहीपरमअमृतमनलोभा। शमकरियाहि
अनुप अमलराकाशशि काँती। उज्ज्वल होति
तैसे शमहि पाइ के याकी। उज्ज्वलकांति ह
जिमि दुइहृदय विष्णुकेआहीं। सो एक तो नि
दूजो सन्त माहँ रहु कैसे। याके हृदय ह
यक निज तनमे दूसरि सोई। शमहू इनको
तात आनँद यह ऐसा। अमी पियेहु ह

अरु लक्ष्मिहुकी प्राप्ति न होई। शमवानहि आनँद रहु जोई॥
हे रामजी! प्राण ते बादा। जो कोऊ होवै प्रिय ज्यादा॥
अन्तर्द्धानहु करि सु बहोरी। प्राप्त होय जाको यह जोरी॥
तैसे आनँद होवै ताही। जिमिआनँद शमवानहि काही॥
ताके दर्शन हू ते भाई। सो आनन्द प्राप्त ह्वै जाई॥
अस आनन्द नृपहु नहिं होवै। मंत्री श्रेष्ठ पौरि पर जोवै॥
अरु अन्तर ते सुन्दरि नारी। तिहिन होयअसआनँदभारी;॥
शम सम्पन्न पुरुष को जैसा। आनँद होय न काहुहि वैसा॥
शम को प्राप्त भयो जो लोगू। पूजन और वन्दना योगू॥

दो०। जिहि भै शमकी प्राप्तितिहि आवैनहिं उद्वेग।
लोकहुते उद्वेग नहि पावत अहैं सुवेग॥

सो०। वाकी अमी समान अहै क्रिया सव जगतकी।
सुधासमानजवान सों सबनिकसतवाकतिहि॥

छन्द मुक्तहरा॥

अहै जिमि शीतल चन्द मयूष सुअमृतरूपकहैं निरधार;।
सवै चहुँधा यहरामअहै जिमिसन्तजनोंकर वैन प्रचार॥
भयोशम प्राप्तिजिन्हैंतिनकी जवसंगतिजीवहिं होयउदार।
तवै सव धर्म अनंदित होय कहैं यहवात सुजान विचार॥
अनंदितहोतअहै जिमिवालक मातुपिताकहँपायअमान।
भईशमप्राप्तिजिन्हैं तिमिताकहँह्वैअतिजीवहिआनँदवान,॥
मुवापुनिआवहिवांधवज्योंअरुताकहँहोयखुशीअतिशान,।
अनंदहि पायलहै सुखजो वहजातन मोपहँ नेकुबखान;॥

दो०। ताहू ते अतिही अधिक यह आनँद सम्पन्न।
पाय पुरुष को होत अति देखिलेहु अवगन्न॥

सो०। चक्रवर्त्ति लहिराज, ऐसो आनँद होत नहि।
त्रैलोकीहु समाज पायेते नहिं होतवरु॥

चौ०। शमकीप्राप्ति शुभभई जाके। रिपुहुँ मित्र ह्वै जावैं ताके॥
ताको कछु भयहोत न यासों। सर्पहु की भय रहत न तासों॥

सिंहहुकी भय ताहि न रहई । अवर काहुकी भयनहिं सहई ॥
निर्भय शान्ति रूप रहु सोई । होवै कष्ट आय जो कोई ॥
काल अग्नि जो लागै कबहूं । होय चलायमान नहिं तबहूं ॥
शान्तिरूप सो रहत सदाही । जिमिशीतलतारहु शशिमाही ॥
तैसे शुभ गुण है कछु जोई । अरु सम्पदा कछुकहै सोई ॥
शमवानहि नरके हियमाहीं । आय सबै इस्थिर ह्वै जाहीं ॥
हे राम ! जु अध्यात्मक आदी । जरत ताप करि मूरख वादी ॥
ताको हिय जब शम को पावै । तब यह सबै ताप मिटि जावै ॥
जैसे तप्त धरनि के ऊपर । होय जात शीतल वर्षा कर ॥
तिमि तेहि शीतलता ह्वै जाई । जो नर ऐसे शम को पाई ॥
सब क्रियान में आनँद रूपा । दुख कौ नहिंपरशततिहिभूपा ॥
वज्रशिलहिजिमिबेधुन तोमर । तिमिजो पहिराकवचशमहुकर॥
तिहिआध्यात्मिकआदिकपापा; । बेधिन सकत कोटियहतापा ॥
रहु सो शीतल रूप सदाहीं । कोऊ कष्टहोत तिहिनाहीं ॥

दो० । तपसी पण्डित याज्ञयिक अरुधनाढ्य जे लोग, ।
पूज्यमान के सो सवै अहैं करन के योग ॥

सो० । जो नर शम को पाव उत्तम सो सबते भयहु ।
सहित मान अरु भाव पूजा करिवे योग सो ॥

छन्द हरिमुख ॥

परजिहिको शमकेरि प्राप्तिहोई । सबसन उत्तमतातभये सोई ॥
सबकहँ पूजन योगअहै ज्ञानी । तिहिमनकीसबवृत्तिहमहुँजानी ॥
ग्रहण करौवह आत्मतत्त्वकाहीं । शमकरपूरणसोउक्रियामाहीं ॥
जिहि कहँशब्द सुगंध रसौ रूपा; । परशविषै यहइन्द्रिअन्धकूपा ॥

दो० । होत न इष्ट अनिष्ट महँ राग दोष सब जोय ।
ताको शान्तात्मा कहत कविपंडित सबकोय ॥

सो० । जो जग के रमणीय बध्य पदारथ में नहीं ।
अहै गुणज्ञ सुजीय पूरण आत्मानन्द करि ॥

०। ताको शांतिवान सबकहई । आत्मानन्द जु पूरण अहई ॥

करि शुभ अशुभ जगत के वाही। मलिनपनाकछुलागतनाही॥
रहत अहै निर्लेप सदाही। जिमिनभ-सब पदार्थतेआही॥
अतिनिर्लेप शान्तिवानहु तिमि। रहतअहै निरलेपसदाजिमि॥
अस जो इष्ट विषय को सोई। हर्षवान न प्राप्ति महँ होई॥
अरु अनिष्ट विषयहु को पाई। शोकवान नहि होत दृढ़ाई॥
अन्तर ते रहु शान्तिवाननित।परशतनहिंकोऊदुखताचित॥
अपनै आप माहँ नियराई। परमानन्द रूप रहु भाई॥
सूर्योदय जिमि तिमिर नशाई। तिमि दुखनष्ट शांतिको पाई॥
निर्विकार सो रहत सुजाना। करि विचार देखहु भगवाना॥
सब चेष्टा को करत लखाई। निर्गुण रूप परन्तु सदाई॥
स्पर्श क्रिया नहिं करतकोउ वहि;। जिमिजलमेंनिरलेपकमलरहि॥
तैसे शांतिवान नित राई। रहैं सदा निरलेप गुसाँई॥
राज्य सम्पदा को अति पाये। महा आपदा हू के आये॥
ज्यों के त्यों रह अलग पराई। शांतिवान सो तात कहाई॥
जो भर अहै शांति ते हीना। ताकोचितअतिरहतमलीना॥
दो०। राग दोष करि क्षणहिक्षण तपत रहत; जिहिशांत।
तपत रहत तिहि अंतहू बाहर शीतल गात॥
सो०। सदा रहत रस एक जिमिनित शीतलहिमालय;।
तैसे वाकी टेक शीतल रहत सदाहि अति॥

छन्दमाधव॥

अकलंकित होय मयंकहु ज्योंतिमि शांतिहु वानरहै अकलंका। जिहि शांतिभई यहप्राप्तिहुये वहपर्म अनंदितजीवअशंका॥
तिहि लाभ सुपर्महु प्राप्त जु होय रहै जग निर्मल ज्योंहि मयंका।
पद पर्म तिसे कहज्ञानिहु जो "पुरुपार्थ,,जुहै करना अतिवंका॥
तिहि चाहिय शांतिहि प्राप्ति करै जिहिसों सुखपावहुगे जगमाहीं।
जिहिहौंहु कहा तुम सों सब भांति विचारि गहो तुमहूँ शमकाहीं॥
क्रम सों करिकै तुमहूँ ग्रहणै यह शांति अनूपम सुष्ठु लखाहीं।
तब पावहुगे तुम शांतिहि पार समुद्र जगत्त जु दारुण आहीं॥

विचार वर्णन ॥

दो० । अब विचार को निरूपणा; कह वशिष्ठ सुनुराम! ।
हृदय शुद्ध जब होत तब है विचार तिहि याम ॥
सो० । अरु शास्त्रार्थ विचार द्वारा होती तीक्ष्ण बुधि ।
हे रामजी ! अपार कानन जो अज्ञान यह ॥
चौ० । बेलि आपदा रूपी तामें । उपजत ताको दुख कहतामें॥
तिमि काटै विचार तरवारी । शान्त आत्मता होय सुखारी॥
अपर मोह रूपी गज राजा । सो मूरख अजान विनुकाजा॥
जियके हिरदै रूप कमल को । खण्ड २ करि डारत हलको ॥
इष्ट अनिष्ट पदारथ माहीं । राग दोष करि छेद्य न जाहीं॥
प्रकटै सिंह विचारक जबहीं । मोह रूप गज नाशै तबहीं ॥
शान्तात्मा होवै; हे रामा ! । जु कछु सिद्धता लहुविश्रामा॥
पुरुषारथ विचार करि सोई । अरु कोई जो राजा होई ॥
करि विचार पुरुषारथ करई । तासों पाय राज्य अनुसरई ॥
क्रमही ते बल बुधि अरु तेजा । चौथ पदार्थ आगमन भेजा ॥
पंचम प्राप्ति पदारथ साँचो । प्राप्त होत विचार करिपांचो ॥
"अर्थ,, जु इन्द्रिय जीतव शुद्धी । सो आतमा व्यापिनी बुद्धी ॥
दो० । तेज पदारथ आगमन प्राप्त होत यह पांच ।
केवल तात विचार सों देखिलेहु तुमसाच ॥
सो० । जो को आश्रय लीन, विचार को; हे रामजी! ।
अरुदृढ़ वांछाकीनजाकी सो पावततुरत ॥

छन्द नाग स्वरूपिनी ॥

विचार पर्म मित्र है । विचारवान जो अहै ॥
नमग्न आपदाहि में । बुडै न तुम्बि नीर में ॥
नबूड़ आपदाम त्यों । विचारवान पूर्ण यों ॥
विचार युक्त जो करै । जु देत लेत हैं परै ॥

दो०। सर्व क्रिया सिद्धता को कारण रूप सुश्राहि।
दृढ़ विचार कर ह्वै रहें चारि पदारथ ताहि॥
सो०। कल्पवृक्ष इव वास विचार रूपी जासु प्रहँ।
होयजाहि अभ्यास पावत सोइपदार्थसिधि;॥
चौ०। शुद्ध सुब्रह्म विचार धरीजै। आत्म ज्ञानको प्राप्त करीजै॥
जिमि दीपक प्रकाश अधिकाई। होत ज्ञान पदार्थ को भाई॥
तैसें पुरुष विचार प्रमानै। सत्य असत्य सबै को जानै॥
तजि असत्य सत्याहि को गहई। ताहिविचारवान सबकहई॥
जगत जलधि जल बीच अभंगा। चलत आपदा रूप तरंगा॥
पुरुष विचारवान सब जोई। भावाभाव जगत के सोई॥
कष्टवान नहिं होत सचेता। होतजुक्रिया विचार समेता॥
सुख परिणाम तासु सब कोई; । बिनु बिचार चेष्टा जो होई॥
तासों दुख पावै; हे रामा! । कंटकतरुअविचारललामा॥
उपजत दुख कंटक तिहि माहीं। निशिअविचाररूपयहवाही॥
तामें तृष्णा रूप पिशाचिनि। बिचरतिआयदुष्टअतिपापिनि॥
जब विचार रूपी प्रभु भानू। उदितहोतकरि रोपकृशानू॥
दो०। अन्धकार संयुक्त अविचार रूप तव राति।
तृष्णारूप पिशाचिनी नष्ट तुरित ह्वैजाति॥
सो०। यह मम आशिर्वाद जो प्रभु तेरेहृदय सन।
मेरेवचनप्रसाद नष्टहोय अविचार निशि॥
छंदअभदूक। यहजु विचार रूप रविको उदोतहै।
दुख अविचारते जगतनाशहोतहै॥
जिमिअविचारसोंशिशुअछाहिंआपनी।
तिहिबैताल कल्पिभय पावता घनी॥
अवर विचार सो भयहु नष्ट सैत है।
तिमि अविचारकै जगत दुःख देत है॥
अरु सतशास्त्र युक्ति करिकै विचारते।
जग भय नष्ट होय सब ॥

दो०। जहँविचार तहँ दुःखनहिं ज्यों जहँहोतप्रकाश;।
अंधकार तहँ नहि रहत जैसे विमल अकाश॥
सो०। रहत तहाँ अँधियार होत जहाँ परकाश नहिं।
तैसे जहाँ विचार तहीं नहीं संसार भय॥
चौ०। अवररहतविचारजहँनाहीं। सुसंसार भयरहत तहाँहीं॥
उपजु आत्मयहविचार जहँवाँ; । शुभ गुण सुखदायकरहु तहँवाँ॥
जैसे मानसरोवर माहीं। होत कमल उत्पत्ति वहाँहीं॥
तिमि विचार में शुभगुण केरी। होतिरहति उत्पत्ति घनेरी॥
जहाँ विचार नाहिं श्री रमनू। तहाँ होत दुखको आगमनू॥
करि अविचार क्रिया करु जोई। होत दुःखको कारण सोई॥
जैसे मूषक विल को खोदी। देतनिकासि मृत्तिकाओदी॥
एकत्रित ह्वै जाति जहाँई। होति वेलि उत्पत्ति तहाँई॥
करि अविचार मृत्तिका तैसे। पाप क्रिया जोरत नर जैसे॥
वेलि आपदा रूपी ताते। होति रहति उत्पत्ति तहाँते॥
अरु अविचारहि घुनको खाया। सूखो वृक्ष लखात लगाया॥
सुखरूपी फल तासो चाहत। तेउनहीं निसरत अवगाहत॥
दो०। सोविचार किहिनामजिहि, करि न शुभक्रियाहोय;।
क्रिया शास्त्र अनुसार जिहि होय विचारै सोय॥
सो०। नृपति विवेक कहाव अरु विचार रूपी ध्वजा।
जहँ विवेक नृपआव तहँसंगफिरतविचारध्वज,॥
छंदशुद्धगा। जहाँ वीचारकी भारी। ध्वजा आती अहैप्यारी;॥
तहाँ वीवेकको राजा। भि आताहै सजेसाजा॥
विचारै के जुहै पूरा। सुपूजै योग है रूरा॥
तिसे सारोहि संसारा। करै सबै नमस्कारा॥
दो०। ज्यों द्वितियाके चंद्रका करु सबै नमस्कार।
त्यों विचारवानै करै नमस्कार संसार॥
सो०। देखत देखत मोहिं अल्प बुद्धि हू विचार की।
दृढ़ता से मम सोहिं प्राप्त भये हैं मोक्षपद॥

चौ०।ताते यहविचार सबहीको। परम मित्र सुखदायक जीको॥
पुरुष विचारवान जो अहई। अन्तर बाहर शीतल रहई॥
हिम गिरि अन्तर बाहिर, जैसे। शीतल रहु; यह शीतल तैसे॥
देख! विचार किये पर ऐसा। प्राप्त होत सुपरम पद कैसा॥
जु पद नित्य अरु स्वच्छ अनंता। परमानन्द रूप भगवन्ता॥
ताको पाय त्याग की ताही। इच्छा होति कदाचित नाहीं॥
होत चाह न ग्रहण की आना। इष्टनिष्ट सब विषय समाना॥
जिमि तरग उपजत अरु लीना। रहत समुद्र समान प्रवीना॥
तैसे पुरुष विवेकी जो अह। इष्टअनिष्ट विषे समता रह॥
जगको भ्रम मिटिजात मलीना। आधाराधेयहु ते हीना॥
अरु अद्वैत तत्त्व तिहिकेवल। प्राप्तहोत जीवहि ताके बल॥
यह जग अपने मन के भाई। मोहहि ते प्रकटत उपजाई॥

दो०। दुखदायी अविचार करि देखि परत सब काल;।
बालक को अविचार करि, ज्यों भासत बैताल॥

सो०। तिमि याको जग भास ब्रह्म बिचारहि पावजब,।
जगते होय निरास नष्ट होय तब जगत भय॥

छन्द शिखरणी॥

हृदय में जाके होत सुभग विचारै प्रभु सही।
तहां होवे प्राप्तहि अति शमता की सब कही॥
तबै ज्यों बीजे सों निकसत सुअंकुर अतिही।
विचारै तैसे ते, रहति शमता गूढ मतिही॥
विचारै मानै जो लखत जिहि ओरै जगमही।
अनन्दै भासैहै तिहि कहँ लखै जाकहँ तही॥
नहीं काऊ दुःखै लखि परत ताको तब कहीं।
तमारी को जैसे कबहुँ अवलोकै तम नहीं॥

दो०। तिमि विचारवानहिन दुख कबहूं कतहुँ लखाहि,।
जहँविचार तहँदुख; जहा विचार सुखहितहांहि॥

सो०। जिमि तम केर अभाव भये नसैबेताल भय।

तैसे दुःख दुराव; होत विचार करत अवशि ॥

चौ० । दीर्घ रोग संसार अपारा । तिहि नाशक औषधसुविचारा॥
जाहि विचार प्राप्ति यहि भांती । उज्ज्वल होतितासु मुखकांती ॥
श्वेत कान्ति जैसे राकेशू । तिमि विचारवानहिंसुखलेशू ॥
हे रामजी!विचारकरियहि अति । वेगिपरमपदप्राप्तिहोतिगति; ॥
जासों अर्थ सिद्ध सुख धामा । होय विचार तासु को रामा ॥
अरु जासों सिधि होय अनर्था । तासु नाम अविचार जुव्यर्था ॥
सो अविचार सुरा सम भाई । जु करु पान उन्मत ह्वै जाई ॥
होत न तिहि विचार शुभकोई । शास्त्रनुसार क्रिया कछु जोई ॥
उत्तम क्रिया अहैं जग माहीं । तासों होति सु कबहूं नाहीं ॥
ताते करि अविचार प्रमाना । अर्थ सिद्धि नहिंहोत सुजाना ॥
इच्छा रूपी रोग नशाई । विचार रूप औषधी पाई ॥
जो विचार द्वाराश्रय लीन्हा । परमारथ सत्ता कहँ चीन्हा ॥

दो० । परम शांति ह्वै जात हेयोपादेय जु बुद्धि ।
ताकीरहि नहिंजातहै हृदयहोतिअतिशुद्धि ॥

सो० । सकल दृश्यको राव देखत साक्षीभूत ह्वै ।
जगके भावाभाव विषे रहत ज्योंकेहि त्यों ॥

छन्द गरुडत ॥

सु उदय अस्त ते रहित रूप निहसंग है ।
जिमि जल पूरणै जलधि औरहु अभंग है ॥
बहुरि विचारवान जिमि पूरण आत्म कै ।
कढु तिमि कूप माहँ परिकै बलै हाथ कै ॥
तिमि संसार रूप भव कूप महँ आइ कै ।
पुरुष बिचारवान निकसै कहँ सहाइ कै ॥
वह सुबिचार केर करि आश्रय समर्थ है ।
[illegible] आत्मा को लहत रूप [illegible] है ॥

सो०। तू विचार करि देख, ताते काहुहि कष्टजव।
उपजत तात विशेख, सोविचारसों मिटतसव;॥
चौ०। तुमहूँकरिविचारकोआसा। प्राप्ति सिद्धिको होहु हुलासा॥
प्राप्ति विचार याहिसों होई। सुनै वेद वेदान्तहि जोई॥
पढ़ै विचारै भली प्रकारा। आत्मतत्त्व लहुदृढ़ सुविचारा॥
जिमि प्रकाश करि होवै ज्ञाना। शुभ पदार्थको तव भगवाना॥
तिमिगुरु शास्त्र केरि करिवैना। तत्त्व ज्ञान होवै गुण ऐना॥
जिमि प्रकाश में अंधहु काहीं। प्राप्ति होति पदार्थ की नाहीं॥
तिमि गुरु शास्त्र विचारहुशूना। प्राप्ति आत्म पद होय न ऊना॥
जु सम्पन्न विचार के नैना। सोई देखत काहु लखैना॥
जोइ विचार नैन ते हीना। सोइअन्ध सबभांति मलीना॥
अस विचारु जो हौं को हैऊं?। यह जग क्या? अरु कैसेभैऊं?॥
पुनि कैसे होवै सो लीना?। कैसे होय यासु दुख क्षीना?॥
यहिविधि संत शास्त्रअनुसारा;। "सत्य" सत्यकरि जानुविचारा॥
दो०। अरु असत्यको असत लखि जान्यो जाहि असत्य।
ताको त्याग करै तुरित अरु जेहि जान्यो सत्य॥
सो०। तामें इस्थित होय; ताको नाम विचार शुभ;।
प्राप्ति आत्मपद सोय ताकोहोत विचार करि॥
छंदचकोर। दिव्यसुदृष्टि भई जिहि प्राप्ति विचारहि कै सुनिये रघुनायक। ताकहँ ज्ञान भयो अतिही सवहोय पदारथको सुखदायक॥ आत्म पदैहि विचारहि सों यह प्राप्त भयो सुअखण्ड प्रदायक। जाकहँ पाय भये परिपूर्ण सबै विधि सों नरहैं अतिलायक॥ होत चलायहुमान नहीं जग माहँ शुभाशुभ के वशह्वै फिरि। ज्योंहिकत्यों रहिजात जवैलगि होत परारवधै जलदै हिरि॥ होत शरीरहिकी तवलों यह चेष्टहि ताहिरहै जवलों धिरि। चाहजवैलगिहोयनिजै तवलोंतनकोचिपटाहिकरैतिरि॥
दो०। पुनि शरीरको त्यागिकै शुद्धरूप ह्वैजात।
आश्रय ब्रह्म विचार करि जग समुद्रतरुतात॥

सो० । होत कोउ जो रोग एतो रोदन सो करत ।
विचार रहितजुलोग रुदनकरत जेतोकछुक ॥
चौ० । कष्टजुप्राप्तहोत कछुजाहीं । सोउ रुदन एतो करु नाहीं ॥
शून्य विचारहिते नर जोई । सब आपदा प्राप्ति तिहिहोई ॥
ज्यों सब सरि स्वभाव अनुसरहीं; । आय प्रवेश जलधिमें करहीं ॥
तिमि अविचार माहँ सबधाई । करत प्रवेश आपदा आई ॥
कीच कीट है सोउ भलाई । कंटक गर्त्त होय सुखदाई ॥
सर्प अन्ध बिल सोउ प्रवीना । तुच्छ परन्तु विचारहि हीना ॥
पुरुष बिचार रहित अज्ञाना । धावत भोग माहँ; सो श्वाना ॥
हे रामजी! विचार रहित नर । महा कष्ट पावै निशि वासर ॥
ताते तुम एकहु क्षण प्यारे । रहियो जनि विचार ते न्यारे ॥
है विचार सो दृढ़ निर्द्वन्दा । जोहौंकौन, अहौंकिहिफन्दा ? ॥
अरुक्यादृश्यअहै ? पुनिकैसा ? । करिकै शुभविचारजब ऐसा ॥
सत्य रूप आत्माको जानी । त्यागकरै दृश्यहिंलखिहानी ॥
दो० । हेरामजी ! जुपुरुष सब, विचारवान अमान । ॥
सुसंसार के भोग में गिरत नाहिं सज्ञान ॥
सो० । अरु पुनि इस्थित होय सत्य मध्य जबआयसो ।
पुनि विचार जब सोय इस्थित होवै तासुउर ॥
छंदअनुष्टुप् । तत्त्वज्ञान बढ़ै तामें तबै होवै सुखी सही ।
तबै तत्त्व ज्ञानह्वते विश्राम होतु है सदा ॥
विश्रामतेचित्तकोहोवै उपशमभाँतिसोनाना; ।
पुनःचित्त उपशम ते दुःख नाशः सदैव चः ॥

संतोष वर्णन ॥

दो० । कह वशिष्ठ अविचार रिपुके नाशक; हे राम! ।
प्राप्त भयो सन्तोप जिहि परमानन्दितधाम ॥

सो०। देखत तृणकी नाईं तुच्छ त्रिलोकीको विभव;।
जो आनन्द सदाईं अमी पानते होत नहिं॥
चौ०। जो आनन्द विभवकोसाजा। होतनलहि त्रिलोककोराजा॥
तस आनन्द होत तिहि नाही। जस सन्तोष वान नर काहीं॥
इच्छा रूप राति हिय केरे। कमल देइ सकुचाय सवेरे॥
तोष रूप सूर्योदय जबहीं। नशु इच्छा रूपी निशि तबहीं॥
जैसे क्षीर समुद्र विमोहा। उज्ज्वलता करिके अति सोहा॥
तिमि सन्तोषवान की काँती। होत सुशोभित दिन अरुराती॥
त्रिलोक के राजा की इच्छा। भई न निवृति करि बहु शिच्छा॥
तब दरिद्र अरु निर्धन सोईं। सो सन्तोषवान अति जोईं॥
दो०। सो सबको ईश्वरहि संतोषवान तिहिनाम।
सुनिअप्राप्ति वस्तुवनकी चाहनकरैअकाम॥
सो०। रागरु दोष धरैन इष्टानिष्ट में प्राप्त है।
सो सन्तोष सुऐन संतोषहि सों परमपद॥
चौ०। नर संतोषवानजु सदाही। आनँद रूप अहै जगमाही॥
तृप्त आत्म इस्थितिसोभयऊ। फुरतिनइच्छाकछुतिहिहियऊ॥
संतुष्टता किये हिय ताको। प्रफुलितभयोकमलदलयाको॥
सूर्योदय जब होवै जैसे। प्रफुलित होय रविमुखी तैसे॥
तोषवान प्रफुलित है जाईं। जोइ अप्राप्त वस्तु सब भाईं॥
इच्छा तासु करत नहिं सोईं। प्राप्तभई अनइच्छित जोईं॥
यथा शास्त्रक्रमकरितिहिगहईं;। तिहिं संतोषवान सबकहईं॥
जिमि राकेश सुधाकर पूरण। त्यों सन्तोषवान उर शूरण॥
दो०। होत पूर्ण सतुष्टता करि जु हीन सन्तोष।
तिहिउरबन चिन्ताहुदुखबहुफलफूलसरोष॥
सो०। हे रामजी! प्रवीन जाको चित संतोष ते।
अहै सदाही हीन ताकी इच्छा विविध विधि॥
छंदघत्ता॥
जिमिसागरमाहीबहुविधिकाहीं तरँगहोतउपजै ज्योंयहँ,।

संतुष्ट आत्माहित परमानंदित ताकों जगत पदार्थमहँ ; ॥
सो किञ्चित नाहीं होत सदाहीं बुधिहेयोपादेयपहँ ।
आनन्द सुवैसा होवैजैसा शुभ संतोषी पुरुष कहँ ॥
दो० । अष्ट सिद्धि ऐश्वर्य करि होत न अस आनन्द ।
अमिहु पान के किये नाहिं होत नाथ सुखकन्द ॥
सो० ।शान्ति स्वरूप सदाहि सन्तोषी जगमें रहत ।
नितनिर्मलतिहिपाहिरहतसदैवसुचित्तअति ॥
चौ०। इच्छारूपउडतनितधूरी । सुसंतोष वरषा करि पूरी ॥
शान्ति भई अति ताके कारन । निरमलअहुसोपुरुषसंधारन; ॥
तोषवान नर सबको प्यारा । लागत नित सिगरेसंसारा ॥
जैसे पाका आम अति सुन्दर । सबको प्यारो लागत नृपवर ॥
अस्तुति करन योग सो भाई । जिहि संतोष प्राप्त भा माई ॥
परम लाभ नृप बर भा ताको । यह संतोष प्राप्त भा जाको ॥
जहाँ तोष तहँ इच्छा नाहीं । लेहु विचारि भले मनमाहीं ॥
भोग माहँ है दीन संतोषी । रहत नाहिं सदैव निरदोषी ॥
दो० । वह उदार आत्मा अहै तजे वस्तु सब नीच ।
रहत तृप्त आनन्द करि सर्वदाहि जगबीच ॥
सो० । जैसे जातनशाय मेघ पवन के आवतहि ।
त्यों सन्तोष जुआय नष्ट होतइच्छा सबहि ॥
छंदचुरिआला। जोसंतोषीपुरुषतिहिकरतेमुनीश्वर,देवतासब ।
नमस्कार नित करतहै धन्य धन्य ताकोकहतअब; ॥
धरिहै अब जब संतोष को पावैगो तब शोभापरम ।
ताको सीताराम तुम साधिलेहु करिकै अधिकश्रम; ॥

साधुसंग वर्णन ॥

दो० । हरषि, वशिष्ठकहा जबहिं, सुनहु रामअब ताहि ।
अवर जो कछुक दान तीर्थादिक साधन माहि ॥

सो० । तिनसों प्राप्ति न होय कबहूँ काहुहि आत्मपद ।
साधु संग करिसोय प्राप्ति आत्मपद होतनित ॥
चौ० । साधुसंगरूपीयकतरुवर । ताको पुष्प सुआत्मज्ञानवर ॥
इच्छा करी सुमन की जाने । पायो अनुभव फलको ताने ॥
जे नर आत्मानंद ते हीना । सोउ संतसंगतिजगकीना ॥
आत्मानंद पूर्ण सो होई । करि अज्ञान मृत्युलहु जोई ॥
संतन संग पाइ सो ज्ञाना । अमरहोत अमरेश समाना ॥
जिहि दुःखहि आपदा सतावै । करि सतसंग सम्पदा पावै ॥
कमल आपदा नाशनहारी । सतसंगति हिमवरपाभारी ॥
आत्मबुद्धि पावति संत संगी । रहित मृत्यु ते होत अभंगी ॥
होत सर्व दुःखन ते न्यारा । पावत परमानन्द उदारा ॥
संतनकी संगति जो करई । ज्ञान दीप हिय भीतर जरई ॥
तिमि अज्ञान रूप नशु यासों । महा विभवको पावत तासों ॥
पुनि न भोग पदार्थ चहकोऊ । वोधवान ह्वै विहरत सोऊ ॥
दो० । अपर बिराजत सबनते उत्तम पदके बीच ।
जिमिसुरतरुतरगयेफल्त वांछितपावतनीच ॥
सो० । तिमि समुद्र संसार पारलगावहिं संतजन ।
जैसे धीवर पार लागत नौकाकरि यतन ॥
छंददंडकला। तिमिसंतजुपावैपारलगावैकरिकैयुक्तिजलधिजगते,।
पारहि लैजावै धीवर नावै तैसे संत वेदमगते ॥
घनमोहअपारानाशनहारा पवनसंतकोसंगअहै ।
देहादिक जासों अनआत्मासों नेहनष्टभासर्वरहै ॥
शुद्धात्मामाहीइस्थितिजाही, तृसभयेहैंतासनसों ।
पुनिहोयनजाकीवुद्धिचलाकीजगकेइष्टअनिष्टन सों ॥
नितशमताभावामेंथितिपावाअसलसंसारसमुद्रहिके; ।
उतरै के हेतू, जैसे सेतू, सुगमसंगहैसन्तहि के ॥
दो० । नाशक आपद वेलि को जड़ औ मूल समेत ।
गंगधार सम संत सँग वरणत सकल सचेत ॥

सो०। सन्तप्रकाश सुखार्थ तिनके संग पदार्थ लहु।
अरु जो निज पुरुषार्थरूप नेत्र ते रहितभै॥
चौ०। सोपै हैन पदार्थअभागा। जो नर सन्तसंग कियत्यागा॥
नरक रूप दवाग्नि महँ आई। जरि है सूख काठकी नाई॥
अरु जो नर सतसंगतिकीन्हा। तिनकोनरकअनलयहचीन्हा॥
नाशक मेघ रूप सतसंगा। संत संग रूपी पुनि गंगा॥
तिहि पावन निर्मल जल जाई। जो असनान कीन हरषाई॥
अरु ताको पुनि तप दानादी। साधनको न प्रयोजन आदी॥
यहि सतसंग माहँ अनुरागे। द्वै है प्राप्त परम गति आगे॥
ताते तजि अब सकल उपाई। संत संग को खोजहु जाई॥
चिंतामणिआदिक ज्योंनिरधन; धनकोखोजतरहतमुदितमन॥
खोजु मुमुक्षु संत संग तैसे। अरु त्रैतापा ध्यात्मिक वैसे॥
ताको शीतल करने हारा। संत संग है अमृत धारा॥
तपी हुई पृथ्वी यह जैसे। शीतल होति मेघ करि तैसे॥
दो०। हृदय सु शीतल होत है करिकै शुभ सतसंग।
मोह द्रुम नाशक कुहाडा सतसंग अभंग॥
सो। अविनाशी पद पाव संतसंग करि यह पुरुष।
जाको पाय न आवै इच्छा पावन की कछुक॥
छन्द चन्द्रवर्त्म॥
अप्सरान सनलक्ष्मिहु जवते। संत संगअस उत्तम सवते॥
संत संग करता तिमि अहई। आपनी विभव हेतु सु कहई॥
संत संग आति योग करव है। मोक्ष पौरि परचार सरव है॥
सो कहे सकल मैं मति धनके। प्रीतिकीन्हजिन साधुसवनके॥
दो०। शीघ्र आत्मपदपाव सो अरु जो सेवा तासु।
करत नहीं सो मोक्षको प्राप्तहोतनहिवासु॥
सो०। चारिहु महँते एक द्वारपाल आवत जहाँ।
आय जात यह टेक तहाँ अवरहू तीनिये॥
।जहाँ समुद्र रहत तहँभाई। आयजात सब सरि समुदाई॥

तिमि जहँ शम आवै यहि रंगा । सु संतोष विचार सतसंगा ॥
जहां साधु संगम पुनि होई । शम विचार संतोषहु सोई ॥
और जहां कल्पद्रुम जाई । है थिति सबै पदारथ आई ॥
अरु संतोष आय जहँ भीनी । शम विचारसतसंगतहँ तीनी ॥
आय उपस्थित होत तहांई । आवै एक तीनि तिहि ठांई ॥
अरु जैसे राका शशि मांहीं । गुण अरु कला आयसबजाहीं ॥
तिमि सन्तोषहि आवतजहवाँ । तीनिहुं आय जात हैं तहवाँ ॥
जहँ विचार आवत निरदोषा । तहँ उपशम सतसंग संतोषा ॥
श्रेष्ठ सचिव सों इस्थित जैसे । राज्य लक्ष्मी होवै तैसे ॥
जहँ विचार तहँ तीनों आवें । ताते हम यह बात बतावें ॥
एकत्रित सर्व होहिं जहाँई । परम श्रेष्ठता जानु तहाँई ॥

दो० । चारि होहिं नतु एकतो करो अवश्यक आश ।
एक आवत चारिहु तबहि होवैं इस्थित पाश ॥

सो० । मोक्ष प्राप्त के हेत इहै चारि साधन परम ।
हैवे कीन अचेत और उपाय अनेक सब ॥

प्रमाण । संतोषः परमोलाभः सत्संगः परमं धनम् ।
विचारः परमं ज्ञानं शमंच परमं सुखम् ॥

दो० । हे रामजी! जु यह परम है करताकल्यान ॥
यहि चारिहु सम्पन्नसो धन्यापुरुषभगवान ॥

सो० । स्तुति करते ब्रह्मादि ताकी ताते रदहिरद ।
लगाय आश्रय वादि करि लै मनकोकेवशी ॥

छंदमाधवी ॥

अबहेप्रभु ! हे मनरूपहिनागसुहोतुविचारहिअकुशकेवशा ।
अरुहैमनरूपहिकाननमें यहवासनारूपनदी चलतीकश ॥
तिहिकूपरदोयकिनारशुभाशुभओपुरुषारथसोकरिबोयश ।
बहिजोशुभकेढिगजायचलोअरुरोकिमनाशुभओरहितेपश ॥
पुनिअंतरकेमुखआत्महुसन्मुखहोइहिवृत्तिप्रवाहप्रभाजब ।
चितऐसिहिभाँतिविचारकरैदृढहो२ १देतब ॥

अरुहैप्रथमैपुरुषारथको करिबो नहिंजो अविचारवलन्दव ॥
तबदूरहिहैकरनो अबिचार सुवेदहि दूर प्रवाह चलै सब ॥
दो० । दृश्यहि ओर प्रवाहजो चलत सुबन्धनकार ।
आत्मा ओर प्रवाह है अन्तर्मुख जब धार ॥
सो० । मोक्षकार है जाय तब तुरंत; हे रामजी! ।
आगे जु तव सुभाय इच्छाहोवै सो करहु ॥

षट्प्रकरण वर्णन ॥

दो० । कह वशिष्ठ हे रामजी! यह जो मेरी बैन ।
सोजानहु पावन परम अरु सबसुखको ऐन ॥
सो० । जे नर बिचारवान अरु अधिकारी शुद्धमति ।
तिहि यह बचनप्रमान कारणबोधहुकोपरम ॥
चौ० । अरुहैशुद्धपात्रअतिजोई । वचन पाय नर सोहत सोई ॥
वचनहुँ उनहि पायलहु शोभा; । दोउ समानहोय अस कोभा ॥
जैसे भये मेघ कर नाशा । शरत्काल शशिसोहु अकाशा ॥
शुद्ध पात्र को तिमि यह वचना । शोभादेत अधिकअतिरचना ॥
अरु जिज्ञासू निरमल बैना । सुनि महिमा हरषित सुखदेना ॥
परम पात्र तुम हौ; हे रामा! । ममबच उत्तमपरम ललामा ॥
अहै शास्त्र यह मोक्षोपायक । जु महा रामायण सुखदायक ॥
आत्मा बोध को परम कारण । भवसागरकीविपतिनिवारण ॥
वाक्य सिद्धताकी अति पावन । वाक युक्ति युक्तार्थ सुहावन ॥
अरु दृष्टान्त कहे विधि नाना । अरु जिनकेबहुजनप्रमाना ॥
होय पुण्य एकत्रित आई । तिनको कल्पवृक्ष मिलिजाई ॥
सो बहु बिधिफलिकैझुकिपरई । तब सो शास्त्रश्रवण यहकरई ॥
नीचहि श्रवण प्राप्त नहिं होई । आव न रुचि श्रवणमहँ सोई ॥
अरु जैसे धर्म्मात्मा राजा । न्याय शास्त्र के सुनिबे काजा ॥

इच्छा करु पापात्मा फेरी। इच्छा नाहिं करत तेहि केरी॥
तिमिकरुपुण्यवान तिहिइच्छा। अधम करतनहि कीन्हेइच्छा॥
दो०। जो कौ मोक्षोपाय कहि रामायण पढ़ि लेहि।
अथवा श्रद्धा युक्त सुनु निष्कामी सुख तेहि॥
सो०। विचारु यकत्रभाव आदिहिते लै अन्तलगि।
ताको निवृत पाव तबहीं यह संसार भ्रम॥

छंदलीलावती।

ज्यौंरजुकोजाना, तबपहिचाना, सर्पनहीं; भ्रमदूरभयो।
त्यों अद्वैतात्मातत्त्वहिआत्मा जाना तिहिभ्रमजगतगयो॥
यह मोक्षोपायक जीव सहायक शास्त्रमाहँ यहिभाँति कहैं।
वत्तीस हजारा श्लोकसँवारा षट प्रकरण इमिवासु अहैं॥
प्रथमै वैरागा, करौ विभागा कारण अति वैराग यही।
मरुभस्थल मार्हीं तरुवर नाहीं जैसे होत सुजान सही॥
पर: बरषा भारी भये करारी वृक्ष तबहिं है जात तहां।
त्यों हिय अज्ञानी मरुथल जानी नहिं तरुवर वैरागजहां॥
सो०। पर यह शास्त्र स्वरूप बरसै जो गंभीर अति।
उपजै वृक्ष अनूप, तासों यह वैराग शुभ॥
दो०। तामें एक सहस्र अरु पंचशतहि श्लोक।
तासुअनन्तरअतिविमलप्रकरणसुभगविलोक॥
चौ०।प्रकरणपुनिमुमुक्षुव्योहारा। तामेंअमलवचन निरधारा॥
तासों मणि जो भई मलीना। उज्ज्वल होयजुमार्जनकीना॥
तैसे वयनै अहैं यह जोई। अज्ञानी उर निर्म्मल होई॥
अरु विचार केवलहि सचेतू। सरमथ, होय आत्मपद हेतू॥
तिहि श्लोक एकही हजारा। तासु अनन्तर सुनहु उदारा॥
उत्पत्ति प्रकरण अन्तर ताके। पांच सहस्र श्लोक हैं जाके॥
तामें सुन्दरि कथा अनेका। युत दृष्टान्ते कहे सविवेका॥
जिहि विचार जग सतताभावा। रहत चलायमान मनकावा॥
अर्थ जु यह जगको अत्यन्ता। जानिपरत ।५८१ ॥

जे जग में नर दानव देवा । गिरि सरि आदि स्वर्ग महिजेवा ॥
आप तेज अरु वायु अकासा । आदिक स्थावर जंगमभासा ॥
सु अज्ञान करिकै सब अहई । किमि भै उत्पत्ति याकी रहई ॥
जिमि रजुमाहँ सर्प निरुअरई । रजत सीपमें नित लखिपरई ॥
सूर्य किरण में नीर लखाई । विटप अकाश मध्य देखाई ॥
युग शशि नयन तर्जनी लाये । जिमि गंधर्व नगर लखिआये ॥
भासति मनो राज्यकी सृष्टि । अरु संकल्प पूर है दृष्टि ॥

दो० ॥ अरु सुवर्ण महँ भूषणै सागर माहँ तरंग ।
॥ लखु अकाशमहँ नीलता बैठि नाव पररंग ॥
सो० । चलतवृक्षगिरितीर अद्भुतचरितलखात असं ।
॥ देखि परत रघुवीर धावतशशिअरुचलतघन ॥

छंदगंगोदका । स्तंभमें पूतरी भासती है भविष्यत्त के देशते लेइकै जानना । आसत्य पदार्थ ज्यों सत्य भासै सदा त्यों सवै जग्त आकाश रूपी बना ॥ आसु अज्ञानके अर्थ आकारही भासु उत्पत्ति अज्ञानकै कै घना । औ रकै ज्ञानसों लीनह्वैजात यों नींद में स्वप्नकी सृष्टि होवै जना ॥ जागते होति निवृत्ति तैसे अविद्याहुकै जक्त उत्पत्तिहोवै सही । सम्यकै ज्ञानकै होति वृत्ति सोई अविद्या कछू वस्तु सो है नही ॥ सर्व ब्रह्मौ चिदाकाशहीरूप सो शुद्ध आनंत यों वेदहूने कही । पर्म आनंदहू रूप तामे नहीं जक्त उत्पत्ति ना लीनहीं ह्वै रही ॥

दो० । आतम सत्ता आपमें इस्थित ज्यों की त्योंहिं ।
॥ तामहँ भासत जगत अस चित्रभीतिमें ज्योंहिं ॥
सो० । जैसे स्तम्भनमाहिं अमित पुतरियाँ होतिहैं ।
॥ भये विनाहिं लखाहि त्यों मनमें यहसृष्टिरहु ॥

चौ० । वास्तवमें कछुबनी सुनाहीं । सब अकाश रूपी यह आहीं ॥
स्पन्द रूप जब चित सम्वेदन । नानाविधि जगह्वै भासत छन ॥
अरु निस्पन्द जबहि होताई । तबहीं सकल जगत मिटिजाई ॥
उत्पत्ति कही यहि रीती । तासु अनन्तर सुनहु सप्रीती ॥

अनुपम स्थिति प्रकरण है तामें। वरणी जगकी इस्थितिजामें॥
इन्द्र धनुष जिमि रूप अकाशा। करि अविचार रंग युतभाशा॥
भासतजलजिमिरविकिरणमाही। जिमिजेवरिमें सर्प लखाही॥
निवृतिहोति करि सम्यक दृष्टी। त्यों अज्ञानहिं करि यह सृष्टी॥
मनो राज्य करि जग रचिलेई। कछु उत्पन्न भये नहि तेई॥
त्यों संकल्प मात्र जग सारा। जबलगि मनोराज्यव्योहारा॥
तब लों होत नगर यह सुन्दर। सुमनो राज्य अभावभयेपर॥
तब है जात नगर आभावा। जबलगि नहिं अज्ञानदुरावा॥
तबलौ जगकी उत्पति होई। नहीं अन्यथा देखहु कोई॥
जब संकल्प केर लय भाई। तब जग को अभाव है जाई॥
जिमि ब्रह्मा के दश सुत केरी। करि संकल्प सृष्टिथिति ढेरी॥
तैसे अहे जगतहू सोऊ। अर्थ रूप न पदारथ कोऊ॥

दो०। यहिविधिस्थितिप्रकरणकहा श्लोकसहस हैं तीन।
तिहिं विचार करि जगत की भई सत्यता हीन॥

सो०। बहुरि अनन्तर तासु अति उत्तम पावन परम।
"उपशम प्रकरण„ जासु पंचसहसअश्लोकातिहि॥

छंदमदिरा॥

तासु विचारअहै ममतादिक वासना क्षीन तुरन्त भये।
स्वप्नहुको तजि जागत वासना जातिरहैंतिमियाहिगये॥
वासना लीन तुरन्त है जात अहंममतादि विचारकये।
निश्चय मे जग नाहिंरहै किमिवासुक जासनप्रीतिठये॥
सोचतज्यों नर एकंतिसे जग भासत स्वप्नमेंनीक अहै।
औतिहि के ढिगजा नरजागत सो जगस्वप्नप्रकाशकहै॥
सो जबहीं नभरूप भयो तब वासना हू किमितहिरहै।
नष्ट भई जब वासना सो मनको उपशम्यहि होतमहै॥

दो०। तब तिहि देखन मात्र सब चेष्टा होति उदोति।
याके मनमें अर्थ रूपी इच्छा नहिं होति॥

सो०। जैसे देखत मात्र होति मृत्तियहि अग्निकी।

जे जग में नर दानव देवा। गिरि सरिआदिस्वर्ग महिजेवा॥
आप तेज अरु वायु अकासा। आदिक स्थावर जंगमभासा॥
सु अज्ञान करिके सब अहई। किमि भै उत्पति याकी रहई॥
जिमि रजुमाहँ सर्प निरुअरई। रजत सीपमें नित लखिपरई॥
सूर्य किरण में नीर लखाई। विटप अकाश मध्य दरशाई॥
युग शशि नयन तजे ती लाये। जिमि गंधर्वनगर लखिआये॥
भासति मनो राज्यकी सृष्टि। अरु संकल्प पूर है दृष्टि॥

दो०॥ अरु सुवर्ण महँ भूषणै सागर माहँ तरंग।
लखु अकाशमहँ नीलता बैठि नाव पर रंग॥

सो०। चलतवृक्षगिरितीर अद्भुतचरितलखात असे।
देखि परत रघुवीर धावतशशिअरुचलतघन॥

छंदगंगोदका। स्तंभमें पूतरी भासती है भविष्यत्त के देशते लेइकै जानना। आसत्य पदार्थ ज्यों सत्य भासै सदा त्यों सबै जग्त आकाश रूपी बिना॥ भासु अज्ञानके अर्थ आकारही; भासु उत्पत्ति अज्ञानकै फै घना। औरकै ज्ञानसों लीनह्वैजात यों नींद में स्वप्नकी सृष्टि होवै जना॥ जागते होति निवृत्ति तैसे अविद्याहुकै जक्त उत्पत्तिहोवै सही। सम्यकै ज्ञानकै होति वृत्ति सोई अविद्या कछू वस्तु सोहै नही॥ सर्व ब्रह्मै चिदाकाशहीरूप सो शुद्ध आनंत यों वेदहूने कही। पर्म आनंदहू रूप तामे नहीं जक्त उत्पत्ति ना लीनहीं ह्वै रही॥

दो०। आतम सत्ता आपमें इस्थित ज्यों की त्योंहि।
तामहँ भासत जगत अस चित्रभीतिमें ज्योंहि॥

सो०। जैसे स्तम्भनमाहिं अमित पुतरियाँ होतिहैं।
भये विनाहिं लखाहि त्योंमनमें यहसृष्टिहु॥

चौ०॥ वास्तवमेंकछुबनीसुनाहीं। सब अकाश रूपी यहआहीं॥
स्पन्द रूप जब चित्त सम्वेदन। नानाविधि जगहैभासतछन॥
अरु निस्पन्द जबहिं होताई। तबहीं सकल जगतमिटिजाई॥
जग उत्पत्ति कही यहि रीती। तासु अनन्तर सुनहु सप्रीती॥

अनुपम स्थिति प्रकरण है तामें। वरणी जगकी इस्थितिजामें ॥
इन्द्र धनुप जिमि रूप अकाशा। करि अविचार रंग युतभाशा॥
भासतजलजिमिरविकणमाही। जिमिजेवरिमें सर्प्प लखाहीं॥
निवृतिहोति करि सम्यक दृष्टी। त्यों अज्ञानहिं करि यह सृष्टी॥
मनो राज्य करि जग रचिलेई। कछु उत्पन्न भये नहि तेई॥
त्यों संकल्प मात्र जग सारा। जबलगि मनोराज्यरचोहारा॥
तब लौं होत नगर यह सुन्दर। सुमनो राज्य अभावभयेपर॥
तब है जात नगर आभावा। जबलगि नाहिं अज्ञानदूरावा॥
तबलौं जगकी उत्पति होई। नहीं अन्यथा देखहु कोई॥
जब संकल्प केर लय भाई। तब जग को अभाव है जाई॥
जिमि ब्रह्मा के दश सुत केरी। करि संकल्प सृष्टिथिति हेरी॥
तैसे अहै जगतहू सोऊ। अर्थ रूप न पदारथ कोऊ॥

दो०। यहिविधिस्थितिप्रकरणकहा श्लोकसहस है तीन।
तिहि विचार करि जगत की भई सत्यता हीन॥

सो०। वहुरि अनन्तर तासु अति उत्तम पावन परम।
"उपशम प्रकरण" जासु पंचसहसश्लोकतिहि॥

छंदमदिरा॥

तासु विचारअहै ममतादिक वासना लीन तुरन्त भये।
स्वप्नहुको तजि जागत वासना जातिरहैतिमियाहिगये॥
वासना लीन तुरन्त है जात अहंममतादि विचारकिये।
निश्चय मे जग नाहिंरहै किमिवासुके जासनप्रीतिठये॥
सोवतज्यों नर एकांतिसे जग भासत स्वप्नमेनीक अहै।
औतिहि के ढिगजो नरजागत सो जगस्वप्नअकाशकहै॥
सो जबहीं नभरूप भयो तब वासना हू किमितांहिरहै।
नष्ट भई जब वासना सो मनको उपशम्यहि होतमहै॥

दो०। तब तिहि देखन मात्र सब चेष्टा होति उदोति।
याके मनमे अर्थ रूपी इच्छा नहि होति॥

सो०। जैसे देखत मात्र होति मूर्त्तियहि अग्निकी।

जे जग में नर दानव देवा । गिरि सरि आदि स्वर्ग महि जेवा ।
आप तेज अरु वायु अकासा । आदिक स्थावर जंगम भासा ॥
सु अज्ञान करिके सब अहई । किमि भौ उत्पति याकी रहई ॥
जिमि रजु माहँ सर्प निरुअरई । रजत सीपसें नित लखि परई ॥
सूर्य किरणि मे नीर लखाई । विटप अकाश मध्य दरशाई ॥
युग शशि नयन तर्जनी लाये । जिमि गंधर्व नगर लखि आये ॥
भासति मनो राज्य की सृष्टि । अरु संकल्प पूर है दृष्टि ॥

दो० । अरु सुवर्ण महँ भूपणै सागर माहँ तरंग ।
लखु अकाशमहँ नीलता बैठि नाव पररंग ॥

सो० । चलत वृक्ष गिरि तीर अद्भुत चरित लखात अस ।
देखि परत रघुबीर धावत शशि अरु चलत घन ॥

छंद गंगोदका । स्तंभ में पूतरी भासती है भविष्यत्ते के देशते लोइ कै जानना । आसत्य पदार्थ ज्यों सत्य भासै सदा त्यों सबै जगत आकाश रूपी बना ॥ भासु अज्ञान के अर्थ आकार ही; भासु उत्पत्ति अज्ञान के के मना । और के ज्ञान सों लीन ह्वै जात यों नींद में स्वप्न की सृष्टि होवै जना ॥ जागते होति निवृत्ति तैसे अविद्याहु कै जक्त उत्पत्ति होवै सही । सम्यकै ज्ञान कै होति तृप्ति सोई अविद्या कछू वस्तु सो है नहीं ॥ सर्व ब्रह्मै चिदाकाश ही रूप सो शुद्ध आनंत यों वेद हूने कही । पर्म आनंद हू रूप तामें नहीं जक्त उत्पत्ति ना लीन ह्वै रही ॥

दो० । आतम सत्ता आपमें इस्थित ज्यों की त्योंहि ।
तामहँ भासत जगत अस चित्र भीति में ज्योंहि ॥

सो० । जैसे स्तंभन माहि अमित पुतरियाँ होति हैं ।
भये बिनाहिं लखाहिं त्यों मन में यह सृष्टि रहु ॥

चौ० । वास्तव में कछु बनी सु नाहीं । सब अकाश रूपी यह आहीं ॥
स्पन्द रूप जब चित सम्वेदन । नाना विधि जग है भासत छन ॥
अरु निस्पन्द जबहिं होताई । तबहीं सकल जगत मिटि जाई ॥
जग उत्पत्ति कही यहि रीती । तासु अनन्तर सुनहु सप्रीती ॥

अनुपम स्थिति प्रकरण है तामें। वरणी जगकी इस्थितिजामें ॥
इन्द्र धनुष जिमि रूप अकाशा। करि अविचार रंग युतभाशा॥
भासतजलजिमिरविकणमाही। जिमिजेवरिमें सर्प्प लखाही॥
निवृतिहोति करि सम्यक दृष्टी। त्यों अज्ञानहिं करि यह सृष्टी॥
मनो राज्य करि जग रचिलेई। कछु उत्पन्न भये नहि तेई॥
त्यों संकल्प मात्र जग सारा। जबलगि मनोराज्यव्यवहारा॥
तब लौं होत नगर यह सुन्दर। सुमनो राज्य अभावभयेपर॥
तब है जात नगर आभावा। जबलगि नाहि अज्ञानदुरावा॥
तबलौं जगकी उत्पति होई। नहीं अन्यथा देखहु कोई॥
जब संकल्प केर लय भोई। तब जग को अभाव ह्वै जाई॥
जिमि ब्रह्मा के दश सुत करी। करि संकल्प सृष्टिथिति ढरी॥
तैसे अहै जगतहु सोऊ। अर्थ रूप नि पदारथ कोऊ॥
दो०। याहिविधिस्थितिप्रकरणकहा श्लोकसहस हैं तीन।
तिहि विचार करि जगत की भई सत्यता हीन॥
सो०। बहुरि अनन्तर तासु अति उत्तम पावन परम।
"उपशम प्रकरण" जासु पंचसहसअश्लोकातिहि॥

छंदमदिरा॥

तासु विचारअहै ममतादिक वासना लीन तुरन्त भये।
स्वप्नहुको तजि जागत बासना जातिरहैतिमियाहिगये॥
वासना लीन तुरन्त ह्वै जात अहंममतादि विचारकये।
निश्चय में जग नाहिरहैं क्रिमिवासुके जासनप्रीतिठये॥
सोवतज्यों नर एकतिसे जग भासत स्वप्नसैनीक अहै।
औतिहि के ढिगजो नरजागत सो जगस्वप्नअकाशकहै॥
सो जबहीं नभरूप भयो तब वासना हू किमिताहिरहै।
नष्ट भई जब वासना सो मनको उपशम्याहि होतमहै॥
दो०। तब तिहि देखन मात्र सब चेष्टा होति उदोति।
याके मनमें अर्थ रूपी इच्छा नहिं होति॥
सो०। जैसे देखत मात्र होति मूर्त्तियहि अग्निकी।

अर्थाकार न पात्र तैसे चेष्टा होति तिहि ॥

चौ०। इच्छा नष्टहोतिजबमनते। तबनिर्वाण होत मन तनतें ॥
जैसे दीप तेल ते हीना। होय जात निरवाण मलीना ॥
इच्छा हू ते रहित मनवैसे। होय जात निरबाण अनैसे ॥
उपशम प्रकरणअहै याहिविधि,। तासुअनंतरसुनहुज्ञाननिधि ॥
पुनि प्रकरण निर्बाण सुजाना। शेष माहँ कहु बच निर्वाना ॥
चित;चितसम्बन्धकरिअज्ञाना। है निर्वाण विचार प्रमाना ॥
जैसे शरद काल जब आवा। शुद्ध होत नभ मेघ अभावा ॥
तैसे नर करिकै सु बिचारा। होय जात निर्मल निरधारा ॥
अहंकार है रूप पिचाशा। सो बिचारकरि पावत नाशा ॥
इच्छा स्फूर्ति अहै कछु जेती। सो निरबान होति सब तेती ॥
रहित स्फुरन ते शिला जैसे। ज्ञानवान इच्छा ते तैसे ॥
तब जेती यात्रा जग केरी। सब याको है जात घनेरी ॥
जो कछु करन, करि सकत सोई;। है शरीर अशरीरी होई ॥
नाना विधि जग लिनहिंलखाही;। जगकी-नेतते रहित वाही ॥
अहं ममत्वादिक तम रूपा। जगतिहि नहिं भासतभवकूपा॥
ज्यों रवि अधकार नहिं देखै। तैसे वह जग को नहि पेखै ॥

दो०। प्राप्त होत पद को बड़े जिमि सुमेरु को ठौर।
कोनमेंकमलहोत कौ स्थित रहतिहिपर भौर ॥

सो०। ब्रह्म के किसी कोनमें जग रूप तुषार तिमि।
जीवरूप करिगोन स्थित होते तापर भ्रमर ॥

छन्द वेगवती ॥

वह पूरुष है सु अचिन्ता। है चिन्मात्र स्वरूप अनन्ता ॥
अवलोकन को मन ताते। तो वह है नभ रूप तहाँ ते ॥
वह प्राप्त होय पद ताही। जा पद की उपमा नहिं आही ॥
विधि विष्णु रुद्र न समर्थाः। तापद सदृश कहुँ वह व्यर्था ॥

दृष्टान्त विवरण ॥

दो० । हे रघुनाथ ! वशिष्ठ कह-परमोत्तम यह वाच ।
ताहि विचारन हार पद उत्तम पावत साच ॥
सो० । जैसे उत्तम खेत में उत्तम बीजहु वुए ।
तब उत्तम फलदेत होततासु उत्पत्ति जब ॥
चौ० । तैसेवाहि विचारन हारा । प्राप्त होत उत्तम पद सारा ॥
कैसो वाक्य अहै यह सोई । वाक्य युक्ति पूर्वक है जोई ॥
आपँहु वाक्य युक्ति ते हीना । करत त्याग ताको परवीना ॥
युक्ति पूर्वक वाक्य प्रचारा । सज्जन जन करु अंगीकारा ॥
युक्ति हीन विधि हू की बानी । सूखे तृणइव त्यागहिं ज्ञानी ॥
युक्ति पूरवक बालक बैना । अंगीकार करत गुण ऐना ॥
पितहु कूप को पानी खारा । करियत्याग तिहिराम उदारा ॥
निकट कूप जल मिष्ट जु होई । ताको पान करै सब कोई ॥
दो० । तैसे बड़ अरु छोटको करिये नाहिं विचार ।
युक्ति पूरवक वचन की कीजे अंगीकार ॥
सो० । मेरो वचन उदार युक्ति पूरवक हैं सकल ।
पर्म बोधको कार जो नर ह्वै एकाग्रयद ॥

छंददोधक ।

आदिहिते यह शास्त्र अंतलगि । बाँचहिं पंडितसोसुनु यापगि ॥
सो जब तासु विचार करै अति । होय तबैहि सस्कारित मति ॥
सो प्रथमै वैराग विचारहि । तो वैरागहि बाढैहि सारहि ॥
जे कछु जक्त विषे रमणीयहि । भोग पदार्थ अहैं तिहिकीग्रहि ॥
दो० । जानि विरसन पदार्थ की करते बाँछा कोय ।
ह्वै विराग जब भोग में शान्ति रूप तब होय ॥
सो० । औरौ होय प्रतीति आत्मतत्त्व में ताहिक्षण ।
जब विचार में प्रीति संस्कारित ह्वै बुद्धिअति ॥
चौ० । तबहिशास्त्रसिद्धान्ताहिआई । बुद्धिमाहँ इस्थिति ह्वैजाई ॥

अवर रहित संसार विकारा । ह्वैहै निरमल वुद्धि प्रचारा ॥
जलद अभाव शरदऋतुमांही । नभ सवओर स्वच्छ ह्वैजाही ॥
तैसे निरमल होवै वुद्धी । करिविचारते मति अतिशुद्धी ॥
पीड़ा आधि व्याधि वहोरी । ताहि न ह्वैहै अस मति मोरी ॥
ज्यों ज्यों दृढ़ होवै सुविचारा । त्यों त्यों शातात्मा ह्वै सारा ॥
ताते जो संसार उपाई । त्यागि देहु सब ताको भाई ॥
वार वार यह शास्त्र विचारै । चेतन सत्ता उदय तुम्हारै ॥

दो० । ह्वैहैत्योंत्यों लोभ मोहादिक सकल विकार ।
सत्ताह्वै है नष्ट यह देखिलेहु सविचार ॥

सो० । जैसे ज्यों ज्यों सूर उदय होतहै त्योंहित्यों ।
अन्धकार सबदूर होयनष्ट ह्वैजात तब ॥

छंदवर्नानी ।

तिमिहिविकार नष्ट सव होयजायप्यारे ।
तिस पदकी तबैहि तिहि प्राप्तिहोयन्यारे ॥
जिहिपद पायकै जगतकेर क्षोभ नाशै ।
हिमऋतुमाहँ मेघ जिमि नष्टह्वैअकाशै ॥
तिमि जगकेर क्षोभ मिटिजातहैं अरेधी ।
सकतजु ज्ञानवानहिं न राग द्वेष वेधी ॥
नर पहिरेहु कवचवर वेधु नहिंताही ।
तिहिकहँ चाहभोगकर होति नेकुनाही ॥

दो० । विषयभोग जब आइकै विद्यमानरहु ताहि ।
विषयभूततव जानि तिहिं वुद्धिग्रहणकरु नाहि ॥

सो० । अर्थ जानिकै नाहि वाहर निकसत सो कबहुं ।
अन्तर आतमा माहिं स्थिर रहतेहैं सो सदा ॥

चौ० । तिमिपतिव्रतानारिकहुंनाहीं । अंतरपुरते वाहिरजाहीं ॥
तैसे तासु वुद्धि गुण ऐना । अन्तरते वाहर निकसैना ॥
वाहिरते हे राम ! लखाई । सोऊ प्रकृत जन्य की न्याई ॥
प्रिहोतजु अनिच्छित वाको । देखि परत भुगतत सो ताको ॥

अरु वहोरि अन्तरते वाही। राग द्वेष नहिं फुरत सदाही ॥
हेरामजी ! जगत की जो भा। उतपाति प्रलय केरिहै क्षोभा ॥
ज्ञानवान को नष्ट न कोऊ। कवहुं करिसकत देखहु सोऊ ॥
जैसे तात चित्रकी वेली। सकत चलाय न आंधी पेली ॥
दो०। वहि संसारहि ओरते होय जात जड तात।
वृक्षन्याइ गम्भीरगिरि इव इस्थिरह्वैजात ॥
सो०। अपर चन्द्र की नाई सो शीतल ह्वै जातहै।
आत्म ज्ञानकरि आइ प्राप्तहोत ऐसेपदहिं ॥

छंद तारक। जिहि पाय न और रहै कछु योगू। यह कारण आतम ज्ञानक लोगू ॥ कहते यह शास्त्रहि मोक्ष उपाया। वह भातिजहा दृष्टान्त वताया ॥ अपरिच्छिन होय जु वस्तु न भासी। तिहि न्यायहि देखिपरै सु प्रकासी ॥ तिसकौं विधि पूर्वक दै दृष्टांता। समुझावहि सो दृष्टान्त कहांता ॥

दो०। यह जगतहि, हेरामजी ! कारज कारनहीन।
आत्मा जग की ऐक्यता कैसे होय प्रवीन ॥
सो०। हौं दृष्टान्त प्रशंश ताते जो कहिहौं सकल।
ताकौ एकहि अंश करियो अंगीकार तुम ॥
चौ०। अंगिकार न करियसवदेशा। कार्य कार्णकोकलपुखलेशा ॥
मैं अत्र ताहि निषेधन हेतू। कहौं स्वप्न दृष्टान्त सचेतू ॥
सो समुझत तेरे मन केरी। ह्वैहै संशय नष्ट घनेरी ॥
भेद दृश्य दृग मूर्खहि भासा। करौं स्वर्ग दृष्टान्त प्रकासा ॥
ताके दूर करन हित ताता। तासु विचार कियेते भ्राता ॥
मिथ्या भाग्य कल्पना जोई। केर अभाव तुरन्तहि होई ॥
यह कल्पना नाश करतारा। मोक्षुपाययहशास्त्र हमारा ॥
आदि अन्त पर्यन्त विचारी। ताहि पुरुष होवै संस्कारी ॥
दो०। पद पदार्थ को जानने हारा वारहि वारु।
होयदृश्यभ्रमनाशजव तिहिवहुभांतिविचारु ॥
सो०। देखिलेहु भगवान यहि शास्त्र के विचार में।

अवर तीर्थ तपदान केरि अपेक्षा आदि नाहिं॥

छन्द चरडी।

जहँई भवन तहँई सब वैसे। करुजसरह घर भोजन तैसे॥
अरु यहि कर जब बारहि बारा। नशहितबहिय अज्ञानविचारा॥
तब हिय लहु पद आतमकाही। रघुबर! यहशुभशास्त्र सदाही॥
यहि जगमहँ सुप्रकाशहि रूपा,। बहुरि कहत हमताहिअनूपा॥

दो०। अन्धकार में भांतिबहु ज्यों पदार्थ न लखाय।
दीपक के सुप्रकाश करि चक्षुसहित दरशाय॥

सो०। शास्त्र रूप तिमि दीप विचार रूपी नेत्र युत।
जबयहहोय समीप; होत प्राप्त तब आत्मपद॥

चौ०। बिनुबिचारकेआतमज्ञाना। करिनहिंप्राप्तशापवरदाना॥
करु विचार करि दृढ़ अभ्यासा। प्राप्तहोत तबयह अन्यासा॥
ताते मोक्षु पाय यह जोई। पावनपरमशास्त्रशुचिहोई॥
तिहि बिचार ते जग भ्रम नाशै। अरु देखतदेखतहि विनाशै॥
पन्नग मूर्ति लिखी ज्यों होई। करिअविचारपावभयकोई॥
जब बिचार करि देखिय ताही। तबैसर्पभ्रमसबमिटिजाही॥
दृष्टि आव सो सर्पाकारा। परतिहिंभयमिटिजातअपारा॥
त्यों यह जग भ्रम किये बिचारा। होयजात नष्टहि सब सारा॥

दो०। जन्म मरणभय रहतनाहि सोऊ दुःख अपार।
नष्ट सकल ह्वैजातहै करि यहि शास्त्र बिचार;॥

सो०। जो बिचार यह त्याग सो माताके गर्भ महँ।
होय कीट तिहि लाग छूटैगो नहिं कष्टते॥

छन्द धारी। बिचारहिवानहि आत्म पदैजू। सुप्रापति होइहि वेद बदैजू॥ जु श्रेष्ठहु ज्ञानिहु ताहि भनंतै। अहै यह सृष्टि अपूर्व भनंतै॥ तिसै पुनि भासतरूप ऽपनाही। पदार्थ न एकहु भिन्न लखाही॥ कभी यहआत्महिते न गयाहै। जिसै जलको जिमि ज्ञान भयाहै॥

दो०। तिहि लहरी आवर्त्त सब भासतहै जलरूप॥

तिमि ज्ञानिहिसब आत्म रूपभासत है भूप ॥
सो० । अरु पुनि इन्द्रिहु केर इष्ट निष्टकी प्राप्ति महँ ।
इच्छादोष वसेर करिनहिं सकत अनेकविधि ॥
चौ० । मन संकल्प ते रहित होई । शान्तिरूपनितयकरससोई ॥
मन्दर गिरि निकसे ते जैसे । शान्तिक्षीरनिधिपावत;तैसे ॥
यहि संकल्प विकल्पहि हीना । शान्ति रूप नर होत दुखीना ॥
अवर तेज जो होत अदाया । होत सोय दाहक रघुराया ॥
ज्ञान तेज पर जिहि घट मांही । उदय शांति सो शीतल आही ॥
पुनि तामें ससार विकारा । कोउ नहीं रहिजात दुखारा ॥
जिमिकलियुगहुमहँशिखावाला; । तारा उदयहोत ततकाला ॥
सो कलियुगके भये अभावा । उदय होत नहि रविकुलरावा ॥
दो० । ज्ञानवानके चित्तमें स्यों विकारउत्पन्न ।
होतनहीं हेरामजी ! तुमहु वुद्धिसम्पन्न ॥
सो० । आत्माकेरप्रमाद करिउपजत संसारभ्रम ।
आत्मज्ञानप्रसाद शान्तिहोतहै यत्नबिनु ॥

छदगजाविलसित । फूल सुपत्र काटन महँ कछुयतन है । आत्महि केरपावनमहँ कछुनकनहै ॥ क्योंकि जुत्रोयरूप समुभ्कत तिहिकरके; । जाननमात्र ज्ञान; तिहिमहँ थिति हरके ॥ क्या शुभयत्न होनकर कहतुम तिहिको; । आत्म अद्वैत शुद्ध अरु जगतभ्रमहिको ॥ पूर्व विचारके करतजबलहु सतता । सोभ्रममात्र जानि यहि तिहिकहँ गतता ॥

दो० । पूरव अपर विचारके किये सत्य शोभादि ।
तासुरूप सो जानिये जगत सत्यता वादि ॥
सो० । अन्तविषे कछु नाहि ताते हैयह सत्यवत ।
आदिहु अन्तहिमाहिं स्वप्नकछू जैसेनहीं ॥
चौ० । तैसेही यह जाग्रत आहीं । आदि अन्त में है कछु नाहीं ॥
ताते जाग्रत स्वप्नहु दोऊ । तुल्य अहैं बरणत सब कोऊ
यह बातौ बालकहू जान आदि अन्त में जो ।

सो०। परो पदारथ होय तामहँ दीप प्रकाश सन।
देखि लीजिये,जोय साथ प्रयोजन दीप के ॥
छंदहरिणी।
कहै नहिं; दीपक काकर है। पुनः कस तैल व वाति रहै ॥
कहाँ कर है यह दीप बरै। प्रकाशहि आगियकार करै ॥
उदाहरणै तिमि एक अंसै। सु आतम बोध निमित्त असै ॥
सु वाक्यरथै जिहि सिद्धि हुवै। सु लै वचनै अति सिद्धिछुवै ॥
दो०। अरुजिहिमोंवाक्यार्थनहि सिद्धिहोयतिहित्याग,।
जो प्रकटै अनुभव; वचन ताही महँ अनुराग ॥
सो०। जो निजबोध निमित्त ग्रहण करतहै वचनको।
सोई श्रेष्ट सुचित्त ग्रहणकरत जो वादहित ॥
चौ०। सोई चोगु चुंचनर आही। अर्थहि सिद्धिकरत वहनाही ॥
कोउ लिये अभिमान पुकारै। गजइव शिरपर माटी डारै ॥
ताको अर्थ सिद्धि नहिं होई। अपने बोधके निमित जोई ॥
ग्रहण करतहै वचन सुपासा। करि विचारकरु तिहिअभ्यासा ॥
तबवह आत्म शान्तिको पावत। जाहिपायसबदुख विसरावत ॥
पावन हेतु आत्म पद ताही। अवशिमेव अभ्यासहि चाही ॥
जबहीं शम सन्तोष विचारा। संत समागम करि अधिकारा ॥
होवै प्राप्ति बोधकी ताता। परमपदहिं तब पावत जाता ॥
दो०। जासु कहत दृष्टान्त सो एक देशलै तात।
सब मुखकहे अखण्डताको अभावह्वैजात ॥
सो०। जो सबमुख दृष्टान्त मुख्यजानु सोरूपसत।
औरनहीं यहिभान्त आत्मा सत्यहिरूपयह ॥
छदलक्षीधर। कार्यकारणसे हीनहै शुद्धिसो;। और चैतन्य-
हृधामहै बुद्धिसो ॥ तासु जानावनेकेलिये कीजिये। वासु दृष्टा-
न्तको जक्त क्यों दीजिये ॥ जक्त वृत्तान्त जोई कहै देइकै
कहै एकही अंशको लेइकै। बुद्धिमानौहु दृष्टान्तको एकही
को करतहैं ग्रहण यों टेरुही ॥

सो०। परी पदारथ होय तामहँ दीप प्रकाश सन।
देखि लीजिये,जोय साथ प्रयोजन दीप के॥

छंदहरिणी।

कहै नहिं, दीपक काकर है। पुनः कस तैल व वाति रहै॥
कहाँ कर है यह दीप वरै। प्रकाशहि अंगियकार करै॥
उदाहरणै तिमि एक अंसै। सु आतम वोध निमित्त ग्रसै॥
सु वाक्यरथै जिहि सिद्धि हुवै। सु लै बचनै अति सिद्धिछुवै॥

दो०। अरुजिहिमोंवाक्यार्थनहि सिद्धिहोयतिहित्याग;।
जो प्रकटै अनुभव, वचन ताहीं महँ अनुराग॥

सो०। जो निजवोध निमित्त ग्रहण करतहै वचनको।
सोई श्रेष्ट सुचित्त ग्रहणकरत जो वादहित॥

चौ०। सोई चोगु चुंचनर आही। अर्थहि सिद्धिकरत वहनाही॥
कोउ लिये अभिमान पुकारै। गजइव शिरपर माटी डारै॥
ताको अर्थ सिद्धि नहिं होई। अपने वोधके निमित्त जोई॥
ग्रहण करतहै वचन सुपासा। करि विचारकरु तिहिअभ्यासा॥
तववह आत्म शान्तिको पावत। जाहिपायसवदुख विसरावत॥
पावन हेतु आत्म पद ताही। अवशिमेव अभ्यासहि चाही॥
जवहीं शम सन्तोप विचारा। संत समागम करि अधिकारा॥
होवै प्राप्ति वोधकी ताता। परमपदहिं तव पावत जाता॥

दो०। जासु कहत दृष्टान्त सो एक देशलै तात।
सव मुखकहे अखण्डताको अभावह्वैजात॥

सो०। जोसवमुख दृष्टान्त मुख्यजानु सोरूपसत।
औरनहीं यहिभान्त आत्मा सत्यहिरूपयह॥

छंदलक्षीधर। कार्यकारणयसेहीनहै शुद्धिसो,। और चैतन्य-रूपामहै वुद्धिसो॥ तासु जानावनेकेलिये कीजिये। व्यासु दृष्टान्तको जक्त क्यों दीजिये॥ जक्त वृत्तान्त जोई कहै देइकै। सो कहै एकही अंशको लेइकै। वुद्धिमानौहु दृष्टान्तको एकही को करतहैं ग्रहण यों टेकही॥

सो०। श्रेष्ठ पुरुष निज बोधके निमित ग्रहणकरु सार।
और यही जिज्ञासुको चाहिय वारम्बार॥
सो०। जो निज बोधहि हेत ग्रहणकरै यहि सार कहँ।
अरु न वादकरु चेत तामें जड़ता विवश निज॥
चौ०। जैसे काहु क्षुधार्थी काहीं। चावल पाक प्राप्त ह्वै जाहीं॥
तब भोजन करिबेको ताही। अहै प्रयोजन; दूसर नाही॥
वाकी उत्पति इस्थिति केरी। व्यर्थ वाद करनो बहुतेरी॥
हे रामजी! वाक्य शुभ सोई। प्रकट करै अनुभव को जोई॥
अरु जो अनुभवको प्रकटैना। ताको त्यागकरहु गुण ऐना॥
जबलौं नहिं पायो बिश्रामा। है कर्तव्य विचार ललामा॥
है विश्राम तूर्य्य पद नामा। जब विश्राम प्राप्त भा रामा॥
अक्षय शांति होति है तबहीं। नहि अन्यथा होत यहकबहीं॥
दो०। मन्दरगिरिके क्षोभते रह पयोधि ज्यों शांति।
संतत विश्रामी नरहिं होति शाति तिहिभांति॥
सो०। तूर्य्यपदहि संयुक्त, अहै पुरुष हे रामजी!।
तासु श्रुति स्मृति उक्त कर्मनहू के करनसों॥
छंदवंशस्थविल। प्रयोजनै सिद्धि कछून होते है। नकर्महू कै प्रत्यवाय जोतहै। सदेह होवै कि विदेह भावही। गृहस्थ होवै सु विरक्त नावही॥ न ताहि कर्तव्य कछू किनारही। वहभिया जक्त समुद्र पारही। जु जानु उपमेय कि उपमाहिकै। जु एक अंशै गहु जानि ताहिकै॥
दो०। होति बोधकी प्राप्ति तब है जु बोधते हीन।
होत मुक्तिको प्राप्त नहिं व्यर्थवाद करुदीन॥
सो०। जिहि घटमहँ अनुरागु आतम सत्ता रूपशुध।
उठाव विकल्प त्यागु चोगचुंच अरु मूर्खसो॥
चौ०। अर्थ प्रत्यक्ष अहै सबजोई। योग्य प्रमाण मान भै सोई॥
अरु अर्थापत्ति, जु अनुमाना। आदिप्रमाण जु कहत सुजाना॥
सत्ताह्वै प्रत्यक्ष करि ताकी। श्रेष्ठ जलधि ज्योंसब सरताकी॥

तैसे सब प्रमाण को जाना। अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाना ॥
सो प्रत्यक्ष अहै, क्या? भाई। ताको श्रवण करहु मन लाई ॥
चक्षु ज्ञान संमत सम्वेदन। होत चक्षु करि विद्यमान पन ॥
सु प्रत्यक्ष प्रमान तिहि नामा। तिहिप्रमानको विषय सकामा॥
करनहार जीवहि भगवाना। निज वास्तवस्वरूप अज्ञाना ॥

दो०। दृश्य अनात्मा रूपही वना अहै सो प्रान।
अहंकृत करिकै तिहि विषै भया रहै अभिमान ॥

सो०। सर्व दृश्य अभिमान तिहि हेयो.पादेय वुधि।
भई अहै नहि भान राग द्वेष करिकै जरत ॥

छंदअतिगीत। सोमानिकर्ता आपको भा वहिर्मुख भटकंतकंत।
वीचार करि सवेदनै अंतर्मुखी होवन्त वन्त ॥
तवआत्मपद प्रत्यक्षह्वै निजभाव पावततततंत।
परिछिन्न भावनरहत शुद्धरु शांति पावत दतदंत ॥
अरुजागने ते,स्वप्नते, जिमि स्वप्नको सवभंदमंद।
दुखसुख शरीररुदृश्य भ्रम सवनष्ट होवैं वंदवंद ॥
मिटिजातसव भ्रम आतमाहि प्रत्यक्षते तिमिफदफंद।
पुनिभासती शुद्धात्म सत्ता सर्वदा आनन्द कन्द ॥

दो०। यहजुदृश्य द्रष्टा अहै सो सव मिथ्या होय।
द्रष्टा होवै, दृश्य सो; दृश्य जु, द्रष्टा सोय ॥

सो०। भ्रम मिथ्याआकाश रूपअहै सो यहसकल।
पौनमें न जिमि भाश स्पन्दशक्ति नित रहतिहै ॥

चौ०। तिमि सम्वेदन आत्मा माही। जवअस्पन्द रूप ह्वैजाही॥
दृश्य रूप होवै स्थिति तवहीं। जैसे स्वप्नदीखु नर जवहीं ॥
दृश्य रूप ह्वै अनुभव सत्ता। स्थिति होवैतिमि दृश्यप्रमत्ता॥
ताते आतम सत्ता सारी। पावहु अस आत्मपद विचारी॥
अरु विचार करिकै जो ऐसे। पाइ न सकौ आत्मपद वैसे ॥
तव उल्लेख जो अहंकारा। स्फुरु ताको अभावकरु सारा ॥
पुनि जोशेष रहिहि अतिशोभा। है आतम सत्ता शब वोभा॥

शुद्ध बोध पावहु गे जबहीं। होवै गी चेष्टा असि तबहीं॥
दो०। जैसे पुतरी यन्त्रकी सम्वेदन करु पार।
चेष्टा करु; तिमिदेह पुतरी को पालन हार॥
सो०। सम्वेदन मनरूप पड़ी रहैगी तासु बिनु।
बात परंतु अनूप होय अभाव अहं कृतहु॥
छंदप्रहर्षिणी। तातेया यत्नतिहि पदै हेतुकीजै। औ अभ्यासमें मनयहि काजदीजै॥ जोई नित्य शुद्ध शांति रूपआही। त्यागौ दैवहि पुरुषार्थ आपनाही॥ औ पावै आत्म पद काहिसूरमाहै। पुर्षार्थै महँ पद आत्म पावताहै॥ जोई नीच आश्रय तासुको करैहै। सोई डूबि जक्त जलधिमें मरैहै॥

आत्मा प्राप्ति वर्णन॥

सो०। छप्पय वशिष्ठ उवाच--जब यहनर, हे रामजी!।
करिसत् संग जु साँच करै बुद्धि को शुद्धितव॥
सो समर्थ बहुरंग होय आत्म पद प्राप्ति हित।
प्रथम यही सत् संग जिहि चेष्टा शास्त्रनहु के॥
चौ०। ह्वै अनुसार करै, तिहि संगा। हियेधरै तिहि गुणहुअभंगा॥
बहुरि महा पुरुषनहू केरे। शम संतोष आदि गुण चेरे॥
शम संतोष आदि करि ज्ञाना। उपजत है बहु विधि भगवाना॥
उपजत अन्न मेघ करि जैसे। पुनि जग होत अन्न करि तैसे॥
होत मेघ पुनि जगतहु माही। तैसे शम संतोषहु आही॥
शम आदिकगुण आतमज्ञाना। होत परस्पर सुनहु सुजाना॥
उपजुज्ञानशमआदिक गुनकरि।आत्मज्ञानकरिशम आदिकभरि॥
आइसकल गुण इस्थित होई। जैसे बड़े ताल करि कोई॥
मेघ पुष्ट होवै ततकाला। होत पुष्ट मेघहु करि ताला॥
तिमि शम आदिक गुण करिभाई। आतम ज्ञान होवै नरराई॥

दो०। आत्म ज्ञानते शमादिक होत पुष्ट गुण तात।
अस विचार को भली बिधि करिकै तापश्चात॥
सो०। यह शम संतोषादि गुणहु केर अभ्यास करु।
तबहिं शीघ्रही बादि आत्म तत्त्वको प्राप्त है॥
छंदअनुष्टुप्। ज्ञानवान नरको शमहिं गुणस्वाभाविकै; । प्राप्त होतहै आयताको ताको जानिये साविकै; ॥ औजिज्ञासू कोसोई होवै अभ्यासु कै। प्राप्त जो कहा मैंने सब जानिये तासुकै॥
दो०। जैसे ऊंचे शब्दकै करत पालना कोय।
नारिभली विधितात तुम;जानिलीजिये सोय॥
सो०। जासों पक्षी काहिं उड़ावती है यतन करि।
यहि प्रकार मन माहिं करि विचार पालन करति॥
चौ०। तब फल को पावतहै सोई। ताते पुष्ट भली बिधिहोई॥
तिमि शम संतोषादिक फेरे। पालन करत भाँति बहुतेरे॥
आत्म तत्त्व की प्राप्ति सुजाना। तब ताको होवै भगवाना॥
हे रामजी! सुनहु करि दाया। यहि शास्त्रहि जोमोक्ष उपाया॥
आदि ते लै अन्त पर्य्यन्ता। करैविचार भलीविधि सन्ता॥
निवृति होय भ्रान्ति तब बामा। अर्थ धर्म्म सु मोक्ष अरुकामा॥
सर्व खर्व यह पुरुपारथ करि। सिद्ध होतहै जो करुमन धरि॥
यह परन्तु जो मोक्षु पायका। शास्त्र परम कारण अदायका॥
याहि जु कोई शुद्ध बुधि माना। पुरुप विचार हिये में ठाना॥
शीघ्रहि आतम पद की ताही। प्राप्त होत है यक छन माही॥
दो०। मोक्षुपाय यहि शास्त्र को ताते भली प्रकार।
मनमें करि विश्वास दृढ़ करु अभ्यास विचार॥
सो०। जिहि बिचार अभ्यास के अनुसार सुजान यह।
प्राप्त होत अन्यास मोक्ष आत्म पद क्षणहिंमहँ॥
छंदमणिमाला। ऐसे पदको पायो जिहि के पाये। इच्छाजिहि के पाये रहिना जाये॥ सारासुख जाके आश्रयहै ताता। ताको लहिकै औरौ रहिना जाता॥ जो पायहुसो भैआनंद

जो कोटिहुजन्मोंको खल औ कामी ॥ तौ भाग्यहुकी ताको कहु को प्रानी । ब्रह्मा हरि रुद्रौ की शकुना बानी ॥

दो० । तासु भाग्य को कहै किमि जड़ मति" सीताराम,, ।
शाक बनिक ज्यों कहि न सकु मुक्ता मणिको दाम; ॥

सो० । जाको गुणनित बेद कहत न पावत पार कछु ।
कहै तासु को भेद भई कृपातिहि जासु पर ॥

छंदप्रियम्वदा । न तप तीर्थ नहिं यज्ञ ध्यानही । न जप योग न बिराग ज्ञानही ॥ न अजपा नकहुं वंकनालही । उनमुनीहिनहिं वर्ण मालही ॥ नहिं पुराण नहिं वेदसारही । न अनहद नशास्त्र बिचारही ॥ नतरु कर्म्म नहिं धर्म मूर्तिही । न कछु दान नहिं शव्द सूर्तिही ॥

सो० । कीन्ह न एकहु रंग परि जगके जंजाल महँ ।
नहिं तरुणी को संग नहिं तरुतर डेरा कियहु ॥
पद्य योग वाशिष्ठ कार दशहरा गुरु दिवस ।
प्रकरण द्वितिय समिप्त स्थापि हरि भुज अंकैकमहँ ॥

दो० । चौपाई पंचाशधिक चुग सहस्त्र शतएक ।
अशी पंचधिक सोरठा त्रयशत सहित विवेक ॥
अरुदोहा यामें सकल हरि भुज शत पैंतीस ।
छंद एकसै वावनै पृथक पृथक तहँ दीस ॥

इति भाषायोगवाशिष्ठपद्य समाप्तः ॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने लखनऊ में छपा ॥
दिसम्बर सन् १८९१ ई० ॥